ॐ

प्राणायाम के असाधारण प्रयोग

प्राणायाम के असाधारण प्रयोग

लेखक:

डॉ० चमनलाल गौतम

रचयिता–प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, शिव रहस्य, विष्णु रहस्य, ओंकार सिद्धि, मंत्र शक्ति से रोग निवारण-विपत्ति-निवारण-कामना सिद्धि श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा, योगासन से रोग निवारण, तन्त्र विज्ञान, तन्त्र रहस्य, तन्त्र महाविद्या, तन्त्र सिद्धि आदि।

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली-२४३ ००३

फोन-२४७४२४२

Email us at: sanskriti_sansthan@rediffmail.com

प्रकाशक :

डॉ. चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर)
बरेली—२४३ ००३. (उ०प्र०)
फोन : २४७४२४२.

सम्पादक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संशोधित संस्करण : सन् 2019

कम्प्यूटर कम्पोजिंग : सिद्धि ग्राफिक्स

मुद्रक :

हिन्द प्रिन्टिंग प्रेस
बड़ा बाजार, बरेली (उ.प्र.)
मोबा. 9319930140
9897094711

मूल्य : 60 रुपये मात्र।

भूमिका

विज्ञान के इस तथाकथित प्रगतिशील युग में भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्पराओं, सिद्धान्तों और मान्यताओं की घोर उपेक्षा ही रही है, परन्तु आश्चर्य है कि भारत की प्राचीन योग-विद्या अपने उसी उच्च आसन पर आसीन है। इसको लोग व्यवहारिक रूप में भले ही न ला पाते हों परन्तु इसकी वैज्ञानिक उत्कृष्टता से इन्कार नहीं कर सकते। योग विद्या का जितना प्रचार भारत में है, उससे कहीं अधिक विदेशों में व्यापक रूप ग्रहण कर रहा है। आज भारत से अधिक विदेशों में योग विद्या की व्यवहारिक शिक्षा देने वाले केन्द्र खुल चुके हैं और यह विद्या वहाँ इतनी लोकप्रिय होती जा रही है कि इन केन्द्रों की संख्या दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। कारण स्पष्ट है कि उन लोगों ने योग की वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं।

अभी तक जनता में यह अन्ध विश्वास मूलक धारणा व्याप्त थी कि प्राणायाम आदि यौगिक क्रियायें केवल गृहत्यागी पर्वतीय गुफाओं में साधनारत एकान्तवासी योगी साधकों के लिए ही निहित हैं परन्तु सारे विश्व में योग की बढ़ती लोकप्रियता ने सिद्ध कर दिया है कि वह क्रियायें केवल योगियों तक ही सीमित नहीं हैं वरन् इसे सर्व साधारण भी अपनाकर लाभान्वित हो सकते हैं। सर्व साधारण के लिये प्राणायाम की उपयोगिता को देखते हुए इंगलैंड के श्री जे. पी. मूलर ने अपनी पुस्तक "माई ब्रीदिंग सिस्टम" में यहाँ तक लिखा है कि शिक्षण संस्थाओं में प्राणायाम की सरल विधियों का अभ्यास कराया

जाना चाहिये। अमेरिका के ख्याति प्राप्त प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० बर्नर थैकफैडन ने प्राणायाम की महत्ता को स्वीकार किया है। वह तो इसे स्वास्थ्य रक्षा व विकास का मूल साधन मानते हैं और इसके दैनिक अभ्यास पर बल देते हैं।

बौद्धिक वर्ग की मान्यता भी यहीं तक सीमित है कि प्राणायाम केवल स्वास्थ्य रक्षा, विकास और कुछ सरल रोगों की निवृत्ति में ही सहायक सिद्ध हो सकता है परन्तु वास्तव में इसका प्रभाव क्षेत्र इससे कहीं अधिक दूरगामी है। शारीरिक ही नहीं यह मानसिक बौद्धिक व आत्मिक क्षेत्रों को भी प्रभावित करता है। इस तरह से मानक के चहुँमुखी विकास का यह श्रेष्ठ साधन है। यह शरीर का ही नहीं जीवन का भी कायाकल्प करने की क्षमता रखता है।

यह सर्व विदित तथ्य है कि प्राणायाम से फेफड़ों में आक्सीजन की मात्रा की वृद्धि होती रहती है जिससे रक्त संचालन व शुद्धि की प्रक्रिया भी भली प्रकार सम्पन्न होती रहती है। वास्तव में प्राणायाम से केवल फेफड़े ही सबल नहीं बनते वरन् अन्य शारीरिक यन्त्रों को भी शक्ति प्राप्त होती रहती है। पाकाशय की मांशपेशियों के सुव्यवस्थित संचालन से पाचन क्रिया में सहायता मिलती है, हृदय को बल मिलता है, दस अरब न्यूरोन्स से युक्त जटिल यन्त्र-मस्तिष्क सबल, जाग्रत, विकसित व क्रियाशील बना रहता है, अन्य ग्रन्थियाँ जिगर व तिल्ली भी सक्रिय बनी रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप शरीर में असाधारण स्फूर्ति व क्रियाशीलता विद्यमान रहती है। इस तरह से प्राणायाम स्वास्थ्य संरक्षण और आयु वृद्धि में सहायक होता है और कब्ज, उदर, रोग, रक्त, चाप,

हृदय की धड़कन, कण्ठ रोगों, जुकाम व कफ दोषों की निवृत्ति करता है। प्राणायाम साधक केवल अपने ही रोगों का शमन नहीं कर सकता वरन्, अन्य व्यक्तियों के रोगों का उपचार करने की क्षमता भी प्राप्त कर सकता है।

प्राणायाम को आध्यात्मिक यज्ञ की संज्ञा दी गई है। इससे आसुरी कुप्रवृत्तियों के शमन, पापों के नाश व दुर्गुणों के निराकरण, इन्द्रिय संयम व षट् ऋतुओं पर नियन्त्रण में सहयोग मिलता है, ज्ञान का विकास व विवेक की जागृति होती है और आत्मिक उत्थान होता है। मानसिक शक्ति का विकास होकर जीवन की अनेकों जटिल व उलझी गुत्थियों का समाधान हो जाता है।

प्राणायाम से अनेकों प्रकार के चमत्कारी परिणाम देखे गये हैं सूर्य, कुण्डलिनी जागरण व शक्ति विस्फोट की साधना से विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसके चमत्कारी प्रयोगों से तो लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं। अतुल शारीरिक सामर्थ्य प्राप्त करके चलती मोटर को रोकना और हाथी को छाती से गुजारने के प्रदर्शन तो सभी ने देखे होंगे। प्राणायाम से भूख प्यास पर विजय और शीत पर संयम प्राप्त किया जा सकता है। और सन्देश प्रेक्षण की क्रिया संचालित की जा सकती है। प्राण शरीर का परकाया प्रवेश भी इससे सम्पन्न होता है। दीर्घकालीन अभ्यास से आकाश गमन की सम्भावना भी हो सकती है। प्राणायाम के साधारण व असाधारण सभी प्रयोगों के विधान विस्तार से इस पुस्तक में दिये गये हैं ताकि सर्व साधारण इससे लाभान्वित हो सकें।

-चमनलाल गौतम

विषय-सूची

प्राणयाम के असाधारण प्रयोग

प्राण क्या है?

विज्ञान विशारद शरीर को मशीन मानते हैं, जो कार्बोहाइड्रे चर्बी, प्रोटीन, गन्धक, लौह, अमोनिया फास्फोरस, कैल्शिय अभ्रक, जल, लवण आदि से मिलकर बनी है। मशीन संचालन के लिए जिस प्रकार कोयले और पानी की आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार शरीर के परिपोषण और व्यापार संचाल के लिए वायु, जल और भोजन की आवश्यकता होती वैज्ञानिकों का विचार है कि आक्सीजन वायु ही प्राण प्राणायाम के जो विपुल लाभ हैं उनकी दृष्टि में वे आक्सीज जनित ही हैं।

वैज्ञानिकों की शोधों के अनुसार हमारा शरीर छोटे-छो असंख्य कोषों से बना है। हम शारीरिक, मानसिक, जो क्रिया कलाप करते हैं उनसे यह कोष छीजते रहते हैं। अधि मात्रा में कोष छीजने से अंग प्रत्यंग में अवसाद आ जाता इसी को आम भाषा में थकान कहते हैं। यदि कोषों का द्रुतग से निर्माण न हो और छीजे हुए नष्ट हुए कोषों का शरीर बाहर उत्सर्जन न हो, तो प्राणी शीघ्र मृत्यु का ग्रास हो जा है। कोषों के निर्माण के लिए वायु, जल और भोजन आवश्यकता होती है। इनमें भी भोजन की अपेक्षा जल त जल की अपेक्षा वायु अधिक आवश्यक है। भोजन के बि व्यक्ति महीने दो महीने जीवित रह सकता है, किन्तु पानी

प्राण
बिना
से
अधि
में स
आद
और
है।
हम
दृष्टि
है।
आक
है f
श्वां
२०.६
होती
बाह
४.५
१३.५
है।
का
है।
हिस्
बड़ा

बिना तीर-चार दिन जीना भी सम्भव नहीं है। वायु तो इन दोनों से अधिक जरूरी है। उसके बिना मनुष्य कुछ मिनटों से अधिक जीवित नहीं रह सकता। इसीलिए हमारे दैनिक आहार में सबसे अधिक मात्रा हवा की रहती है। दिनभर में साधारण आदमी लगभग सेर सवा सेर ठोस पदार्थ पाता है। उसके पान और शरीर पोषण के लिए दुगुनी तिगुनी मात्रा में जल अपेक्षित है। वायु की मात्रा इन दोनों से अधिक होती है। जिसकी पूर्ति हम नाक मुँह द्वारा रोम छिद्रों द्वारा श्वाँस लेकर करते हैं। इस दृष्टि से आक्सीजन (बहुत स्वच्छ वायु) जीवन की लिए अनिवार्य है। जिस समय व्यक्ति मरणासन्न होता है, उसे विशेष यन्त्र द्वारा आक्सीजन देकर जीवन दान दिया जाता है। इससे भी स्पष्ट है कि आक्सीजन ही मुख्य तत्व है, प्राण है। सामान्यतः हम श्वांस द्वारा जो वायु ग्रहण करते हैं उसमें ७६ प्रतिशत नाइट्रोजन २०.६६ प्रतिशत आक्सीजन और ०.४ प्रतिशत कार्बन डाई आक़्साईड होती है। श्वांस द्वारा आया हुआ नाइट्रोजन निःश्वास द्वारा तुरन्त बाहर निकल जाता है। साधारण स्थिति में आक्सीजन का कुल ४.५ प्रतिशत भाग ही शरीर ले पाता है। लम्बी और गहरी श्वांस १३.५ प्रतिशत तक आक्सीजन को शरीर अवशोषित कर सकता है। अतः वैज्ञानिकों के अनुसार प्राणायाम गहरी और लम्बी श्वाँस का व्यायाम है। उसके द्वारा विपुल आक्सीजन शोषित की जाती है। इसी में प्राणायाम की उपयोगिता सम्मिलित है।

न्यूगिनी के लोग हृष्ट पुष्ट और दीर्घायु होते हैं। डा० हिस्पले ने उनकी परीक्षा की। उन्होंने देखा कि उनका आहार बड़ा सादा और सामान्य कोटि का है। फिर भी उत्साह, स्फूर्ति

और कार्य क्षमता के वे पुतले बने दीखते हैं। डा० हिस्पले ने अनुभव किया कि वे वायु तत्व द्वारा कार्य करने की शक्ति प्राप्ति करते हैं। वे लिखते हैं कि न्यूगिनी के आदिवासी लम्बी श्वाँस का एक व्यायाम नियमित रूप से करते हैं। लम्बी श्वांस की क्रिया द्वारा ही वे वायु तत्व से विपुल शक्ति ग्रहण करते हैं उनके अनुसार वायु में ऐसे २ सूक्ष्मतम जीवाणु जो लम्बी श्वांस खींचने के समय शरीर में रह जाते हैं और हवा से नाइट्रोजन खींचकर उसे शरीर के अन्दर प्रोटीन में बदल देते हैं। इस तरह वे वायु के स्वस्थ वातावरण में छाये हुए स्वास्थ्यकर जीवाणु समुदाय को ही प्राण मानते हैं।

कुछ वैज्ञानिकों की मान्यता है कि वायु में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कैल्शियम, फास्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, सोडियम, मैंग्नीशियम, लोहा, आयोडीन, क्लोरीन, तथा सिलिकम के सूक्ष्म परमाणु हैं। हम श्वांस द्वारा केवल हवा या जीवाणु विशेष ही ग्रहण नहीं करते वरन हम इन शरीर उपयोगी खनिजों और रसायनों की तन्मात्राओं को भी ग्रहण करते हैं, जो शरीर का तोषण-पोषण करते हैं।

वैज्ञानिकों का एक वर्ग नलिका विहीन अन्तःग्रन्थियों के हारमोन को ही जीवन शक्ति या प्राण मानता है। इस तरह हमने देखा कि 'प्राण' क्या है इस विषय में वैज्ञानिक एक मत नहीं हैं। कोई उसे आक्सीजन बताता है, तो कोई स्वास्थ्य जीवाणु, किसी की धारणा है कि वायु में व्याप्त रासायनिक परमाणु ही प्राण हैं, तो कोई उन्हें अन्तःस्रावी ग्रंथियों के अन्तःस्राव से उद्भूत शक्ति विशेष मानता है।

प्राण क्या है, इस विषय में हमारे शास्त्रों का दृष्टिकोण अतीन्द्रिय अनुभूतियों पर आधारित है। जिस प्रकार वे मनुष्य को भौतिक रासायनिक तत्वों का पुतला भर नहीं मानते हैं, उसे मन-बुद्धि चेतना युक्त पंचभूतों का संघात कहते हैं, वैसे ही वे प्राण को आक्सीजन जीवाणु रसायन या रस-क्रिया नहीं कहते हैं। वे उसे विश्वव्यापी चेतन शक्ति विशेष मानते हैं। उनकी मान्यता की सत्यता उनके परामनौवैज्ञानिक प्रयोगों (Expermien's pertaining to para psychology) से सिद्ध होती है।

अप्रैल १९६७ की तीसरी तारीख को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास तथा अन्य उच्चाधिकारियों और सम्भ्रान्त नागरिकों के समक्ष विठूर के लवकुश आश्रम के प्रांगण में स्वामी श्री सत्यमूर्ति ने एक गड्ढे में बैठकर प्राणायाम द्वारा समाधि ली। गर्त मिट्टी से पाट दिया गया। वायु प्रवेश का कोई छिद्र नहीं रहा। सप्ताह भर बाद नियत तिथि पर, नियत समय पर ऊपर भीड़ के सामने वे उसी आसनगत मुद्रा में बाहर निकाले गये। डाक्टरों ने परीक्षा की। शरीर ठण्डा था नाड़ी लुप्त थी। थोड़ी देर में वह शनैःशनैः चलती नजर आयी और वे श्वास-प्रश्वास लेने लगे। हँसने और बोलने लगे। उन्होंने अपने प्रवचन में बताया कि वे १४२ बार इसी प्रकार समाधि ग्रहण कर चुके हैं।

ऐसी ही एक घटना का विवरण डा० मैक्रगीगर लिखित "सिक्खों के इतिहास" नामक ग्रन्थ में है। सन् १८३६ की बात है। उन दिनों महाराज रणजीतसिंह पंजाब की गद्दी पर विराजमान थे। स्वामी हरिदास ने चालीस दिन की समाधि ली

थी। उन्हें एक बक्से में बन्द कर दिया गया था। चालीस दिन बीतने पर वैद्यों, डाक्टरों, सरदारों, अँगेज रेजीडेन्ट तथा अन्य अँग्रेजों के सामने मिट्टी खुदवाकर बक्सा निकाला गया। ताला खोला गया। थोड़ी देर में स्वामीजी हँसते हुए बक्से से बाहर निकले और सब उन्हें विस्मय-विस्फारित से देखते रह गये।

मैंने स्वयं १९४१–४२ में हरदोई में एक महात्मा द्वारा लगाई "भूमि समाधि" देखी है। इन प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि "प्राणशक्ति" आक्सीजन जीवाणु खनिज रसायन और अन्तः ग्रन्थियों के हारमोन्स मिश्रित प्रतिक्रिया नहीं है। गड्ढे के अन्दर इतने दिनों तक इनके न मिलने पर भी व्यक्ति का जीवित रहना, स्वस्थ और प्रफुल्लित रहना यही सिद्ध करता है कि प्राण अतीन्द्रिय-शक्ति विशेष है।

हमारे शास्त्रों में इस प्राणशक्ति का विस्तृत उल्लेख मिलता है। नीचे हम उन्हीं के आधार पर प्राणशक्ति और उसके स्वास्थ्य का परिचय दे रहे हैं–

प्राणो विराट् प्राणो देस्ट्री।
प्राणं सर्व उपासते।
प्राणोह सूर्य चन्द्रमा।
प्राणमाहु प्रजापतिम्।।

अथर्ववेद में प्राणों को मूल चेतना कहा गया है–

अर्थात् प्राण ही विराट है। वही सबका प्रेरक है। इसलिए सभी उसकी प्राणायाम के द्वारा उपासना करते हैं। प्राण ही सूर्य है एक अन्य मन्त्र को वीर्य, बल, उत्साह, प्रतिभा, तेज, सद्गुण और वायु बताया गया है।

तेजोऽसि सहोऽसि, वलमसि भ्रातोऽसि
देवानां धायनामासि विश्वमसि विश्वायुः।

हे प्राण ! तुम वीर्य (तेज) हो, तुम उत्साह हो। तुम बल ा। तुम दीप्ति (Hallo) हो, तुम दिव्य गुणों के धाम हो, तुम ही राचर विश्व हो, तुम ही विश्व के जीवन (आयु) हो।

शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को प्राण ही कहा गया है। 'प्राणो वै र्कः प्राण सूर्य ही है।

सहेस्त्र रश्मि शतधा वर्तमानः।
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य।।

सहस्त्र रश्मि वाला सैकड़ों प्रकार के जीवों को उत्पन्न रने वाला सूर्य ही प्राण हैं

अन्तरिक्ष विज्ञान विशारदों का कहना है कि सूर्य से पृथक् ई जैसे समूह ही घनीभूत होकर पृथ्वी बनी। इससे यह सहज नुमान लगाया जा सकता है कि आज पृथ्वी पर जो कुछ भी दृश्य है तथा अदृश्य, विद्युत, चुम्बक ध्वनि, धातु, उपधातु, नस्पति' नदी' पहाड़ तथा इच्छा अनुभूति मन व्यापार हैं। वे पने मूलरूप में जाज्वल्यमान तरल गैस ही है। पृथ्वी का रुत्वाकर्षण, चुम्बक, विद्युत, प्रकाश, ध्वनि, ऊर्जा सब सूर्योद्भूत । सूर्य शक्ति का ही रूपान्तर है। इसी दृष्टि से सूर्य को गतात्मा कहा गया है, इसी दृष्टि से उसे महा प्राण की संज्ञा ी जाती है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में 'प्राण' की व्याख्या निम्न शब्दों में ी गई है–

प्राणौ वै वलम्। प्राणौ वै अमृतम्। आयुर्नः प्राण: राजा वै प्राणः।

अर्थात् प्राण ही बल है। प्राण ही अमृत है। प्राण ही आ है, जीवन है। महा विराट प्राण समस्त संसार का सम्राट है सर्व शिरोमणि हैं।

वृहदारण्यक उपनिषद् के प्रणेता ऋषि के अनुसार प्राण शरीर बल, मनोबल, बुद्धिबल, और आत्मबल हैं। आधि व्याधि चिन्ता निराशा और विकारों से संतृप्त प्रियमाणों (मुर्दा दिलों) लिए प्राण आशा, उत्साह, स्वास्थ्य, स्फूर्ति, प्रफुल्लता औ जीवन देने वाला अमृत है। अमृत का कार्य मरणासन्नों व उज्जीवित करना होता है, सो प्राण भी मुर्दा दिलों में, पाप-ता से संतृप्तों में नव शक्ति का संचार करना है। अमृत रूप हो के नाते वह उनका कायाकल्प करता है, मनोकल्प और बुद्धि कल्प करता है। वह उन्हें तेजस्वी बनाता है। यशस्वी बना है। यशः काम से अमर बनाता है।

प्राण को आयु कहने का अभिप्राय यह है कि प्राणाया आदि साधनों द्वारा अधिकाधिक प्राण का संचय करने वाला केवल दीर्घायु होता है प्रत्युत इच्छा-मृत्यु वाला भी होता है महात्मा भीष्म भी बड़े प्राण धनी है। तभी तो वे सूर्य उत्तरायण होने तक विषैले घातक प्रहारों से आहत होकर शर शय्या पर पड़े रहकर अपने को (अन्तरात्मा को) म पीड़ित जीर्ण-शीर्ण शरीर में रोके रख सके थे। इस लि कौषीतिक में कहा गया है "यावद्वयस्मिन शरीरे प्राणो वस

ताबदायुः"—जव तक इस शरीर में प्राण है तभी तक आयु है।

इसी सन्दर्भ में तैत्तरीय उपनिषद का मन्त्र दृष्टव्य है

प्राणात्वजे च खल्विर्मान भूतानि जायन्ते।
प्राणानि जातानि जीवन्ति।
प्राणं प्रयात्यभि संविशन्ति।।

प्राण शक्ति से ही समस्त प्राणी पैदा होंते हैं। पैदा होने पर प्राण से ही जीते हैं। अन्ततः प्राण में ही प्रवेश कर सकते हैं।

सर्वाणिह वा इमानि भूतानि प्राणसेवा।
मिशं विशन्ति प्राणमभ्युज्जित।।

वह सब प्राणी प्राण में से प्राण में ही उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।

एतरेय ब्राह्मण प्राण मात्र को ही नहीं, समस्त ब्राह्मण को प्राण से ही उत्पन्न और पोषित मानता है—

सोऽयमाकाशः प्राणेन वृहत्याविष्ठव्यः
तद्यथामऽमाकाशः प्राणेन वृहत्या विस्पब्ध
एवं सर्वाणि भूतानि अपि विपीलिकाभ्य प्राणिते
वृहत्या विष्ठव्यानीत्वेवं विधात्।।

अर्थात् यह आकाश प्राणमय है। प्राण से ही विश्व का धारण करता है, प्राण की शक्ति से ही यह ब्रह्माण्ड में वृहदाकाश में अवस्थित है। चींटी से लेकर हाथी तक सब प्राणी इस प्राण के ही आश्रित हैं।

यहाँ ऋषि ने प्राण को आकाश व्यापी तथा आकाश सदृश्य बड़े विस्तार वाला सर्वग्राही बताया है। हमारा यह वायुमण्डल

तो बहुत सीमित है। वायु का घेरा पृथ्वी से ऊपर कुछ मीलों तक ही है। आगे वायु की तन्मात्रा का घेरा है उसके भी आगे बात शून्य आकाश है। इससे आकाश से ही प्राण तत्व की विपुलता, विशालता का कुछ-कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

वात शून्य आकाश भी शून्य या पोला नहीं है। यह तो आज के वैज्ञानिक भी मानते हैं। उनमें भी विविध तारों की—हमारे सूर्य से भी कई गुने विराट सूर्यों की, तेजमयी रश्मियाँ हैं, ऊर्ध्व स्तरीय ग्लैक्सी की चुम्बकीय तरंगे हैं, विद्युतीय धारायें हैं, इन्हीं के साथ उसमें शुद्ध महाप्राण या प्राण भी प्रवाहमान है।

एक तत्वदर्शी के अनुसार प्राण या जीवन शक्ति का सनातन तत्व है जो विविध धाराओं की रश्मियों, चुम्बक तरंगों, विद्युत लहरों गुरुतर आकर्षणों-विकर्षकों के कारण ब्रह्माण्ड के किसी केन्द्र पिंड से उत्पन्न हो रहा है। वहीं से बहता हुआ वह सारे विश्व में नाना प्रकार की रचनाओं के रूप में व्यक्त हो रहा है।

जो ऊर्ध्व आदित्यों (ग्लैक्सी या तारा समूहों) से पोषितप्रेरित सूर्य के आकाश कण को ही जीवन का आधार मानते हैं, उनका विश्वास है कि मनुष्य शरीर में पाये जाने वाला हीमोग्लोविन नामक तत्व ही प्राण है, जो सूर्य से निःसृत होता है और अन्न द्वारा, जल द्वारा, वायु द्वारा तथा इच्छा शक्ति द्वारा हमारे शरीर में पहुँचता रहता है। कुछ ज्योतिर्विद-आकाशचारी आश्नों-स्फोटिक प्लाज्मा को ही जीवनी शक्ति या प्राण की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार हमारी आकाश गंगा के अनुमानतः दस खरब तारे हैं।

इनके प्रकाश कणों का आकाश गंगा के केन्द्रीय क्षेत्र (Centre) में तेजी से संघर्ष और विस्फोट होता है। जिससे एक विशेष प्रकार का प्लाज्मा पोल दीखने वाले आकाश में अनेक धाराओं के रूप में अनेक प्रकार के क्षेत्र बनाते हुए फैल जाता है। विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र और गुरुत्वाकर्षण जैसी महत्वपूर्ण क्रियायें उसी से निष्पक्ष होती हैं।

सूर्य की गर्मी और रोशनी हर किसी को दीखती है। यह उसकी स्थल शक्ति है, प्रकट रूप है। इसके भीतर उसकी एक और सूक्ष्म सत्ता विद्यमान है, जो अव्यक्त है। हमें दीखती नहीं। सूर्य के माध्यम से निरन्तर निर्झर के समान झरने वाली इस दृश्य धारा प्रवाह को महाप्राण कहते हैं। यह महाप्राण जब शरीर क्षेत्र में अवतीर्ण होता है तो आरोग्य, आयुष्य, बल, वीर्य, तेज और उत्साह स्फूर्ति के रूप में देखा जाता है। जब वह मनः क्षेत्र में अवतरित होता है, तो स्मृति सद्भावना, एकाग्रता, स्थिरता धैर्य और मनः शान्ति के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जब उसका अवतरण बुद्धि क्षेत्र में होता है, तो श्रद्धा, विश्वास, विवेक, सूझ-बूझ, सूक्ष्म-दर्शिता, आत्मीयता, प्रेम करुणा, दया के भावों से परिप्लावित हो उठता है। आत्मिक क्षेत्र में इसके अवतरित होने पर अद्भुत कार्य व्यापार करने की क्षमता उसमें आ जाती है। सिद्धों की जीवन गाथाओं में जो चमत्कार पूर्ण घटनाओं का विवरण हम पाते हैं, वे आत्मिक क्षेत्र में सचित प्रवल प्राण के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

यह आइनों स्फेटिक प्लाज्मा ही व्यक्ति चर-अचर प्राणि-जगत का प्राण तत्व है। चुम्बक, प्रकाश, ऊष्मा, विद्युत आदि इसी के

विभिन्न रूप हैं। यह दिव्य ऊर्जा सूर्य के माध्यम से ही प्राप्त होती है।

यह सूर्य सरिता महाप्राण कोरी कल्पना नहीं है, विद्युत, चुम्बक के समान अदृश्य, अगोचर होकर भी सुस्पष्ट है। वैदिक काल से आज तक के सिद्ध साधकों ने आध्यात्मिक ध्यान के प्रयोग (Experiment on deep meditation) द्वारा इसे प्रत्यक्ष देखा है, अनुभव किया है। ऐतरेय ब्राह्मण का मन्त्र इस सत्यता को प्रतिपादित करता है–

अपश्यं गोपमनिपद्यमानभा
च परां च पथिमिश्चरन्तम
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसा न
आनरीवर्ति भुवनेष्वन्तः।

अर्थात् मैंने प्राण को स्वयं देखा है–प्रत्यक्ष देखा है। यह प्राण समस्त इन्द्रियों का पोषक है। यह कभी नष्ट नहीं होता है, अविनाशी है भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा, नाड़ियों द्वारा यह शरीर में दौड़ता रहता है। मुख और नासिका द्वारा यह शरीर में आता है और फिर बाहर निकल जाता है शरीर में यही गैस रूप है। सूक्ष्म-वायु रूप है। ब्रह्मांड में यही सूर्य रूप है। यह विश्वव्यापी सूक्ष्म तरल या गैसीय शक्ति, जहाँ जितनी अधिक मात्रा में एकत्र हो जाती है, वहाँ उतनी ही अधिक चैतन्यता-सजीवता और तेजस्विता दिखाई देने लगती है। 'मनुष्य' में इस प्राण तत्व का बाहुल्य है। यही कारण है कि यह संसार का सिरमौर है। यह अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विचारवान, अधिक

सूझ-बूझ वाला, अधिक गुणवान और सामर्थ्यवान है। वस्तुतः यह प्राण ही कामधेनु है। हमारी समस्त कामनाओं की तुष्टि पुष्टि का साधन है इसका ध्यान स्पर्श भी बड़ा पावन है अतः इसे पारस कहा गया है।

अब तक हमने देखा कि प्राण को चाहे हीमोग्लोबिन कहो, आइनोस्फेटिक प्लाज्मा कहो, सूक्ष्मतम गैसीय तरल या जीवनी शक्ति कहो, यह एक प्रकार की चेतन ऊर्जा है प्राणी के अन्दर निरन्तर बहने वाली सूक्ष्म भावना अनुभूति उसी की अनभूति है। प्राण शक्ति (vital force) की स्फुरणा (discharge) का नाम विचार है। जो सकल विश्व की गतिविधि का मूल कारण है, हमारी प्राण शक्ति जितनी कम या अधिक बलयुक्त गति (velocity of vital force) से स्फुटित होती है, उसी अनुपात से विचारों की सत्ता कम या अधिक शक्तिशाली रूप में प्रकाश में आती है।

प्राणशक्ति भावातीत विचार है। यह शब्दात्मक या चित्रात्मक न होकर प्रकाशात्मक है। प्राणशक्ति इतना सूक्ष्म किन्तु तीव्र विचार है कि उसे किसी रेड़ियों या मशीन से ग्रहण नहीं किया जा सकता है। यह इतना कम्पन्नशील विचार है, कि स्थूल इन्द्रियों की पकड़ में भी नहीं आ सकता है। यह परा बैगनी किरण (ultra vilot rays) से कहीं अधिक तेज और सूक्ष्म है और मन जैसा हरदम स्पन्दमान है महाभाव है। इन्द्रियातीत होते हुए भी मन (भावना) द्वारा ग्राह्य है, महाभाव को लेकर भी यह भाव द्वारा पकड़ा जा सकता है।

तीव्रता (velocity or intensity) के आधार पर इस प्राण को महर्षि अरविन्द ने चार भागों में विभक्त किया—निम्नस्तर प्राण,

निम्न प्राण, उच्च प्राण, और उच्चतर प्राण।

एक अन्ययोगिराज ने प्राण को तीन प्रकार का बताया है—मन्द, मध्यम और गहन। मन्द प्राण वाले व्यक्ति के विचार टूटे-टूटे से अस्पष्ट होते हैं। वे उलझे हुए, अनियमित और विश्रंखल होते हैं, मन्द गति वाले होते हैं। ऐसा प्राण किसी को भी प्रभावित नहीं कर सकता है, क्योंकि वे मन्द बल से स्फुरित (discharged) होते हैं।

जन साधारण मध्यम बल के प्राण वाले होते हैं। उनके विचार निम्न प्राण वालों की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल, अधिक स्पष्ट होते हैं। यही कारण है कि अपने व्यवसाय में व्यवहार और शिक्षा से यथेष्ट सफलता प्राप्त करते हैं। महत्वाकांक्षी होते हुए भी इनमें अपनी इच्छाओं के नियन्त्रण करने की पर्याप्त शक्ति नहीं होती। वे मोह, विभ्रम, अधैर्य अस्थिरता और अन्तर्द्वन्द्व के शिकार होते रहते हैं। दुविधा और विक्षेप भाव उनकी एकाग्रता को बहुधा तोड़ता-जोड़ता चलता है। किन्तु यदि ये प्राणाराथन व्यायाम द्वारा किसी एक और विचार और इच्छाओं के केन्द्रित करने का अभ्यास करें, यदि एक प्रकार के विचार और एक जैसी इच्छायें अपने मस्तिष्क में काफी समय तक रोके रहे तो उनके संस्कार छने होकर, एकत्र होकर एक महती शक्ति बन जाते हैं। महानता के साथ सोचने और उस इच्छित लक्ष्य के लिए अपनी सम्पूर्ण ध्यान शक्ति समर्पित कर देने से व्यक्ति शक्तिशाली विचार वाला, प्रबल प्राण वाला बन जाता है। गहन विचार या प्रबल प्राण वाला, व्यक्ति महान धैर्य वान होता है, वह बड़ी बड़ी सूझ वाला, स्थिरमति का प्राणी होता है। वह

बड़ा प्रभावान और प्रभावी होता है।

अब पाठक समझ गये होंगे कि प्राण एक दिव्य ऊर्जा है। यह वह ऊर्जा है जो सूर्य के माध्यम से हमको प्राप्त होती है। यह ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बक, गुरुत्व और ध्वनि तरंगों से अधिक तीव्र है। अथवा यही चेतन शक्ति विविध भौतिक ऊर्जाओं में रूपान्तरित हुआ करती है। चेतन प्राणी में यह विचार के रूप में अभिव्यक्त होती है। हमारे विचार, हमारी श्रद्धा, हमारा धैर्य, हमारी कार्य शक्ति हमारे संचित अर्जित प्राण के प्रतिरूप ही हैं। शक्ति, सिद्धि, सफलता, यश, आरोग्य और सम्पन्नता की कामना रखने वाले प्रत्येक प्राणी को अधिकाधिक मात्रा में प्राणों का संग्रह करना चाहिए। प्राणार्जन ही सभी उन्नतियों का आधार है। प्राणायाम साधन है, 'प्राण ही साध्य है।'

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्राण अत्यन्त सूक्ष्म तत्व है। उसे विद्युत-प्रवाह, ऊर्जा-प्रवाह, वाह्य-प्रवाह और कुण्डलिनी शक्ति भी कहते हैं। संसार प्राण का ही पसारा है। "प्राणों वै ब्रह्म'—परमात्मा ही महाप्राण है। वही सृष्टि का, व्यक्तित्व निर्माण का मूल हेतु है। प्राणों की प्रखरता और मन्दता के अनुक्रम में ही श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं।

प्राण से शरीर की हृष्टता पुष्टता का अधिक सम्बन्ध नहीं है। ऐसे व्यक्ति भी निकम्मे, आलसी, अशिक्षित, निराश, उदास, चिंतित अधीर, संतप्त और संत्रप्त देखे गये। इसके विपरीत दुबले, पतले व्यक्तियों में विद्युत सरीखी सक्रियता, स्फूर्ति, उमंग, आशा, विश्वास, उत्साह, साहस, सूझ-बूझ और प्रसन्नता देखी गयी है। प्राण की मात्रा का प्रमाण प्राण की भावोत्कृष्टता,

कार्य कुशलता और कार्यक्षमता को देखकर आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। प्राणवान् व्यक्तियों में अद्भुत तेजस्विता, कार्य के प्रति अत्यधिक तत्परता और मनस्विता होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है, उनका प्राण उनके अंग-अंग से उनकी बात-बात से, उनके हाव-भाव और व्यवहार से उमड़-उमड़ कर झलकता है। प्राणहीन व्यक्ति निराशा और अकर्मण्यता, कुण्ठा और विमति (उल्टी बुद्धि) से स्वयं हरदम दुःखी रहता है, गिडगिड़ाता नहीं दृष्टिगोचर होता है।

प्राणवान् व्यक्ति ही आत्म-विश्वासी, दृढ़ निश्चयी, अच्छी आदतों वाला, हँसमुख, सद्गुणी और अच्छा आस्तिक होता है। इसीलिए शास्त्र कहता है--

प्राणोऽपि भगवानीशः प्राणी विष्णुः पितामह।
प्राणेन धार्यते लोकः, सर्व प्राणमयं जगत।।

प्राण ही शिव, विष्णु और ब्रह्म है। प्राण ही अपने में सारे संसार को धारण किए हैं। अतः यह सारा संसार ही प्राणमय है।

प्राणशक्ति की विशेषतायें

पिछले अध्याय में आपने प्राण के स्वरूप और उद्‌गम पर विचार किया था। अर्वाचीन और प्राचीन तत्वदर्शियों के अभिमतों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि आक्सीजन और प्राण में स्पष्ट अन्तर है। आक्सीजन का कार्य रक्त की सफाई करना और उसे सतज बनाना है, परन्तु वह विचारों की शक्ति, साहस, उत्साह, बुद्धि की सूक्ष्म ग्रहिता आदि की उत्पत्ति और वृद्धि नहीं कर सकती है। ये कार्य प्राणं के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

प्राण-वायु (आक्सीजन गैस) में प्राण सन्निहित रहता है। किन्तु अपान में भी उनकी क्रिया देखी जाती है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में अपान स्थित प्राण ही सहायक होता है। कार्बन डाई आक्साइड गैस में यदि प्राण न होता तो क्या पेड़ पौधे जीवित रह सकते हैं? फिर जहाँ हवा नहीं वहाँ भी प्राण रहता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्राण कोई भौतिक द्रव्य नहीं है। न वह हवा है और न हवा के बनाने वाले तत्वों में कोई एक है।

वायु मन्डल की हवा में प्राण स्वछन्द रूप में, सहज ब्रह्म रूप में पाया जाता है वायु मण्डल की यह हवा ताजा रहती है, तब उसमें खूब प्राण रहता है।

स्टीरैज वैटरी में किस प्रकार विद्युत भरकर रखी जाती है और आवश्यकतानुसार मन चाहे स्थान पर उससे काम लिया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार मस्तिष्क और नाड़ी केन्द्रों (चक्रों) में प्राण को विपुल मात्रा में स्टोर किया जा सकता है।

प्राण की इस विशेषता को देखकर सूक्ष्म-दर्शी ऋषियों ने प्राणायाम पर शोध कार्य किया और अपने प्रयोगों तथा अनुभवों पर प्राणायाम की अनेक विधियों का आविष्कार किया।

प्राण शब्द की व्युत्पत्ति भी उसकी विशेषता को इंगित करती है प्राण संस्कृत भाषा का शब्द है "यद्वै प्राणिति स प्राणः" जो पोषण करता है, सो प्राण है। शरीरस्थ सार शक्ति का नाम प्राण है।

"यः प्राणयहि जीव यतीति सः प्राणः"–जिसके द्वारा जीवन स्थिर रहता है, उसे प्राण कहते हैं तात्पर्य यह है कि प्राण सार-शक्ति, अर्थात् जीवन तत्व जीवन का सर्वस्व है। इसी से यह जीवन का द्योतक माना जाता है। चिकित्सा-विज्ञानी इसे रोग-निरोधिनी शक्ति (physical vitality) या जीवन शक्ति (vital force) के नाम से पुकारते हैं। वह शारीरिक ही नहीं मानसिक स्वास्थ्य (Mental Hygiene) का भी आधार है।

"प्राण ही जीवन है" बड़ा अर्थमय वाक्य है। मृत्यु को 'प्राणों का निकलना" कहा जाता है, किन्तु इसका अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि प्राण ही जीवात्मा है। ये वाक्य तो प्राण की श्रेष्ठता भर का प्रतिपादन करते हैं। जीवात्मा से उसकी अभेदता सिद्ध नहीं करते हैं।

अद्वैत सिद्धान्त की बात छोड़िये, जिसके अनुसार यावज्जगत ब्रह्ममात्र है। जिसके अनुसार अखिल ब्रह्मांड परम चैतन्य सत्ता का विलास मात्र है, किन्तु शक्ति प्रवाह की दृष्टि से न परमात्मा और जीवात्मा एक है और न जीवात्मा तथा प्राण को ही एक कहा जा सकता है। प्राण से जीवात्मा से मिलाकर गड़बड़ी न

रनी चाहिए। जीवात्मा वह चेतन तत्व है, जिसके चुम्बक से ाकर्षित हुए प्राण संस्कारादि उससे चिपटे रहते हैं। अद्वैत मत भी प्राण द्वारा तात्विक शरीर का क्रिया व्यापार यथेच्छा लता रहता है। सोचना, बोलना, इच्छा-द्वेष मन आदि चेतन क्रियाएँ होती हैं और 'प्राणी जीवित है''—ऐसा लोक में कहा ाता है। देहान्त के बाद की शारीरिक क्रियाएँ जीव-चलित न ोकर अवशिष्ट प्राण द्वारा चालित होती हैं।

प्राण विश्वव्यापी जीवन पोषक तत्व है। यह गति बल और ाक्ति का वाहक है। इसी पर सवार होकर जीवात्मा अन्यान्य ाकों में गमन करता है। इसी के द्वारा भाव और विचारों के रमाणुओं तथा प्रकम्पनों का वहन तथा विकिरण होता है। यह ल-थल, नभ में सर्वत्र अनुस्यूत है। यह अस्ति और वायु में भी ात-प्रोत है। यह अति सूक्ष्म अनोखा तेजस (गैसीय तत्व है) सरे के मन की बात जान दूर दर्शन, दूर संदेश-प्रेषज्ञ (अपने चारों को दूरवर्ती मनुष्य के पास भेजना), दूसरे को सम्मोहित रना आदि क्रियाएँ इसकी सर्वव्यापकता और विकिरण शीलता ो ही प्रमाणित करती हैं। नक्षत्रों की आकर्षण शक्ति, विद्युत ाक्ति और ग्रह-उपग्रहों की चाल में प्राण ही अभिव्यक्त हो रहा है। इसी से यह शक्ति और बल की, फिर चाहे वे किसी भी रूप में, कहीं भी क्यों न हों, सत्ता कहा जा सकता है।

प्राण सर्वत्र संचरणशील है। अतः मनुष्य वायु के अतिरिक्त जल, सूर्य प्रकाश, भोजन ध्यान आदि से भी उसे ग्रहण कर सकता है। त्रुटि पूर्ण आहार-विहार के द्वारा इसका क्षय भी किया जा सकता है। उमंग, उत्साह, उल्लास, शान्ति, सूझ,

स्फूर्ति, सुमति, सद्भावना आरोग्य आदि लक्षण इस बात
द्योतक हैं कि मस्तिष्क आदि नाड़ी केन्द्रों में प्राण विपुल मा
में संचित है। इसके विपरीत निराशा अशान्ति, दुर्बुद्धि 3
दुर्भावना, रोग और दौर्बल्य प्राणों की क्षीणता के सूचक
जिस प्रकार बिजली के तारों में विद्युत प्रवाहित होती है, उ
प्रकार हमारी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में प्राण नि
रहता है। वोल्टेज कम होने पर हाई पावर का बल्व भी हल
रोशनी देने लगता है, उसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से हट्
कट्टा व्यक्ति भी प्राणों की मात्रा कम होने से अपने
दीन-हीन-मलीन सा अनुभव करता है।

प्राण की गति द्विविध है—दो प्रकार की है (१) अन्तर्मुखीग
और बहिर्मुखी गति। बाह्य प्राण का प्राणायाम शरीर द्वा
आकर्षण और फिर उसका कर्मेन्द्रियों के मार्ग से बाहर च
जाना ही प्राण की अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी गति अथवा प्र
कहलाती है। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राण का अन्तर्मुखी प्रवाह अ
कर्मेन्द्रियों के द्वारा प्रवाह सम्पादित होता है। अन्तर्मुखी प्र
पहले सुषुम्ना में जाता है वहीं से वह नाड़ी केन्द्रों में सं
होता है और क्रियावाही नाड़ियों द्वारा थोड़ा खर्च किया जा
है। जिस प्रकार अन्न का सारा अंश (पुष्टिकर भाग) शरीर
रक्षित रह जाता है और निस्सार भाग मूत्र-तुरीषादि के रूप
शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है, उसी प्रकार श्वांसादि
द्वारा ग्रहण किये गये प्राण का सार भाग प्राणमय शरीर
(रसवाहिनी ग्रन्थियों और षट्चक्रों में) संचित हुआ करता
और शेष भाग निश्वासादि के द्वारा बाहर निकाल दिया जा

। जिस प्रकार किसी क़ारखाने में लगी हुई विविध मशीनों को मान्द्रिय डाइनमों से विद्युत की धारा मिलती है और उसके द्वारा चलती हैं, उसी प्रकार मानव शरीर की समस्त क्रियायें णमय शरीर से निकलने वाली प्राणधारा से ही संचालित होती है।

प्राणाधन के दिव्य मन्त्र

वैदिक काल से भारत में प्राणाधन की प्राणोपासना होती । आज का विज्ञान वायु में विद्युत और विविध नक्षत्रों के काश की उपस्थिति को स्वीकारता है। पूरा काल के वैदिक ऋषि भी उसे "विद्युत तथा मरुत रश्मिवन्तः" यह मरुत् या प्राणवायु रश्मिल विद्युत रथ पर आरूढ़ होकर वर्तमान है—के रूप में ही देखते थे। वह उसे परा-ऊर्जा (एवसाल्यूट एनर्जी) के रूप में पूजते थे। वैदिक मन्त्र और स्तुतियों से यह बात स्पष्ट सिद्ध है।

वैदिक मन्त्रों के अक्षर तपोभूमि ऋषियों की परा-अनुभूति को छायी हुई है, उनकी मूल भावना और स्वः शक्ति भी उनमें सम्मिलित है जिस प्रकार रिकार्ड पर गति के संस्कार बद्ध रहते हैं, सूचिका आवृत्ति से वे मुखरित हो उठते हैं और श्रोता को प्रभावित करते हैं, आहलादित करते हैं। ठीक इसी प्रकार इन वेद मन्त्रों के प्रति अक्षर में गुँथे हुए ऋषियों के दिव्य भाव, ऋषियों की दिव्य अनुभूतियाँ इनका तेज, तपः शक्ति और भावनता भी मन्त्रों के भावपूर्ण उच्चारण से उपासक में अनायास अवतरित होते देखे गये हैं।

उपासना एक प्रयोगात्मक विज्ञान है, जिस प्रकार वैज्ञानि
दीर्घ काल तक बिना थके, ऊबे प्रयोगरूपी अभ्यास करता
और प्रयोगों के द्वारा इष्ट उपलब्धियों को सिद्ध करता है,
ठीक उसी प्रकार प्राणोंपासना के मन्त्र भी प्रयोग रूप है,
विचारवान अर्थ और भावों पर ध्यान रखते हुए प्राणायाम
साथ अथवा प्राणायाम बिना धैर्यपूर्वक यथेष्ट समय तक
मन्त्रों से महाप्राण का स्तवन करता है, उसकी शारीरि
मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्ति प्रबल हो जाती है।
पाप कर्मण्य, सिद्ध संकल्प, मनोरथ और पूर्ण काम हो जा
है। उसकी आँखों में, भावों में हल्के नशे जैसी एक अलौकि
मस्ती आ जाती है। जो उसे हरदम निश्चिंत, आत्मतु
प्रफुल्ल, अति चैतन्य और क्रियाशील बनाये रखती है। माद
पदार्थ मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं की क्षति करते हैं। स्नायु-दौर्ब
और बुद्धि वैकल्प को बढ़ाते हैं, जबकि अर्जित प्राणों
मादकता मस्तिष्क के कोष-कोष को नवजीवन प्रदान करती
स्नायु जाल को परिपुष्ट करती है बुद्धि को तीव्र और हृदय
बलवान् करती है। मादक द्रव्य भौतिक पदार्थ है। उसकी मस
ऐन्द्रिक ही नहीं क्षणिक भी है। हाथ पाँव को अवश बनाने वा
है। प्राणों का आनन्द नशा वस्तु सापेक्ष नहीं है। वह इन्द्रियात
है, अलौकिक है, नित्य है, भौतिक नशे की अपेक्षा वह अधि
मादक होकर भी निर्दोष है, निर्विकार है। इसी से उसे ब्र
अर्थात् महान् आनन्द कहा जाता है। वह मारक नहीं
विकारों को पैदा करने वाला भी नहीं है, निर्जीवों में भी जीव
का संचार करने वाला है इसी से उसे सजीवन रस या सो

रस कहा जाता है। मधुच्छान्छा नामक ऋषि के अनुसार जितेन्द्रिय व्यक्ति ही उसका पान कर सकता है।

स्वादिष्या मादिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः।

अर्थात् हे सजीवन रस ! तेरा सुबन (सुतः) सब ओर से रात दिन होने वाली तेरी साम बौछार केवल जितेन्द्रिय के पीने योग्य ही है अपनी (स्वादिष्ठया मदिष्ठय धारया) स्वादिष्ट, मधुर तथा नशीली धारा से मुझे (पवस्य) पतित करें।

मधुच्छन्द ऋषि के इस प्रार्थना परक मन्त्र से यह स्पष्ट भाव झलकता है कि प्राणाराधना करने वाले को इन्द्रियजित या संयमी होना चाहिए विघ्न बाधाओं की परवाह न करते हुए नियम-परायण है, सदाचारी और साध्य व्यवहारी है वह जितेन्द्रिय है। उसी को संजीवनी रस प्राप्त होता है। उसे हरदम हर समय रहने वाली अनोखी मस्ती प्राप्त होती है।

पृथ्वी ही क्षुलोक की उड़ान भरने वाले परम तेजस्वी ममहीपुः ऋषि की मान्यता है कि यह दिव्य नशा दोषों, दुर्गुणों और दुस्संकटों को नाश करने वाला है। समय की साधना करने वाले साधक में पवित्र (प्रेरणाओं) को (सूझ-बूझ को) उदय करने वाला है। संयम मार्ग के पथिकों की सहायता करने वाला है। उसकी इच्छा को सबल बनाने वाला है। उन्हीं के शब्दों में–

यस्ते मदो वरेत्यस्तेनापावस्वान्धसा।
देवी वीर धशंसहा।

"(देवावी) हे दिव्य भावनाओं वाले प्रभो ! आप (अधशासहा) अघहारी है। (यः ते वरेण्यः मदः) तेरा जो सबके सेवन करने योग्य अद्भुत नशा है वह (तेन अन्धसा), इन पाप रूपी अन्धकार से मुझे (आपवस्व) उवारे। चारों ओर से पवित्रता का प्रवाह बहे। मुझे पवित्र बनावे।

अतएव यदि आप वस्तु निरपेक्ष परम पावन प्राण-रस के नशे में झूमना चाहते हैं अपनी सक्रियता को बहुगुणी करना चाहते हैं संसार के अभावों, उलझनों, कष्टों, संघर्षों में भी प्रफुल्लित और प्रमुदित रहना चाहते हैं। सिद्धि, सफलता, विकास यश और विपुलता के इच्छुक हैं, अपनी महत्वाकांक्षाओं को सफल बनाना चाहते हैं, किम्बहुना परलोक के साथ-साथ इस लोक को भी सुधारना चाहते हैं तो नियम पूर्वक अर्थ पर ध्यान देते हुए प्राणायाम से पूर्व निम्न मन्त्रों द्वारा प्राणार्चना किया करें। ये मन्त्र वेद और उपनिषद् ग्रन्थों से संग्रहीत किये गये।

'प्राणाराधन के मन्त्र"

(१) प्राणस्य ममो तस्य सर्वमिदं वरो।
यो भूत सर्वस्पेश्वरो,
यस्मिन सर्व प्रतिष्ठितम्।। (अथर्व वेद)

जिसके अधीन यह सारा जगत है, उस प्राण को नमस्कार है। जो सारे प्राणियों का (ईश्वर) शासक है, उस प्राण को नमस्कार है। जिसमें सब कुछ स्थित है, उस प्राण को नमस्कार।

(२) प्राणो विराट प्राणो देस्ट्री,
प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो हि सूर्य चन्द्रमा
प्राणामाहुः प्रजापतिम्।। (अथर्व वेद)

प्राण ही विराट है। वही सबका (देस्ट्री) प्रेरक है। भिन्न-भिन्न नामों से, भिन्न-भिन्न रूपों में प्राणों की ही उपासना करते हैं। प्राण ही सूर्य है, चन्द्रमा है, वही प्रजापति है, प्राणियों को उत्पन्न और पालन पोषण करने वाली शक्ति है।"

(३) विश्वोऽसि वैश्वानरा विश्वरूपं
त्वया धार्यते जायमानम्
विश्वं वाहुतयः सर्वा
यत्र ब्रह्माऽमृत्तौऽसि।।
(प्राणाग्नि होगोपनिषद्)

"हे प्राण ! तू ही विश्व है। क्योंकि ऊपर, नीचे, दायें, बायें, अन्दर, बाहर सब ओर से सब तरह तू उसे समाविष्ट किये हुए हैं। तू वैश्वानर है प्राणी-प्राणी के देह में ओत-प्रोत है। तू विश्वरूप है। तू ही इस तायमान (नित्य परिवर्तनशील) जगत को धारण किये हुए है।

तेरें ही प्रति सबकी आहुतियाँ (उपासना) हैं तू (ब्रह्मामृत) महान् अमृत है।

(४) प्राणोऽग्निः परमात्मा पंचवायु भिरावृतः।
अभयं सर्व भूतेभ्यो न मे भीतिः कदाचन।।

प्राणशक्ति ही अग्नि (शक्ति) है। वही पंच वायु से आवृत्त

परमात्मा है। तू मुझे सब प्राणियों से अभय कर। मुझे कभी कोई भय आशंका न हो।"

(५) तरेवाद्गिनस्तदादित्यस
तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्रं तद ब्रह्म
त आप स प्रजापतिः।। (यजुर्वेद)

"वह प्राण ही अग्नि है। सूर्य है। वह प्राण ही वायु है। वही चन्द्रमा है। वह प्राण ही शुक्र है। वही ब्रह्म है। जल और प्रजापति भी वही है।

(६) ओम् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः।
ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम्।
ओ३म् नाभिः, ओ३म् हृदयं। ओ३म्कण्ठ।
(७) ओ३म्शिरः। ओ३म् बाहुभ्याम्
यशोबलम्। करतलकर पृष्टे।

"हे पावनतम शक्ति प्रवाह प्रणव। तू ही दृश्य अदृश्य वाणी है। तू ही अन्तर्ब्राह्य प्राण है। तू ही चर्म सिद्धि है, तू ही अपदृष्टि है। तू ही स्थूल और सूक्ष्म कण है (स्थूल कण से बैखरी वाणी सुनी जाती है और सूक्ष्म श्रवण शक्ति से ठर-पश्यन्ति फूप अनहद नाद सुना जाता है। हे प्रणव। ये दोनों प्रकार की श्रवण शक्तियाँ तू ही है। तू ही नाभि है जहाँ प्राणायाम द्वारा प्राण संचय होते हैं। तू हृदय, श्रद्धा और विश्वास है। तू ही कण्ठ है। थायराइट ग्रन्थि का यह हारमोन है जो जीवन के बहुमुखी विकास को गति देता है। हे प्राणव ! तू ही मस्तिष्क है या

चेतना संस्थान है। तू भुजाओं की यशदायिनी शक्ति है। तू ही करतल है। भाग्य है और कर्श शक्ति है।

(८) तेजोऽसि, सहोऽसिः वलमऽसि भ्राजोऽसिः
देवानां धामना मासि, विश्वमसि विश्वमायुः

तू ही तेज है। उत्साह और बल है। तू ही दीप्ति है। तू ही दिव्य गुणों (सद्गुणों) का धाम है। तू विश्वरूप है। विश्व की आयु (जीवन) है।

(६) ओ३म् प्राणापान व्यानोदान समाना मे।
शुध्यन्ताम ज्योतिरह विरजा विपाप्मा
भूयाहू स्वाहा।

"हे प्रणम (प्राण के आदि स्रोत) मेरे पाँचों प्राण-प्राण, अपान, ध्यान, उदान और समान शुद्ध हों। मैं रजोगुण रहित, पाप रहित ज्योति सम निर्मल हो जाऊँ। यही आप से (भूयास) बार-बार (स्वाहा) आत्म निवेदन (विनती) है।"

(१०) ओ३म् प्राणनश्च मेऽपाश्च मे-
असुथच मे, चित्तं च मे अधीतं च मे
वाक् च मे मनश्च मे चक्षु पूच मे, श्रोत्रं चं मे,
दक्षश्च मे बलं च मे यत्तेन कल्पन्ताम्।

"हे प्रणव ! अर्थात् हे प्राण-निर्झर मेरे प्राण, अपान, ध्यानादि पंच वायुओं को, शरीरस्थ जीवनी शक्ति का मेरे (चित्त धारणाशक्ति) का स्वाध्याय जन्म में ज्ञान का मेरी वाणी, मन, चक्षु और श्रोत का मेरी चतुराई या व्यवहारिक बुद्धि का और मेरे बल का इस प्राणायाम की क्रिया (यज्ञ) द्वारा कल्प कर दो। शुद्ध और पवित्र

कर दो।

(११) येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुश्ते सदा।

तेन सहस्त्रं धारेण पावमान्यः पुन तु मा।।

'प्राण शक्ति की जिस पवित्रता से देवगण (महात्मा लोग) अपनी आत्मा को सदा शुद्ध करते रहते हैं, वही पावमान (पावनतम प्राण) हजार धाराओं (रश्मियों) से मुझे शुद्ध करें।"

(१२) ॐ यथा द्यौश्च पृथिवीं चा न विभीता न रिष्यतः।

एषा मे प्राण मा विभे, एवा मे प्राण मा रिषः।

"हे प्रणव ! प्राण स्त्रोत ! जिस प्रकार द्यौ लोक और पृथ्वी भय व क्षीणता को प्राप्त नहीं होती है, उसी प्रकार मेरे प्राण भयभीत और क्षीण न हों।"

(१३) यथावायुश्चान्तरिक्ष च न विभीतो न रिष्यतः।

एवा मे प्राण सा विम्वेः एवा मे प्राण मा रिषः।।

जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष भय और क्षीणता को कभी नहीं प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ही शक्ति के भण्डार ! हमें भी ऐसी शक्ति व सामर्थ्य दो, जिससे हमारे प्राण भयभीत और क्षीण न हो।"

(१४) ॐ यीवः शिवतमो रसल्तत्य भाजतेह न उशतीरिव मातरः।।

"हे प्राण-निर्झर ! प्रेम करने वाली माताओं के समान तो तुम्हारा परम् कल्याणकारी रस (प्रवाह) है, (तस्य भाजतेहन) उसका हम यहाँ भरपूर भोग करें।

(१५) युक्तेन मनसा वयं देवस्य वितुः
सर्वे स्वार्थम, शक्त्या

"स्वर्ग अर्थात् उच्चस्तरीय सुख की प्राप्ति के लिए हम अपनी शक्ति भर प्राणायाम द्वारा नियोजित मन से जगत्प्राण रूप सूर्य देव की उपासना करते हैं।"

(१६) ओ३म् पुनर्मनः पुनरायु भ आगन्तुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्

पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत म आगन्। वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवधात्। (यजुर्वेद)

"हे प्रणव ! हे प्राण-स्तोत्र ! मनुष्य देह बड़ी दुर्लभ है। आपकी कृपा से मुझे यह मन फिर से प्राप्त हुआ है। पाँचों प्राण फिर से उपलब्ध हुए हैं। मुझे यह मनुष्य जीवन (आयु) पुनः मिला है। आँख और कान फिर से मिले हैं। हे सर्वजन हितकारी वैश्वानर (विश्व भर के प्राण) मुझे (दुरित) दुराचार और पाप से बचाओ, जिससे मैं इस महान जीवन का सदुपयोग कर सकूँ और आवागमन के चक्र से छूटकारा पाऊँ।

पवित्र भाव से किया गया प्राणाराधन निश्चय रूप से अनुकूल परिणाम उपस्थित करता है।

शास्त्रों में प्राणायाम महिमा

शास्त्रों में प्राणायाम द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों की काफी चर्चा है। मनुस्मृति ६।७१।७२ में लिखा है "जैसे धातुओं को अग्नि में तपाने से उनके मल जल जाते हैं वैसे ही प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों के सब दोष (पाप) भस्म हो जाते हैं। प्राणायाम द्वारा समस्त दोषों को जलाना चाहिए।" वृहद्योगियाज्ञावल्क्य स्मृति (८–४०) में घोषणा है "जो व्यक्ति नित्यप्रति सूर्योदय के समय सौ प्राणायाम करता है, वह निर्मल होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है।" योगवासिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ जी भगवान राम को उपदेश देते हैं, "अभ्यास के द्वारा प्राणों की गति रुक जाने पर मन शान्त हो जाता है और केवल निर्वाण ही शेष रह जाता है (५।८७।४६)। जैसे पंखा बन्द कर देने से हवा की गति रुक जाती है, वैसे ही प्राण के निरोध से निश्चित ही मन शान्त हो जाता है (६५।६।४१) हे राम ! प्राण-शक्ति का निरोध होने से मन का निरोध हो जाता है। जैसे अन्य पदों की अपनी छाया होती है, वैसे ही प्राण की छाया मन है (५।१३।८२)। हे राम ! प्राणों को वश में कर लेने से मनुष्य राज्य प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक की समस्त सिद्धि सम्पदायें प्राप्त कर सकता है (६।८०।३५)।"

उपनिषदों में प्राणायाम का विशेष वर्णन है। यथा "प्राणायाम पाप रूपी ईंधन के लिए अग्नि स्वरूप है और संसार सागर से पार होने के लिए सेतु के समान है। प्राणायाम का अभ्यास होने से सब रोग दूर हो जाते हैं। हिचकी, खाँसी, श्वांस, सिर, कान

और आँख की पीड़ा आदि विविध प्रकार के रोगों का कारण वायु का विकार ही होता है। जिस तरह सिंह, हाथी, व्याघ्र आदि को धीरे-धीरे वश में किया जाता है, उसी प्रकार वायु को भी क्रमशः वश में करना चाहिए (योग चूड़ामणि उपनिषद्)।" "जिस साधना का प्राण इस मण्डल को पार करके मस्तक में पहुँच जाता है, उसकी कहीं भी मृत्यु नहीं होती और वह पुनर्जन्म के चक्र में नहीं पड़ता।" (अमृतादोपनिषद्)। उज्जायी प्राणायाम से मस्तक की उष्णता, गले का कफ और अन्य अनेक रोग दूर होते हैं, देह की अग्नि की वृद्धि होती है। इसमें नाड़ी सम्बन्धी जलोदर और धातु सम्बन्धी रोग भी दूर हो जाते हैं। शीतली प्राणायाम से गुल्म, प्लीहा, पित्त, ज्वर, तृषा आदि दूर होते हैं। भूस्त्रिका प्राणायाम से कण्ड की जलन मिटती है, शरीर की अग्नि बढ़ती है। कुण्डलिनी जागती है और पुण्यप्रद, पाप नाशक, शुभ तथा सुखदायक है। (योग कुड़ल्युपनिषद्)।" तीन वर्ष तक प्राणायाम करने वाला योग सिद्ध हो जाता है। वह योगी वायु को जीतने वाला, जितेन्द्रिय, अल्पाहार, स्वल्प निद्रा वाला, तेजस्वी तथा बलवान होता है, अकाल मृत्यु का भय मिटकर दीर्घ आयु प्राप्त होती है। सामान्य प्राणायाम से व्याधि और पापों का नाश होता है। विशेष से महा व्याधियाँ तथा पाप रोग मिटते हैं, उत्कृष्ट से अल्प-मूत्र, अल्प-मल शरीर की लघुता होती है। इन्द्रियाँ और बुद्धि तीव्र हो जाती हैं और तीनों काल का ज्ञान हो जाता है। नाभि केन्द्र में प्राण धारण करने से कुक्षिरोग नष्ट होते हैं। नासाग्र में धारण करने से दीर्घायु और शरीर की लाघवता प्राप्त होती है। ब्रह्ममुहूर्त में जिह्वा से वायु

को खींचकर पीने से वाक् सिद्धि प्राप्त होती है। शरीर का जो अंग रोग पीड़ित हो उसमें वायु को धारण करने से वह निरोध हो जाता है। जिसका प्राण वायु क्रम में चलता है, वह प्राणाजित हो जाता है। फिर वह दिन, रात्रि, पक्ष मास, अयन आदि के काल भेद को अन्तर्मुख होकर जानने लगता है।" (त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद)। इस तरह से प्राणायाम द्वारा सूक्ष्म ग्रन्थियों और षट्चक्रों का जागरण होता है और अनेकों प्रकार की ऋद्धि सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं जिससे साधक को अपने उत्थान का पथ तो प्रशस्त होता ही हैं, वह दूसरों के रोग शोक को भी दूर करने की सामर्थ्य वाला हो जाता है जिससे जनता जनार्दन की सेवा का भी उसे भरपूर अवसर प्राप्त होता है।

पुराणों में भी प्राणायाम पर यत्र-तत्र अच्छा प्रकाश डाला गया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

मार्कण्डेय पुराण में दत्तात्रेय के योगाध्याय में प्राणायाम का उपदेश देते हुए कहा है—

"प्राणायाम के दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों की ओर ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करे। जैसे अग्नि में पड़कर सब धातु दोष रहित हो जाती है, वैसे ही प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट हो जाते हैं। योग ज्ञाता प्रथम प्राणापान के निरोध को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के तीन प्रकार हैं—लघु, मध्यम और उत्तरीय। लघु प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला में कहा गया है। निमेष और उन्मेष का समय ही मात्रा है। ऐसी बारह मात्रा होने पर लघु प्राणायाम होता है। पहले प्राणायाम में स्वेद, दूसरे से कम्प और तीसरे से

विषादादि दोषों को भी जीते। जैसे सेवा के द्वारा सिंह, व्याघ्र और हाथी भी कोमल स्वभाव हो जाते हैं, वैसे ही प्राण को वश करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। जैसे हाथी का स्वामी मस्त हाथी को वश करके इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही योगीजन प्राण के द्वारा ही इच्छानुसार कार्य करने में समर्थ होते हैं। जैसे पाला हुआ सिंह मृगों को मारता है, मनुष्यादि की हिंसा नहीं करता वैसे ही साधित प्राणवायु के द्वारा पाप नष्ट होते हैं इसलिए योगियों को प्राणायाम परायण होना चाहिए।''

विष्णु पुराण (६।७।४०–४५) में कहा है–

''अभ्यास द्वारा प्राण वायु को वश में किया जाना प्राणायाम है। उसके सजीव और निर्जीव यह दो प्रकार हैं। प्राण और अपान के द्वारा निरोध करने से दो प्राणायाम होते हैं तथा इन दोनों को एक ही समय रोकने से तीसरा कुम्भक प्राणायाम होता है। सजीव प्राणायाम के अभ्यासी का आलम्ब अनन्त भगवान भगवान् का स्थूल रूप होता है। फिर वह प्रत्याहार के अभ्यास पूर्वक अपनी विषयासक्त इन्द्रियों को संयमित करके अपने चित्त के अनुसार चलने वाली बना लेता है। इससे चंचल इन्द्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं, जिनको वशीभूत किये बिना योग-साधन सम्भव नहीं होता। इस प्रकार प्राणायाम से वायु को और प्रत्याहार से इन्द्रियों को वश में करके चित्त को शुभाश्रय में स्थित करना चाहिए।''

वायु पुराण में प्राणायाम से दोषों का वर्णन करते हुए कहा गया है–

"प्राणायाम से युक्त नित्य आत्मा वाले विप्र के समस्त दो नष्ट हो जाया करते हैं और फिर वह केवल सत्यगुण में ही स्थित रहा करता है। जो भी तपस्यायें तपी जाती हैं, व्रत कि जाते हैं और नियम ग्रहण किये जाते हैं तथा समस्त यज्ञों करने का जो भी कुछ फल होता है, वह सब प्राणायाम समान होता है। जो कोई माघमास में कुशा अग्रभाग से जल बिन्दु को ग्रहण करता है और सौ वर्ष तक करता रहता है, यह सब प्राणायाम के तुल्य हो जाता है। प्राणायामों के द्वारा मनुष् अपने समस्त दोषों को दग्ध कर दिया करता है, धारणाओं द्वारा किल्तिष का नाश कर देता है, प्रत्याहार से विषयों का संहार कर देता है और ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणों का क्ष करता है। इसलिए योगी को सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम परायण होना चाहिए। फिर वह समस्त पापों से विशुद्ध आत् वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है।

अग्नि पुराण में प्राणायाम के विभिन्न लाभों की ओर संके करते हुए कहा गया हैः–

"प्राण के जित होने पर हिक्का श्वास आदि और स्वरू दोष विण्मूत्र आदि होतें हैं और प्राणायाम का फल आरो शीघ्रगामी होना उत्साह, स्वर का सौष्ठव, बल, वर्ण, प्रसाद औ समस्त दोषों का क्षय होता है।"

गरुड़ पुराण में प्राणायाम की परिभाषा व भेदों का वर्ण करते हुए कहा गया हैः–

"वायु पर जय प्राप्त कर लेना ही प्राणायाम होता है। म के ध्यान से जो युक्त होता है, वह अगर्भक कहा जाता है। इ

प्रकार से वह दो एवं तीन प्रकार का है। पूरण करने से वह पूरक होता है। निश्चल होने से कुम्भक और रेचन से रेचन कहा जाता है बारह मात्राओं वाला लघु प्राणायाम होता है और चौबीस भुजाओं वाला पर होता है तथा छत्तीस मात्राओं से युक्त परम श्रेष्ठ होता है।"

गीता (४।२६) में प्राणायाम को यज्ञ की संज्ञा देते हुए कहा है—"प्राणायाम में संलग्न योगी प्राण और अपान की गति का निरोध करके अपान में प्राण का यज्ञ किया करते हैं और प्राण में अपान का यज्ञ करते हैं।" ऐसे यज्ञ को गीता (४।३०।३१) में परमात्मा प्राप्ति का साधन बताया गया है—'नियमित आहार-बिहार का पालन करने वाले योगी प्राणों का ही प्राणी में यज्ञ करते हैं। इस तरह से यज्ञों द्वारा जिनके पाप निवृत्त हो जाते हैं, ये सब यज्ञ द्वारा प्राप्त ज्ञानामृत का सेवन करने वाले सभी योगी ईश्वर को प्राप्त करते हैं। यह न करने वाले को न इस लोक में सुख मिलता है, न परलोक में।" इस तरह से गीता में प्राणायाम को मोक्ष प्राप्ति का एक श्रेष्ठ साधन बताया है।

महर्षि पतञ्जलि ने प्राणायाम को स्वास्थ्य सुधार व रोग निवारण की अपेक्षा सर्वोच्च आत्मज्ञान की प्राप्ति का एक साधन माना है। योग-दर्शन (२।५२) में कहा है—"प्राणायाम से ज्ञान का आवरण नष्ट होता है।" सञ्चित कर्मों के संस्कार, अविद्या, जनित क्लेश ज्ञान के आवरण माने जाते हैं। प्राणायाम से इन्द्रियों के मल नष्ट होते हैं और विवेक की जागृति होती है। अगले सूत्र (२–५३) में स्पष्ट किया है कि प्राणायाम से मन की चञ्चलता नष्ट होती है और उसमें धारणा की योग्यता आ जाती है।

श्रौत सूत्रों, धर्म सूत्रोंव ग्रह्य सूत्रों में भी मन्त्र जप व अ
धार्मिक क्रियाओं के साथ प्राणायाम की प्रेरणा दी गई है
आपस्तम्ब सूत्र में कहा है कि मन्त्र जप करतें हुई प्राण वायु
भीतर रोकना चाहिए। कुम्भक में विभिन्न विधियों का भी उल्ले
किया गया है। बोधायन सूत्र में ओंकार, गायत्री की साधना
साथ कुम्भक करने का विधान वर्णित किया है। अन्य सूत्र ग्र
में इनसे मिलते-जुलते वाक्य मिलते हैं जिसमें प्राणायाम
महत्त्व प्रदर्शित किया गया है।

इस तरह से हमारे शास्त्रों ने प्राणायाम से लाभों की पु
करते हुए इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और उसे ईश
प्राप्ति का उत्कृष्ट साधन घोषित किया है।

प्राणायाम-परिभाषा और भेद

शास्त्र का वचन है–

प्राणास्तु द्विविधा ज्ञेयाः स्थल सूक्ष्म प्रभेवतः।
यथा जयः स्यात्प्राणमां प्राणायामः स चोच्यते।।

प्राण के दो भेद हैं–स्थूल और सूक्ष्म। जिस पद्धति
अभ्यास से इन दोनों प्रकार के प्राणों पर नियन्त्रण प्राप्त कि
जा सके, उसे प्राणायाम की संज्ञा दी जाती है।

साधारणतः प्राणायाम का अभिप्राय–प्राणों का व्यायाम सम
जाता है परन्तु इसका अन्तिम लक्ष्य प्राणों पर विजय प्रा
करना होता है।

योगी गोरखनाथ के अनुसार–

प्राणः स्वदेहजीवायुरायामस्तन्निरोधन निति।'

''अपने शरीर की जो जीवन की अवस्था होती है, उसे प्राण की संज्ञा दी जाती है। उस अवस्था के अवरोध का नाम प्राणायाम है।

श्वास-प्रश्वास का प्रवाह जब नियमित रूप से चलता है और वह विराम पूर्वक आता जाता है तो उसे प्राणायाम कहते हैं। श्वास प्रश्वास की स्वाभाविक गति का नियम पूर्वक नियमन करके स्वास्थ्य की स्थिरता और आयु की वृद्धि करने की क्रिया की पद्धति को प्राणायाम कहते हैं।

योगदर्शन (२।४६) में महर्षि पातंजलि ने प्राणायाम की परिभाषा करते हुए कहा है'–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।

''आसन पर स्थिर होने पर श्वांस-प्रश्वांस की गति को रोकना प्राणायाम है।''

बाहर की वायु को नासिका से खींचना श्वांस है तथा कोष्ठ स्थित वायु को नासिका से बाहर निकालना प्रश्वांस है। श्वांस, प्रश्वांस की गतियों का प्रवाह रेचक-पूरक कुम्भक द्वारा बाह्य-भीतर तीनों स्थानों में रोकना ही प्राणायाम है। प्राणायाम तीन प्रकार का है। बाह्य वृत्ति (रेचक), आभ्यन्तर वृत्ति (पूरक), स्तम्भ वृत्ति (समकुम्भक) वह प्राणायाम आसन सिद्धि के बाद सम्पन्न होता है अतः बिना आसन सिद्धि किये प्राणायाम करना उचित नहीं। प्राणायाम का अभ्यास उसी समय ठीक होगा जब आसन सिद्धि हो जावे।

प्राणायाम के मन्त्रों का वर्णन करते हुए योग दर्शन में कहा

गया है–

वाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्
दीर्घसूक्ष्मः। (२।५०)

"(प्राणायाम) बाह्य वृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति–(तीन प्रकार) का होता है तथा वह देश काल संख्या से दे हुआ लम्बा और हल्का हो जाता है।"

इस सूत्र में प्राणायाम के ३ भेदों को कहा है। वह प्रकार है कि श्वांस को बाहर निकालकर उसको बाहर जितने समय तक सुख से रुक सके रोके रहना और यह ध्यान रखना कि बाहर आकर कहाँ ठहरा है और कितने स तक ठहरा है और उतने समय में स्वाभाविक प्राण की गति कितनी संख्या होती है। वह बाह्य वृत्ति रेचक प्राणायाम इसमें वायु को रेचक पूर्वक रोका जाता है। यह देश, का संख्या से परीक्षा करते समय प्राणायाम जैसे-जैसे उन्नत हो जाता है वह लम्बाई (बहुत देर तक रुकने वाला) और सू (हल्का) होता है अर्थात् परिश्रम कम होता जाता है। जैसे रे प्राणायाम प्रथम आरम्भ किया तो जाँच करने के लिए नासि से कुछ दूरी पर रुई रखकर यह देखें कि रुई श्वांस से हिल है और कितने अंगुल नासिका से दूर गई है। रुई और नासि छिद्र के अन्तर से लम्बाई मालूम होती है। कुछ दिनों अभ्यास से और ज्यादा दूर पर रुई रखकर देखने से, अ दूरी पर रुई हिलने से लम्बाई मालूम होती है। इस प्रकार बाहर अंगुल रेचक स्थित हो जाय तो उसकी दीर्घ सूक्ष्म स जानना चाहिए।

जिस प्रकार रेचक प्राणायाम में श्वांस की लम्बाई बाहर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार पूरक प्राणायाम में भीतर बढ़ती जाती है। अभ्यास करते-करते प्राण वायु नाभि तथा पैर तले तक, ऊपर मस्तक तक पहुँच जाती है। नाभि तक पहुँचने की स्थिति को दीर्घ सूक्ष्म कहते हैं। यह परीक्षा रेचक-पूरक की है। कुम्भक में न बाहर निकलती है, न भीतर वायु जाती है। यह देश-परिद्रष्ट देश द्वारा परीक्षा हुई।

इसी प्रकार रेचक-पूरक-कुम्भक प्राणायाम की काल (समय) द्वारा परीक्षा की जाती है। प्रारम्भ में जितने समय तक प्राणायाम होता है धीरे-धीरे ज्यादा समय तक रुकने वाला होता जाता है। बढ़ते-बढ़ते जब ६ मात्राओं पर्यन्त प्रश्वांस की गति का अभाव हो, वह दीर्घ सूक्ष्म संज्ञा वाला होता है। एक मात्रा का समय हाथ को जंघा के चारों ओर घुमाकर चुटकी बजाने में जितना समय होता है। यह काल परीक्षा है। इसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा कई मामूली स्वाभाविक श्वांस-प्रश्वांस का एक-एक श्वांस होता है। जब अभ्यास से १२ श्वांस प्रश्वांस का एक श्वांस हो जावे, तब प्राणायाम दीर्घ सूक्ष्म संज्ञा वाला होता है।

२४ श्वांस-प्रश्वासं का एक श्वाँस होने तक 'प्रथम उद्घात मध्य दीर्घ सूक्ष्म" कहलाता है। ३६ स्वाभाविक श्वांस-प्रश्वांस का एक श्वांस होने तक "द्वितीय उद्घात मध्य दीर्घ सूक्ष्म" कहलाता है। ६४ श्वांस तक 'तृतीय उद्घात तृतीय दीर्घ सूक्ष्म कहलाता है। उद्घात—का अर्थ प्राण वायु का सिर नाभि में टक्कर खाना है। यह श्वांस-प्रश्वांस की संख्या द्वारा परीक्षा है।

अभ्यास करते-करते शनैः-शनैः बढ़ता जाता है। श्वांस क
संख्या का नियम है कि स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में १५ बा
श्वांस लेता है। वायु के अन्दर जाने की स्थिति को "श्वांस" ए
भीतर रुकने की स्थिति को 'विराम' बाहर निकालने की स्थि
को प्रश्वांस' एवं बाहर रुकने की स्थिति को 'विराम' कहते
इस प्रकार प्राणायाम के द्वारा शरीर को प्राण-वायु का वशीक
हो जाता है और शरीर स्वस्थ दीर्घ आयु, कुण्डलिनी जाग्र
होती है।

बाह्य वृत्ति वाले रेचक को जिस प्रकार बता चुके हैं, उस
प्रकार अभ्यान्तर वृत्ति पूरक को बताते हैं। प्राण वायु को भीत
ले जाकर जितने समय तक सुख से रुके रोके रहना और य
भी मालूम करना कि अन्दर कहाँ तक प्राण वायु रुकता
कितने समय तक ठहरता है और उतने समय में मामूली श्वा
कितनी बार चलती है। यह आभ्यान्तर पूर्वक प्राणायाम है।

बिना रेचक-पूरक के अर्थात् प्राण वायु स्वभाव से बाह
निकला हो या भीतर गया हो, जहाँ हो वहीं उसकी गति क
रोक दिया जाता है और यह देखना कि प्राण किस देश में रु
हैं, हृदय की धड़कन, हाथ की नाड़ी से मालूम होता है। प्रा
कितने समय तक रुकते हैं? स्वाभाविक नीति की संख
कितनी है? इस तरह देश-काल संध्या के परिणाम से दीर्घ सूक्ष
जानना चाहिए। यह स्तम्भ वृत्ति वाला कुम्भक प्राणायाम है
अभ्यास करते समय तीनों—रेचक-पूरक-कुम्भक को प्रणव रु
जानकर प्रणव उपासना की भावना ॐ या गायत्री का ज
करना चाहिए।

किसी-किसी शास्त्रकार ने कुम्भक के आठ भेद वर्णन किये हैं। उनके नाम–(१) सहित, (२) सूर्य भेद, (३) उज्जाई, (४) शीतली (५) भस्त्रिका, (६) भ्रामरी, (७) मूर्छा, (८) केवली है।

प्राणायाम का अभ्यास बहुत सावधानी से करना चाहिये। अनुभवी गुरु से एवं शास्त्रों द्वारा इसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के बाद ही प्रारम्भ किया जावे तो सुगमता से सिद्ध होता है।

प्रथम आसन सिद्धि की क्रिया करने के बाद खेचरी मुद्रा से नेत्र बन्द करके एवं सिर गर्दन मेरुदंड सीधे रहे तथा शरीर शिथिल करके प्राणायाम करना चाहिये। आरम्भ में सीधे नाक के छिद्र को सीधे हाथ के अँगूठे से दबाकर पूरक करते हैं। कुम्भक करने पर सीधे हाथ की अनामिका और कनिष्टका अँगुलियों से नासिका के बाँये छिद्र को दबा कर प्राणवायु को भीतर रोकते हैं। सीधे नाक के छिद्र से रेचक करते समय बाँये छिद्र को बन्द किये रहते हैं। शनैः-शनैः अभ्यास करने पर अँगुलियों की सहायता के बिना भी रेचक-पूरक-कुम्भक करते हैं।

चौथे प्राणायाम का वर्णन योग दर्शन २।५१ में इस प्रकार किया है–

बाह्यभ्यन्तरविषयाक्षेपो चतुर्थ।।

"बाहर और भीतर के विषयों को त्याग देने से स्वतः होने वाला चौथा प्राणायाम है।"

पूर्व सूत्र में तीन प्राणायाम वर्णन किये हैं। उससे यह भिन्न चौथा प्राणायाम है। इसमें अन्तर इतना ही है कि पूर्वोक्त रेचक, पूरक कुम्भक प्राणायामों में देश काल संख्या से परिदृष्ट

बाह्यविषय आभ्यन्तर विषय है। इस जानकारी को त्याग कर मन को इष्ट चिंतन में लगा देने से देश काल संख्या के ज्ञान के बिना ही स्वतः प्राण की गति जिस किसी देश में रुक जाती है, वही यह चौथा प्राणायाम है। यह अनयास होनें वाला राजयोग प्राणायाम है। इसमें मन की चंचलता न होने से अपने आप प्राणों की गति रुक जाती है। पहले प्राणायामों में प्रयत्न द्वारा अभ्यास करते-करते प्राणों की गति रुकती है।

१–रेचक में कोष्ठस्थित वायु को बाहर निकाल कर रोक दिया जाता है।

२–पूरक में श्वांस को अन्दर खींच कर अन्दर रोक दिया जाता है।

३–श्वांस प्रश्वांस की गति का अभाव कुम्भक है।

बाहर भीतर कुम्भक के बिना ही रेचक-पूरक द्वारादेश-काल संख्या के ज्ञान के बिना स्वयं ही श्वाँस-प्रश्वाँस की गति के निरोध से यह प्राणायाम होता है।

सरल उपाय यह है कि पहले रेचक द्वारा प्रश्वांस को जहाँ तक जा सके बाहर ले जायें। पुनः श्वांस को बिना रोके पूरक द्वारा अन्दर ले जायें। इसी प्रकार अभ्यास करते-करते कुम्भक के बिना स्वयं दीर्घसूक्ष्म होकर श्वाँस-प्रश्वाँस की गतियों का अभाव हो जाता है। साथ साथ ओंकार या गायत्री मन्त्र का मानसिक जप अवश्य करते रहना चाहिये।

गुदा एवं लिंग के छिद्रों को बाँयें पैर की एड़ी से बन्द करने को मूल बन्ध कहते हैं तथा दोनों जंघाओं को मोड़कर पैरों के तलुओं को आपस में मिलाकर पेट को रीढ़ की हड्डी

से चिपटा देने को उड्डियान बन्ध कहते हैं। इस प्राणायाम क्रिया को मूल-बन्ध तथा उड्डियान बन्ध लगाकर प्रारम्भ करना चाहिये, क्योंकि इनसे प्राणायाम करने में प्राणवायु को ऊपर ले जाने में सहायता मिलती है अर्थात् अपान वायु ऊपर प्राण वायु से आसानी से मिल जाती है। यद्यपि प्राणायाम अनेक प्रकार के हैं परन्तु राजयोग में उपरोक्त प्राणायाम निर्जीव समाधि में मन के उद्वेग शान्त करने में अति उत्तम है।

कुछ परम्परागत प्राणायाम और हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

सप्त व्याहृति-प्राणायाम, अग्नि प्रदीप्त-प्राणायाम, अग्नि प्रसारण-प्राणायाम, एकांड-स्तम्भ प्राणायाम, हृदय-स्तम्भ-प्राणायाम, अनुलोम-विलोम-प्राणायाम, मध्य रेचक प्राणायाम, वक्षस्थल-रेचक-प्राणायाम, दीर्घ-श्वांस-प्रश्वांस-प्राणायाम, नाड़ी शोधन प्राणायाम नाड़ी अवरोध-प्राणायाम, शक्ति-प्रयोग प्राणायाम, त्रिबन्धरेचक-प्राणायाम, त्रिबन्ध-कुम्भक-प्राणायाम, ऊर्ध्वमुख-भस्त्रिका-प्राणायाम, वामरेचक-प्राणायाम, दक्षिण रेचक प्राणायाम, मुखपूरक-कुम्भक-प्राणायाम, वायवीय-कुम्भक प्राणायाम, प्राह्याभ्न्वर-कुम्भक प्राणायाम, षन्मुखी-रेचक प्राणायाम, चतुर्मुखी-प्राणायाम सीत्कार-प्राणायाम, प्रच्छर्दन प्राणायाम, चन्द्रभेदन-प्राणायाम, यन्त्रगमन-प्राणायाम, सुख-प्रसारण-पूरक-कुम्भक-प्राणायाम, सर्वद्धारबद्ध-प्राणायाम, कण्ठ-वातउदा-पूरक-प्राणायाम, कपालभाति-प्राणायाम, सर्वांग-स्तम्भ-प्राणायाम आदि।

इनमें से अधिकांश की विधि का वर्णन इस पुस्तक में विभिन्न स्थानों पर किया गया है।

तालयुक्त श्वांस ही प्राणायाम है

प्रायः प्राणायाम के विषय में अनेक अपचर्चायें सुनने को मिलती हैं। कुछ लोग अक्सर कहते मिलेंगे कि प्राणायाम तो यौगिक क्रिया है, वह योगी लोगों के करने की चीज है। साधारण ग्रहस्थों को प्राणायाम कभी नहीं करना चाहिए। उससे फेंफड़े कमजोर होते हैं, हृदय दुर्बल होता है। ऐसे लोगों की नासमझी पर बड़ी हंसी आती है। सच तो यह है कि उन्होंने न तो प्राणायाम-विज्ञान का अध्ययन-मनन किया है, न प्राणायाम पर कोई पुस्तक पढ़ी है और न कभी प्राणायाम के अभ्यास ही किये हैं। उनकी उक्तियाँ मात्र अन्ध-विश्वास ही हैं। रात दिन हम उलटे सीधे श्वांस लेते ही हैं, कभी नाक से, कभी मुँह से कभी हाँफ-हाँफ कर, कभी धीरे-धीरे। प्राणायाम में इसी श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया को नियमित रूप से, व्यवस्थित ढङ्ग से किया जाता है। अब सहज ही समझा जा सकता है, अनियमित ढङ्ग से श्वांस-प्रश्वांस लेना क्यों कर हानिकारक हो सकता है।

अनियमित श्वांस के दुष्परिणाम-

गलत ढङ्ग से से काम करने पर ही हानि होती है। जो विद्यार्थी कक्षा में कमजोर चलते हैं और परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं, वह अनियमित ढङ्ग से पढ़ते हैं। जो छात्र नियमित रूप से पढ़ता है, उसके अनुत्तीर्ण होने की संभावना नहीं रहती। यही बात श्वांस-प्रश्वांस के विषय में हैं। हृदय फेफड़े आदि नियमित ढंग से श्वास-निकाल कर के दूषित होते हैं, न कि स्वस्थ रीति से श्वसन क्रिया करने से। भगवान ने नाक और मुँह अलग-अलग

बनाये हैं। नाक साँस लेने के लिये और मुँह खाने-पीने और बोलने के लिए। भगवान की इस विवेकमयी व्यवस्था के विपरीत जो व्यक्ति मुँह से साँस लेते हैं, उनके ही गले, फेफड़े आदि अङ्ग जीवाणुओं से संक्रमित होकर रोगी हो जाते हैं। श्वांस के लिए नाक का सही प्रयोग करने वाला व्यक्ति तो वायु-प्रदूषण जन्म संक्रमण को विसंक्रमित कर देता है। अतएव सिद्ध हुआ कि प्राणायाम सबके लिए लाभकारी है। आयु को बढ़ाने वाला है। रोगी को भी निरोग बनाने वाला है।

तालयुक्त श्वास की अपरिमित शक्ति

कुछ अबोध लोग प्रायः कहते हैं कि साँस की साधारण कसरत से क्या हो सकता है? घण्टों तक श्वांस रोकने से भले ही कुछ लाभ हो, कुछ सैकिण्डों तक श्वांस स्तम्भन से आयु कैसे बढ़ सकती है। ऐसे वे फौजी परेड़ के तालमय कदम-प्रकदम को बच्चों का खिलवाड़ ही समझते हैं। उन्हें नहीं मालूम कि साधारण चलने-फिरने की क्रिया भी यदि ताल के साथ नियमित ढङ्ग से की जाय, तो वह भी बड़े-बड़े पुलों को सहज में तोड़ने की अणु-ऊर्जा अपने में संजोती है। जब तक इस तथ्य की जानकारी नहीं थी, तब तक 'लेफ्ट राइट' लेफ्ट राइट' करते हुए फौजी टोलियाँ पुलों को पार करती थीं और कुछ टोलियों के निकलने के बाद ही अगली टोली को पुल टूटा हुआ मिलता था। बाद को खोज की गयी। तब ज्ञात हुआ कि 'लेफ्ट राइट' 'लेफ्ट राइट' के कदम प्रकदम की तालमयी चमक की ही ऊर्जामयी शक्ति ने पुल को तोड़ा है। तब से यह स्पष्ट आदेश

कर दिया गया कि किसी नदी आदि के पुलों पर से जब पैदल पलटन निकले तो ताल युक्त कदम रखना बन्द कर दे। सेना की टुकड़ियाँ बिखरी हुई चाल से ही पुल पार करें। तब से ऐसा ही किया जाता है। अब कबायद करती हुई सैनिक टोलियाँ पुल पर नहीं चला करती क्योंकि वे जानते हैं कि कदम मिला कर चलने से कम्पन इतने शक्तिशाली हो सकते हैं कि वे पुल और पलटन दोनों को ही ले बैठे।

ताल युक्त साधारण सी कदम-पोशी की अद्भुत शक्ति आपने देखी। इसी से ताल-युक्त श्वांस की अपरिचित शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।

महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन का कहना है कि इस संसार का प्रादुर्भाव आदि-कम्पन (एल्सोल्यूट वाइब्रेशन) से हुआ है। संसार का प्रत्येक अणु प्रकम्पनमय है। अणु का इलैक्ट्रान नित्य स्पन्दन शील नाभिक से अनुप्राणित होकर अपनी परिधि में बराबर चक्कर लगाता है। उसकी गति भी ताल युक्त है। निश्चित संख्या में एक से चक्कर लगाने के बाद यथाक्रम जब वह अपनी गति बदलता है, तभी नये परमाणुओं का विस्फोट होता है। इसी से सृष्टि-वस्तुओं (गैस, तरल और ठोस पदार्थों) में नित्य परिवर्तन और सृजन कार्य चलता रहता है। सृष्टि की उपापचय क्रिया तालबद्ध स्पन्दन का ही परिणाम है। बस वैज्ञानिक विश्लेषण से भी प्राणायाम अर्थात् तालबद्ध सुनियमित श्वसन-उच्छवसन की महती शक्ति का बोध होता है।

गाना हमें क्यों मनोहर लगता है? हारमोनियम की ध्वनि क्यों प्यारी लगती है? पियानों क्यों अच्छा लगता है? तबले में

क्या मनोहारिता है? उत्तर एक ही है, गाने में नियमित आरोह-अवरोह होता है। हारमोनियम की सुन्दरता सरगम (स, रे, ग, म, प, ध, नी) की तालमयी आवृत्ति का ही परिणाम है। यही बात पियानो में है। धा, धी, ना, धा, धी, ना या धिक् धिक् धा, धी, ना, आदि की अनुक्रम पूर्वक ताल के कारण ही तबला हमें अच्छा लगता है। किसी भी बाजे को यदि बिना नियम बजाया जाय, ध्वनि-समूह की आवृत्ति प्रत्यावृत्ति न की जाय, तो वह कान फोड़ने वाला प्रतीत होता है। ताल के साथ यदि ताली भी बजायी जाय, तो उसमें भी जन समूह को रोमांचित भाव-विभोर और आह्लादित करने की अपूर्व शक्ति है। फिर तालमय श्वांस-प्रश्वांस के सरल व्यायाम से मन बुद्धि, प्राण और शरीर को स्वस्थ और आत्म-बल भरित यदि किया जा सकता है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

तालयुक्त श्वांस-प्रश्वांस में विलक्षण शक्ति है दिव्य परमगति भी तालयुक्त ही है। तालयुक्त श्वांस-प्रश्वांस के द्वारा तालमयता के माध्यम से प्रकृति के सशक्त अचिन्त्य सूक्ष्म प्रवाह से सम्बन्ध स्थापित करना सहज-स्वभाविक है। अतः एवं प्राणायाम आयुवर्धक, रोग निवारक और शक्ति दायक ही नहीं हैं, उत्कृष्ट ध्यान एकाग्रता, दिव्य धारणा समाधि और ईश्वर साक्षात्कार का श्रेष्ठतम साधन भी है।

हृदय की ताल का अनुसरण-

अखिल विश्व में असंख्य ताल ध्वनियाँ व्याप्त हैं और उनकी शक्तियों की सीमा एवं सम्भावनायें भिन्न-भिन्न हैं। हमारे काम के लिए अपने हृदय के धड़कन की ताल बहुत उपयुक्त

है। हमारा समस्त शरीर इसी की प्रतिध्वनि से सक्रिय हो रहा है। ताल बद्ध श्वांस प्रश्वांस के लिए हृदय कम्प या हृदय ध्वनि से ही ताल निर्धारण का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए।

अब हम भली भाँति समझ गये कि ताल युक्त श्वांस को ही प्राणायाम कहते हैं और हृदय धड़कन की सहायता से श्वांस-प्रश्वांस में एकरूपता, नियमितता और दीर्घता लाना चाहिए। भिन्न-भिन्न मनुष्यों में हृदय की धड़कन का काल (समय) भिन्न-भिन्न हुआ करता है। अतः शरीर, स्वास्थ्य, अवस्था और आयु की दृष्टि से अपने हृदय की धड़कन के काल की मात्रा ही अपनी ताल युक्त सांस के लिए ठीक परिणाम (चाप) है। उसको आधार बनाकर ताल निर्धारण करना सर्वथा लाभदायक है।

आम तौर से छः बार हृदय धड़कन पर एक साँस लेते हैं। उँगलियों को नाड़ी या हृदय प्रवेश पर रख कर इसका अनुभव किया जा सकता है। रोगी अधिक सबल या अभ्यासी के श्वांस काल में हृदय-स्पन्दन की मात्रा न्यूनाधिक होती है अतः पहले अपनी स्वाभाविक श्वांस गति का कार्य-काल पता लगा लेना चाहिए। उसी के अनुसार साधना आरम्भ करने के लिए अवधि निश्चित करना अच्छा होगा। आगे चलकर शनै-शनै श्वांस-प्रश्वांस की अवधि बढ़ाई जा सकती है। हमारा अभ्यास इस प्रकार का होना चाहिए कि श्वांस खींचने (पूरक करने) और श्वांस छोड़ने (रेचक करने) में नाड़ी की धड़कन समान हो। श्वांस भरकर उसे अन्दर रोकने और छोड़ देने के बाद दूसरी श्वांस न लेने का समय भी बराबर हो। पूरक और रेचक की अपेक्षा अन्तर्कम्भक (अन्दर श्वांस रोकने) और बहुकुम्भक (बाहर श्वांस रोकने या

श्वांस न लेने) की समयावधि भरने (पूरक) और खाली करने (रेचक) की आधी होनी चाहिए। जब श्वाँस की अवधि हम बढ़ावें तो इसी अनुपात में कुम्भक की मात्रा में भी बृद्धि करनी चाहिए। साधारणतः एक सप्ताह तक दिन में कई बार १, २, ३, ४, ५, ६, की नाड़ी धड़कन का अनुभव करने से भीतर एक ताल सी बँधने लगती है। तभी यह प्राणायाम शुरू कर देना चाहिए।

नाडी–स्पन्दन का अनुसरण–

प्राणायाम करते समय आप नाड़ी की धड़कन छः बार गिनते हुए धीरे-धीरे सांस को भीतर खींचिये। तीन धड़कनों तक साँस भीतर रोकिये। फिर छः धड़कनों तक साँस को धीरे-धीरे बाहर निकालिये और तीन धड़कनों तक बिना साँस लिये रहिये।

आरम्भ मे कुछ ही मिनटों तक इसे करना चाहिए। जब थकान आने लगे या कुछ घबराहट सी प्रतीत होने लगे प्राणायाम का अभ्यास बन्द कर देना चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाकर सोलह धड़कनों तक की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

जब ताल का अनुभव होने लगे, तभी समझ लेना चाहिये कि हमारी श्वांसोछ्वास क्रिया विद्युन्मय प्राण प्रवाह से संयुक्त हो गयी। शक्ति संचय का परिणाम ताल की स्पष्टता के ऊपर निर्भर है।

प्राणायाम की इस वैज्ञानिकता को भली प्रकार हृदयंगम करके साधना करने से ही अभीष्ट लाभ होगा।

प्राणायाम-एक सरल, व्यवहारिक सर्वोपयोगी योग साधना

प्राणायाम अध्यात्म-प्रधान भारतीय व्यायाम है। तत्वके ऋषियों ने इसका आविष्कार करके लोगों का बड़ा उपक किया है। योग ग्रन्थों में इसका विशद वर्णन है। वेद, उपनिष स्मृति, और पुराणों में स्थान-स्थान पर प्राणायाम की महि गायी गई है। प्राग्वैदिक काल से भारतीय योगी किसी न कि रूप में इसे करते आये हैं। जैन और बौद्ध-धर्म की साधनाओं में भी इसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सुमात्रा, जावा, इन्डोनेशिय चीन, रूस, अमेरिका, जर्मन आदि देशों के इतिहासकारों औ विद्वानों ने इसके चमत्कारों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है आज भी कितने ही विदेशी साधक इसको करते हैं। प्रबु धार्मिक जगत में इसका विशेष प्रचलन होने के कारण य 'यौगिक क्रिया' कही जाती है।

निश्चय ही प्राणायाम एक योग-अभ्यास है। भारत औ भारतेतर योगियों ने ही इसको विशेष रूप से अपनाया है, अ यह केवल योगियों के काम की चीज है, ऐसा मानना भूल है यह साधारण लोगों के लाभ की वस्तु है। प्राचीनकाल ऋषि-मुनि प्रायः गृहस्थ हुआ करते थे। वे गौयें पालते गुरुकुल और आश्रम चलाते थे। राजा-महाराजाओं के शास कार्यों में पूरी दिलचस्पी लेते थे। राज दरबार में बैठते थे न्याय-व्यवस्था, सन्धि, युद्ध और गृह नीति-निर्धारण के कार्यों

त्वपूर्ण योग देते थे। वे और उनके आश्रम वासी शिष्यगण त्य प्राणायाम करते थे। अपने सम्पर्क में आने वाले गृहीजनों भी वे प्राणायाम करने की शिक्षा देते। क्या इससे यह स्पष्ट द्ध नहीं होता कि प्राणायाम सर्वोपयोगी हैं। बालक, वृद्ध, ी-पुरुष, सभी इसे आसानी से कर सकते हैं। इससे लाभ ठा सकते हैं।

फिर प्राणायाम श्वांस-प्रश्वांस का व्यायाम ही तो है। हर ई रात दिन साँस लेता-छोड़ता रहता है। विशेष ढंग से साँस ना और छोड़ना प्राणायाम है। नित्य प्रति के कार्य-कलापों में ी को चलना-फिरना, उठना-बैठना, उछलना-कूदना, और ड़ना-भागना पड़ता है। कुछ मिनटों तक कलात्मक ढंग से दे इन्हें किया जावे, तो उसे 'व्यायाम' कहा जाता है। ठीक सी प्रकार कुछ मिनटों तक कलात्मक ढंग से श्वसन क्रिया रना प्राणायाम है। जैसे उछलने-कूदने, दौड़ने-भागने के नैत्यिक ार्यों को करते हुए भी स्वास्थ्य रक्षा और बल-वृद्धि के लिए ायाम' की अपनी आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार रात दिन ांस-प्रश्वांस लेते रहने पर भी शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लिए प्राणायाम की अपनी उपयोगिता है।

प्राणायाम हर किसी के लिए लाभकारी है। दन्ड, बैठक ौर आसनों की अपेक्षा ये सरल भी है। इसमें समय कम गता है, और उनकी अपेक्षा भाव भी अधिक मिलता है, फिर ति निर्बल व्यक्ति क्षयग्रस्त, हृदय रोग से पीड़ित, मिर्गी और ात-उतरने वाले रोगियों के लिए व्यायाम वर्जित हैं। जिसकी ड्डी टूटी है, जिसको पीलिया या शोथ रोग है, जो पक्षाघात

से आक्रान्त है, शय्यागत हैं, अपंग हैं, जीर्ण रोग से संत्रस्त
उसे भी व्यायाम का निषेध है। बारह वर्ष से कम आयु
बालक बालिकाओं को व्यायाम मना है, परन्तु प्राणायाम
कर सकते हैं यह बल की वृद्धि तो करता है, रोग का
भी करता है आरोग्य-लाभ की दिशा में इससे त्वरिता आती

दन्ड-बैठक और आसनों का अपना महत्व है। वे पे
को गठीला, शरीर को सुड़ौल और बलवान बनाते हैं। किन्तु
कष्ट साध्य हैं। इसके करने में विशेष बल लगाना पड़ता
अधिक बल लगाने से शरीर के कोष अधिक छीजते हैं, थ
आती है, शरीर में खुश्की बढ़ती है, तृषा का रोग हो जात
क्षय, श्वांस, रक्तपित्त, ग्लानि, खाँसी, श्यामता (चमड़ी का
काला पड़ना) आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं इसके विप
प्राणायाम सुखसाध्य है। इसे आराम से लेटे लेटे भी किया
सकता है। इसके करने में अधिक बल भी लगाना नहीं पड़
फिर वह रक्त के परिभ्रमण को गतिशील बनाता है। अ
अवयवों को सक्रिय करता है अंग प्रत्यंग में 'अतिरिक्त' आक्सी
भरता है, थकान और शिथिलता को दूर करता है। मान
अवसाद नष्ट करता है। निश्चय ही यह मनुष्य को
व्यायामों की भांति पहलवान नहीं बनाता, किन्तु उसे उ
अपेक्षा अधिक शक्तिवान्, स्फूर्तिवान और तेजस्वी बनाता

प्रायः व्यायाम व्यक्ति की बौद्धिक-क्षमता को कम करते
पहलवानों में बुद्धि-मन्दता विशेष रूप से देखी जाती है।
प्राणायाम मेधाशक्ति को बढ़ाता है। बुद्धि को पैना करता
उसकी सूक्ष्म ग्रहिता विवर्धित करता है। वह प्रत्युत्पन्न मति

न्य करता है। सूझ-बूझ (इनटयूशन) जगाता है। वाणी को जस्वी और व्यक्तित्व को प्रभावी बनाता है।

आसनों के साथ सूर्य नमस्कार प्रभृति व्यायामों के साथ ास-प्रश्वास के नियमन पर जो विशेष बल दिया जाता है ससे भी प्राणायाम की वरीयता सिद्ध होती है। प्राणायाम की ष्ठता प्रमाणित होती है।

इस तरह हमने देखा कि प्राणायाम सर्वोपयोगी व्यायाम है। कई प्रकार के होते हैं। कुछ विशिष्ट प्राणायामों को छोड़ कर उच्चकोटि के साधकों और योगियों के लिए ही हैं, शेष को भी कर सकते हैं। ये सरल और सुखदायक भी हैं। अपेक्षाकृत म समय में किये जा सकते हैं।

प्राणायाम के एकांकी प्रयोग से शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य, यमशक्ति सत्वर बुद्धि, प्रतिभा और उत्कृष्ट व्यक्तित्व प्राप्त ता है। रोग और दुर्व्यसनों के दूरीकरण में ये बड़े सहायक । प्राणायाम की साधना से ही इच्छाशक्ति और आत्मबल बढ़ता । सम्मोहिनी शक्ति (हिप्नोटिक पावर) और दूराभास सहजगत ता है। इस दृष्टि से भी प्राणायाम की गरिमा निर्विवाद है।

वकील, वैरिस्टर, कवि, लेखक, अध्यापक और प्रोफेसर द्धिजीवियों की श्रेणियों में आते हैं। अपनी बुद्धि को सूक्ष्म-ग्राही नाने उसकी साधारण शक्ति को प्रखर करने के लिए उन्हें णायाम करना ही चाहिए। प्राणायाम करने से उनकी वाणी ौर लेखनी में प्राणों का विपुल संचार होगा, जिससे उन्हें कदमें को सही ढंग से पकड़ने में, प्रतिपाद्य विषय को सही ग से प्रस्तुत और मौलिक रचना करने में अपूर्व सहायता

मिलेगी। मानसिक श्रम से आने वाली थकान को दूर और पंक-प्राणों के शोधन के लिए भी प्राणायाम आवश्यक

इसी प्रकार ज्योतिषियों के लिए भी प्राणायाम का अ बड़ा जरूरी है। यदि ज्योतिषी प्राणायाम का अभ्यासी है उसकी सूझ बूझ, उसका दूराभास, उसकी पकड़ अपे अधिक प्रखर, अधिक स्पष्ट होगी।

संसार में सैकड़ों ही नहीं हजारों औषधियाँ वैद्य-डा की जानकारी में होती हैं। एक-एक की कितनी ही औष उनकी अलमारियों में रक्खी होती हैं, किन्तु वही चिकि संसार में सफल होता है, जिसका निदान और औषधि ठीक होता है। जिसकी बुद्धि पैनी, औषधियों का चुनाव युक्ति और व्यक्ति विशेष के, वय, प्रकृति, रितु और रासायनिक के अनुकूल होता है। इसके लिए पुस्तकों का ज्ञान जि आवश्यक है, उतना ही बुद्धि को दैनिक उलझनों के क्षो मुक्त करना भी जरूरी है। यह काम प्राणायाम के द्वारा सम्भाव्य है। अतः चिकित्सकों को चिकित्सा-क्षेत्र में सफ प्राप्त करने के लिए अर्थ के साथ-साथ प्रसिद्धि लाभ के औषधि-चिकित्सा और शल्य कर्म को सूझ-बूझ युक्त प्रा बनाने के लिए भी प्राणायाम करना चाहिए।

मनो चिकित्सक में मनो-विश्लेषण की क्षमता का आवश्यक है। उसे विक्षिप्त या व्यक्तित्व-छिन्न रोगी की अचेत सर्वथा अदृश्य अव्यक्त भावना ग्रन्थियों के उन्मूलन का कठि कार्य करना होता है। रोगी के मलस्तल के परिष्करण के जहाँ पैनी दृष्टि की अपेक्षा है, वहाँ आत्म-विश्वास, धैर्य, सहि

आत्म संयम, संम्मोहन शक्ति और विशिष्ट प्राण भी आवश्यक है। ये सभी गुण प्राणायाम की साधना से आसानी से अपने में अर्जित किये जा सकते हैं। अतः मनोचिकित्सक को प्राणायाम के द्वारा अपने में अधिकाधिक प्राण संचय करना चाहिए।

यूँ तो कुछ श्रम करके, पढ़ लिखकर नोट्स बनाकर सभी भाषण दे सकते हैं। सुरीले कण्ठ वाले अच्छे से अच्छा गा सकते हैं, परन्तु स्थाई प्रभाव डालने वाले भाषण, कविता पाठ या संगीत साधना वही कर पाते हैं, जिनमें अधिक प्राणशक्ति होती है। अधिक प्राणशक्ति की प्राप्ति का प्राणायाम सा सरल, श्रेष्ठ और निरापद दूसरा साधन नहीं है। अतः समाज सुधारकों के लिए, सामाजिक कार्य करने वालों के लिए, नायकों और गायकों के लिए, लेखकों और कवियों के लिये और तो और अभिनेताओं के लिए भी प्राणायाम के द्वारा यथेष्ट प्राणशक्ति का संचयन करना चाहिए।

बड़े-बड़े उद्योग और व्यवसाय चलाने वाले बड़े प्रतिभावान होते हैं। यह प्रतिभा कुछ लोगों को पूर्वजन्म के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप जन्म से ही प्राप्त होती है कुछ उसे अध्यवसाय, लगन और तत्परता से प्राप्त करते हैं। ग्राहकों को आकर्षित करने, ग्राहकों पर मोहनी डालने वाली यह प्रतिभा या व्यवहारिक बुद्धि ही व्यवसाय की जान है। यह, वह प्राणशक्ति है, जिससे व्यवसाय-व्यापार दिन-दिन उन्नत करता जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से इसे साधा जा सकता है।

ब्लड प्रेशर और स्नायु रोग से पीड़ितों में चिन्ता अतिरेक पाया जाता है, वे जरा-जरा सी बात के लिए इतने अधिक

संवेदनशील हो जाते हैं कि उन्हें घन्टों नींद नहीं आती
किन्हीं-किन्हीं को तो अनिद्रा रोग लग जाता है। कुछ को उ
उभरी बेचैनी भरी हल्की नींद आती है। भयानक स्वप्न दीखते
वे स्वप्न में चौंक-चौंक पड़ते हैं अथवा सोते सोते बर्राने लगते
कितने ही सोते-सोते सिस्कियों के साथ रोते देखे गये हैं। ये
लक्षण सूक्ष्म शरीर की रुग्णता के द्योतक हैं प्राणायाम के
सूक्ष्म शरीर पर छाप विजातीय संस्कारों का नाश होता है,
सुस्पष्ट और सबल बनता है। इसलिए तुनुक मिजाज वालों
लिए, भयातुरों के, चिन्तातुरों तथा निद्रारोगियों के लिए, निद्राक
में यत्र तत्र विचरण करने अथवा अचेतन क्रियायें करने वालों
लिए प्राणायाम की साधना बड़ी हितकारी है।

जिन स्त्रियों के पति जुआरी शराबी या व्यभिचारी
दुर्व्यसनी हैं, वे प्राणायाम की साधना के द्वारा अपने पतियों
सन्मार्ग पर प्रवृत्त कर सकती हैं। माता-पिता अपने बालक
उदण्डता, उच्छृंखलता, दुरभ्यास और विषय-गमन को प्राणाय
के द्वारा दूर कर सकते हैं।

गर्भवती स्त्रियों को प्राणायाम से बड़ा लाभ प्राप्त होता
प्राणायाम व्यायाम (अर्थात् प्राणायाम) के द्वारा गर्भस्थ भ्रूण
सम्यक् पोषण तो होता ही है, गर्भ काल में प्रायः उठने व
अनेक प्रकार के शारीरिक-मानसिक कष्टों का भी सहज
निराकरण होता है। गर्भस्थ शिशु पर अच्छे संस्कार पड़ते
और सुख के साथ प्रसव होता है।

वृद्धावस्था में अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ जाते हैं। शरीर
झुर्रियाँ आ जाती हैं। इन्द्रियाँ जबाव देने लगती हैं। शारीरि

मानसिक कार्य करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। परिणामतः ऊभन और खीजन बढ़ जाती है। स्नायुदौर्बल्य,संत्रास और दूसरे रोग आ दबाते हैं। ऐसी स्थिति में प्राणायाम बड़ा सहायक है। वह नस-नस में नव-स्फूर्ति का संचार करता है। निराशा, खिन्नता, आत्म ग्लानि और अवसाद को दूर करके उन्हें सर्वप्रिय बनाता है।

किशोरावस्था में जननेन्द्रियाँ विकसित हो चुकती हैं। उनसे एक उन्मादी अन्तःस्राव (हारमोन) झरने लगता है। इस अन्तःस्राव के कारण किशोर-किशोरियों की वाणी में, चाल-ढाल में, रुचि प्रकृति में बुद्धि के सोचने समझने की शैली में, झटकों के साथ वेगपूर्ण परिवर्तन आता है। माता-पिता इस आकस्मिक परिवर्तन के मूल कारण को नहीं समझ पाते हैं। वे इस ओर उचित ध्यान नहीं देते। फलतः उनकी अपेक्षा, सिनेमा, दूषित वातावरण और दुस्संग का दुश्प्रभाव किशोर-किशोरियों को यदि उन्मार्गी बना दे तो उसमें अस्वाभाविक बात क्या है? प्रजनन ग्रन्थियों के अन्तःस्रावों से झरने वाली 'अतिरिक्त ऊर्जा' (सर प्लस एनर्जी) के निगमन प्रणाली में प्राणायाम बड़ा सहायक है। वह ऊर्जा को ऊर्ध्वस्वी बनाता है। उसके तेज को सीमित करता हुआ उसे पुष्टिकर कार्यों में लगाता है अतः प्रत्येक समझदार माता पिता का कर्त्तव्य है कि वह किशोर-किशोरियों को प्राणायाम की शिक्षा दें।, इससे हस्तमैथुन, यौन-घर्षण जैसे दुर्व्यसन भी दूर किये जा सकते हैं। बालक-बालिकाओं की आशा-आकांक्षा के परिशोधन और उदात्तीकरण के लिए प्राणायाम की साधना बड़ी सार्थक है।

इस तरह हमने देखा कि प्राणायाम हर वर्ग के व्यक्ति के

लिए बाल, वृद्ध, गृहस्थ और सन्यासी के लिए बड़ा उपयोगी है। आध्यात्मिक साधना करने वालों के लिए तो वह अनिवार्य ही है, भले ही साधक किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का मानने वाला क्यों न हो? प्राणायाम के साथ किया जाने वाला भजन, जप, ध्यान, पूजा-प्रार्थना सत्वर फल प्रस्तुत करता है। यह साधक की इच्छा शक्ति को बलवान् बनाता है, जिससे सांसारिक उलझनों के बीच धैर्य, उत्साह, उमंग और उल्लास के साथ निर्वाध गति से अपनी साधना साधने में उसे बड़ी मदद मिलती है। सच बात तो यह है कि प्राणायाम की आराधना-उपासना को भावपूर्ण बनाती है। मन की चंचलता विक्षेप व अन्यमनस्यकता को दूर करती है। जन्म-जन्मान्तरों के दुस्संस्कारों को मिटाती है। अन्तःकरण को निर्मल बनाती है। सत्संस्कारों के सद्भावों की पुष्टि करती है। आत्म विश्वास आत्मबल और आत्म तेज को बढ़ाती है। रुचियों को परिमार्जित करती है। विविध प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए सूझ-बूझ देती है। ईध्श्वरानुभूति कराती है। आत्म चेतना को परिचेतना से मिलाती है। साधक को जीवनमुक्त या अलमस्त बनाती है।

अनेक वैज्ञानिकों ने इस प्रक्रिया का परीक्षण किया है और इसे श्रेष्ठ भी पाया है। जर्मन विद्वान् इमैनुएल कान्ट ने लिखा है कि प्राणायाम से कठिन रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। क्षय रोग विशेषज्ञ डाक्टर मुथू अपने चिकित्सालय में आये रोगियों को औषधि के साथ प्राणायाम के अभ्यास को अनिवार्य रूप से बताते थे। डा० शोज बुज ओटेव को पाँच वर्ष की आयु में क्षयरोग होने का सन्देह डाक्टरों ने बताया था। जब इनका

स्वास्थ्य किसी भी दवा से ठीक न हुआ तो प्राणायाम करना आरम्भ किया। उनका कहना है कि 'एक वर्ष में छाती का घेरा ४ इंच बढ़ गया और इतनी ही ऊँचाई भी बढ़ी। दो वर्षों में २२ पौंड बजन बढ़ गया। तब डाक्टरी परीक्षा कराई तो रोग का कोई भी चिन्ह नहीं था। तब से मैं प्राणाम का भक्त बन गया हूँ। मेरी सुदृढ़ धारणा है कि प्राणायाम से छाती की चौड़ाई बढ़ती है, फेफड़े सुदृढ़ होते हैं, वजन बढ़ता है, हृदय सशक्त होता है, रक्त संचार की क्रिया में चैतन्यता आती है। मैं उत्तम स्वास्थ्य कोप्राप्त करने के लिए इसे एक संजीवनी विद्या मानता हूँ। अमेरिका के योगी रामाचारक ने 'श्वांस विज्ञान' पर एक पुस्तक लिखकर विदेशी जनता का ध्यान इस विज्ञान की ओर खींचा है।

इंग्लैण्ड के श्री जे० पी० मूलर ने 'माई बीटिंग सिस्टम' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि शिक्षण संस्थाओं में प्राणायाम की सरल विधियों का अभ्यास कराया जाना चाहिए। उन्होंने स्वीकार किया कि वहाँ के अधिकांश अध्यापक प्राणायाम के सम्बन्ध में कुछ जानकारी नहीं रखते जिसके लिए उन्होंने खेद व्यक्त किया है।

अमेरिका के ख्याति प्राप्त प्राकृतिक चिकित्सक डा० बर्नर मैकफैडन ने प्राणायाम की महत्ता को स्वीकार किया है। वह तो इसे स्वास्थ्य रक्षा व विकास का मूल साधन मानते हैं और उसके दैनिक अभ्यास पर बल देते हैं।

विदेशी वैज्ञानिकों की साक्षी से पूर्व वर्णित लाभों की पुष्टि ही होती है और प्राणायामों का अनिवर्चनीय महत्व सिद्ध होता है।

प्राणायाम और आध्यात्मिक यज्ञ

वैदिक साहित्य में यज्ञ की बड़ी महिमा है। सम्पूर्ण यजुर्वेद याज्ञिक जीवन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है। वह यज्ञ-मन्त्रों से भरा हुआ है। यज्ञों के विधि विधान का ब्राह्मण ग्रन्थों में भी विशद उल्लेख हुआ है। 'यज्ञों वै स' कहकर त्रिकालदर्शी, तन्वान्वेषी ऋषि परमात्मा को ही यज्ञ-रूप से देखता है।

सृष्टि और यज्ञ का घनिष्ठ सम्बन्ध

गीता के तीसरे अध्याय के दसवें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है–

सहयज्ञाः प्रला सृष्टि पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्सृध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कातधुक्।।

समस्त सृष्टि की रचना प्रतितामह ब्रह्म ने की है। उन्होंने कल्प के आदि में पुराकाल में यज्ञों के साथ प्रजा (मनुष्य जाति) की रचना की है। यज्ञ और प्रजा दोनों की एक साथ उत्पत्ति करके उन्होंने प्रजावर्ग से कहा कि इस यज्ञ के द्वारा आप लोग वृद्धि को प्राप्त होवें। अपने जीवन का सर्वतोमुखी विकास करें। यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित कामनाओं का देने वाला होवे।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावन्तु वः।
परस्परं भावयन्त श्रेयः परमवाप्स्वथ।।

(गीता ३।११।)

तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं की उन्नति करो। समाज के कार्य में अपने को सम्पूर्णतः होने वाले महापुरुष ही लौकिक देवता हैं। यज्ञों के द्वारा, शुभ कार्यों के द्वारा, अपने त्याग और सहयोग के द्वारा तुम उनका मार्ग प्रशस्त करो। उनके कार्य का विस्तार करो। वे देवता लोग भी तुम सबकी यथेष्ट उन्नति कर सकेंगे। इस प्रकार आपस में परस्पर उन्नति करते रहने पर ही तुम परम कल्याण को प्राप्त होओगे।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यत भावितः।
तेर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते सुनेन एवं सः।।

(गीता ३।१२)

यज्ञ द्वारा उत्साह बढ़ाये हुए देव लोग तुम्हारे लिए बिना माँगे ही फिर भोगों को, आवश्यक सुविधाओं और साधनों को तुम्हें देंगे। उनके द्वारा दी हुई सुख-सुविधाओं को जो पुरुष इनके लिए सहयोग दिये बिना ही भोगता है, वह निश्चय ही चोर है।

वज्ञशिष्टाशिनः सन्ता मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
र्भुत्तते ते त्वधं पापा, त्ते पवन्त्यात्मारणात्।।

(गीता ३।१३)

यज्ञ से बना हुआ अन्न खाने वाले की प्रशंसा और इसके विपरीत आचरण करने वाले की निन्दा करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि यज्ञ से शेष बचे हुए भोगों को भोगने वाले सज्जन पुरुष सब पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने स्वार्थ के लिए ही, अपने शरीर पोषण के लिए भोजन पकाते हैं

खाने-पीने के लिए ही जो जीते हैं, वे तो पाप को खाते हैं।

वेद भी इसी महान् आदर्श को हमारे सामने प्रस्तुत करता है, वह कहता है–'केवलादि भवति केवलाधी'। जो अकेले ही खाता है, अन्य सामाजिको को उनका अंश नहीं देता, ऐसा स्वार्थ परायण व्यक्ति पाप को ही खाता है।

यज्ञ शब्द की व्याख्या अर्थ-

सामान्यतः यज्ञ का अर्थ 'हवन' लिया जाता है। किन्तु वेदादि ग्रन्थों में उसको व्यापक अर्थो में ही स्वीकारा गया है। 'त्याग भावना से किये जाने वाले समस्त शुभ कार्य यज्ञ ही है, ऐसी आर्य ऋषियों की सदा मान्यता रही है। वे व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण तथा समाज निर्माण के लिए करणीय सभी कर्मों को 'यज्ञ' नाम से अभिहित करते थे। उनकी भव्य भावना के अनुसार वे ईश्वरीय कार्य हैं–

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धिः ब्रह्माक्ष-सप्रदभवम्।
मस्मात्सर्वगत ब्रह्म, नित्य यज्ञे प्रतिष्ठिम्।।

(गीता ३।१५)

निर्माण, विकास, समुन्नति के लिए किये जाने वाले महान् कार्य ब्रह्मोद्भव हैं, ईश्वर की प्रेरणा से प्रसूत हैं। इस तथ्य को हे अर्जुन ! तू अच्छी प्रकार से समझ ले। यह भावना, ईश बुद्धि भी अविनाशी परम्परा से ही हृदय में जगती है। उसी से यह उत्पन्न होती है इससे यह स्पष्ट हुआ कि ईश बुद्धि से किये जाने वाले यज्ञों में, श्रेष्ठ कार्यों में सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही प्रतिष्ठित है कि बहुना यज्ञ ही ब्रह्म है, यज्ञ कार्य ही ब्रह्म कार्य है। ऐसा स्वस्थ दृष्टिकोण धारण करके जो

निर्माण कार्यों में प्रवृत्त होता है, जीवन में सर्वतोमुखी विकास के लिए प्रयत्नशील होता है, वही सच्चा 'याज्ञिक' है। वही ब्रह्मनिष्ठ है। वही जनक, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ आदि महा-पुरुषों के समान 'सच्चा गृहस्थ' है।

यज्ञ रहित जीवन की निकृष्टता-

यज्ञ कार्य से ही सृष्टि का संचालन होता आया है। इस ईश्वरीय कार्य को जो नित्य नियमपूर्वक नहीं करते, आत्मोत्थान और समाजोत्थान के अवश्य करणीय कार्यों से जो विरत रहते हैं, वे ईश्वर प्रतिपादित सृष्टि चक्र का उल्लंघन करते हैं। उनका जीवन व्यर्थ है। मनुष्य योनि में जन्म लेकर भी, दुर्लभ सुअवसर पाकर उन्होंने अपने जीवन को सार्थक नहीं बनाया।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।(गीता३।१६)

'हे पार्थ ! जो पुरुष मेरे द्वारा प्रवर्तित शुभ-कार्य रूप सृष्टि चक्र के अनुसार आचरण नहीं करता है, वह इन्द्रियों के सुख को भोगने आरामतलब, आलसी मनुष्य पापी है, अघायु है। वह इस संसार के लिए भार रूप है। वह जग में व्यर्थ ही जीता है।

यज्ञ और समर्पण बुद्धि-

यज्ञार्थ अर्थात् लोक-कल्याण के लिए दुष्ट-दलन रूप हिंसा आदि कर्म करने वाला प्रबुद्धि व्यक्ति, वैसे कार्यों को करके भी पाप को प्राप्त नहीं होता। उसके समस्त कार्य यज्ञ (पुण्य कर्म) होने के कारण सिद्ध होते हैं। वे उसे आवागमन के चक्र में नहीं फँसाते। क्योंकि–

गत संगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थित चेतसः।
वज्ञायाचरतः कर्म अधग्रं प्रविलीयते।। (गीता ४।२

आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थित चित्त वाले यज्ञ के लि आचरण करते हुए मुक्त पुरुष के सम्पूर्ण कर्म (संस्कार) नष्ट जाते हैं। प्रबुद्ध याज्ञिक (सत्कर्मी) को कोई दोष नहीं लगत ईश्वर-भावना से रहित होने के कारण उसके जीवन का सम्पू क्रिया-कलाप यज्ञ मय होता है–

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म-कर्म-समाधिना।। (गीता ५।२

ब्रह्म-भावना से भावित होकर अपने को जनता-जनार्दन व सेवा में समर्पण करने वाले सज्जनों में कोई तो इस भाव यज्ञ (सत्कर्म) करते हैं कि अर्पण भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है ब्रह्म रूप यज्ञ में ईश्वर बुद्धि से जो सत्कार्य रूप हवन कि गया है, वह भी ब्रह्म ही है। ईश्वरीय कर्म के प्रति इस प्रका अपनी सुध-बुध को खोने वाले धुनी पुरुष के द्वारा प्राप्तव्य लक्ष भी ब्रह्म ही होता है। ऐसा महानुभाव ही ब्रह्म को प्राप्त करत है।

विविध प्रकार के यज्ञ-

गीताकार योगेश्वर श्रीकृष्ण के अनुसार यज्ञ (सत्कर्म अनेक प्रकार के होते हैं। वे चौथे अध्याय के २५ से ३० तक श्लोकों में विविध यज्ञों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नित प्रति देव पूजन करना, संत-महापुरुषों की सेवा करना, यज्ञ है परब्रह्म परमात्मा का एकाग्रता के साथ ध्यान करना, अर्चन

करना, उपासना करना भी यज्ञ है। श्रोतादिक इन्द्रियों का संयम करना, दुराचार, दुर्व्यसन और दुर्भावना का त्याग करना, स्वाध्याय करना, दान देना, देश-समाज के उत्थान के लिए प्रयत्न करना, किम्बहुना वे समस्त शुभ कर्म जिससे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा स्वस्थ, सबल, निर्मल और तेजस्वी होता है जन-जन का जीवन उदात्त बनता है, यज्ञ के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रसङ्ग में वह शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को सुपुष्ट करने वाले वैयक्तिक जीवन को सन्तुलित, सुखी, सम्पन्न, उत्कृष्ट और समर्थ बनाने वाले प्राणायाम के अभ्यास को भी 'यज्ञ' नाम से सम्बोधित करते हैं।

प्राणायाम यज्ञ की श्रेष्ठता-

प्राणायाम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिए गीतेश्वर ने प्राणायाम रूप यज्ञ की महिमा का विशद वर्णन किया है—

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगति रुद्ध्वा, प्राणायाम परायणा।।(गीता ४।६)

"दूसरे योगीजन अपान वायु में प्राण वायु का हवन करते हैं। वैसे ही अन्य योगीजन प्राण वायु में अपान वायु का हवन करते हैं तथा अन्य योगीजन प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं।"

अपने नियतहाराः प्राणन्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेप्येते यज्ञविदौ, यज्ञ—क्षपित कल्मषाः।।(गीता ४।३०)

"दूसरे नियमित आहार-विहार करने वाले याज्ञिक प्राणों को प्राणों में ही हवन करते हैं। इस प्रकार विविध प्राणायामों के

भावपूर्ण अभ्यास से नष्ट हो गये हैं, सब पाप-संस्कार जिन
वे सब ही लोग यज्ञ को व्यवहारतः जानने वाले हैं
समझना चाहिए।"

यहाँ गीतावक्ता महायोगी श्रीकृष्ण देव ने अनेक प्रकार
प्राणायामों की ओर संकेत करते हुए आहार-विहार के औचि
पर ध्यान देने को कहा है। उनके अनुसार तभी प्राणायाम
अन्तिम लाभों से लाभान्वित हुआ जा सकता है। उनकी दृ
में प्राणायाम शारीरिक स्वास्थ्य और विकास के लिए जित
उपयोगी है, उससे कहीं अधिक आध्यात्मिक विकास का सरल
साधन भी है। प्राणायाम से उपासना में एकाग्रता आती
तन्मयता आती है, मन वश में होता और आवागमन के चक्र
में डालने वाले समस्त कर्म बीजों का, दुसंस्कारों का नाश
जाता है। प्राणायाम रूप यज्ञ को जो यथा विधि नियम पू
करता है, वह निष्पाप बनाता है। उसका जीवन उत्कृष्ट हो
है। सुख, शान्ति, समृद्धि, यश-प्रतिष्ठा, सिद्धि-सफलता उस
चरण चूमती है। अतएव सभी को प्राणायाम रूप यज्ञ
आराधना करनी चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण का स्पष्ट अभिमन है कि जो यज्ञ क
हैं, सत्कर्म करते हुए जो समय-यापन करते हैं, वे सनातन
को प्राप्त होते हैं। वे यज्ञवशिष्ठ रूप अमृत का पान करने
हैं। यज्ञ रहित मनुष्य को यह मनुष्य लोक भी सुखदायक
है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा–

नायं लोकोऽत्ययज्ञस्य कुतोऽन्या कुरुसत्तम।।

श्वांस और उससे सम्बन्धित क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन

श्वांस ही जीवन है। समस्त जीवन व्यापार, चाहे वह ारीरिक हों, मानसिक अतिमानसिक श्वांस से ही सम्बन्धित । योगी की उच्चस्तरीय समाधि भी, जिसमें शरीर एकदम श्चेष्ट मृतवत् आयु का श्वांस से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वास्थ्य ौर आरोग्य का मुख्य आधार है। अतः यहाँ सर्व प्रथम अपने वसन यन्त्र पर विचार करना अप्रासांगिक न होगा।

श्वसन क्रिया में भाग लेने वाले सात प्रमुख अंङ्ग हैं—(१) ाक के नथुने, (२) कण्ठ, (३) स्वर यन्त्र या गैरिक्स, (४) टेंटुआ ा ट्रंकिया (५) ब्राकाई या वायु नलिकायें, (६) फेफड़े और (७) ायफाग्राम या महाप्राचीन पेशी।

नासापुट-

नाक की दाहिनी और बाँई ओर दो नासा छिद्र हैं। इन्हें ही ासापुट या नथुना कहते हैं। इनके अन्दर छोटे-छोटे रोयें या ाल होते हैं, जो धूल के कणों को अन्दर जाने से रोकते हैं। जो लोग मुँह से साँस लेते हैं, वे धूल कण आदि विजातीय त्वों का अपने अन्दर भरते हैं। जिसमें कालान्तर में अन्तर-अवयव ूषित हो जाते हैं और अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। ाक ही वायु को छान कर अन्दर भेजती है, मुख नहीं। अतः ाक के द्वारा साँस लेना ही उचित है। साँस लेते समय मुख ो बन्द रखना चाहिए। परमात्मा ने मुख की नली भोजन

करने के लिए, और नाक की नली श्वांस लेने के लिए है। मुख में भोजन चबाने के लिए दाँत तथा स्वाद लेने के स्वादांकुरों का प्रबन्ध है।

नासिका का श्वांस-मार्ग असाधारण रूप से घूमघु का है, चक्करदार है। यह एक बड़ी सुविधा है। पहली बा यह है कि यह वायु को उस तल के ऊपर जाने को करती है, जिसके नीचे उष्ण रक्त है। दूसरी बात यह यदि उसमें पर्याप्त जलवाष्प (वाटर-वैपर) न हो, तो वह वहाँ मिल सकता है। यह बड़ी अच्छी बात है क्योंकि पू खुश्क और रूक्षवायु फेफड़ों में रूक्षता लाकर उनको अ कर देती है। यह मार्ग इतना चक्करदार होने से एक बड़ा यह भी है कि नासापुट से साँस लेने पर वायु बड़ी सहज से पूर्णतया छन जाती है। उसमें पर्याप्त स्निग्धता आ जात उसमें के सूक्ष्म जीव (माकक्रोब्स) श्वांस मार्ग में ही रुक हैं। फेफड़ों में केवल उष्ण और नम वायु ही नहीं जाती, अत्यन्त शुद्ध वायु ही प्रवेश करती है। अतएव इस बात की किसी को सावधानी रखनी चाहिए कि श्वांस नाक से है जाय। मुँह से श्वांस लेने से टांसिल, एडीनायल का प्रांकाइटिस स्कारलेट ज्वर, टिफ्थीरिया बहरापन आदि के का भय रहता है।

नासिका से छनकर वायु हलक में जाती है। इसी कण्ठ कहते हैं। यह नाक और मुँह के पीछे एक चौड़ी ना के रूप में स्थित है। इसकी पतली श्लेष्म कला (म् मेम्ब्रेन) वायु को स्निग्ध बनाती है। गले में आगे की ओर

का और पीछे की ओर भोजन की नली होती है। जिस
य मनुष्य श्वांस लेता है, उस समय भोजन नली आपसे
बन्द रहती है। भोजन निगलते समय ही वह खुलती है।
ी बातचीत करते हुए यदि भोजन का लघुतम कण भी वायु
लिका की ओर अग्रसर होता है, तो ओछा लग जाता है।
ल छींक आती है और प्रकृति उसे बाहर निकाल फेंकती है।
मात्मा की कारीगरी और उसकी बारीकी, परमात्मा की
द्धिमता, दूरदर्शिता युक्त अवस्था और कौशल दृष्टव्य है,
ननीय है।

स्वर यन्त्र-

हवा की इस कण्ठ नली के ऊपर सन्दूकनुमा कार्टिलेज से
ा हुआ स्वर-यन्त्र है। हलक से हवा इसी स्वर कोष्ठ
इस-बाक्स) में आती है। स्वर यन्त्र का अगला भाग हमारी
र्दन में होता है। यह जीभ की जड़ के पीछे कण्ठिकास्थि
वाइड वोन) के नीचे कण्ठ के सामने स्थित है। इस स्वर
त्र के दोनों ओर दुहरा नाड़ी चक्र फैला होता है। उनके बीच
एक छोटी सी दरार होती है। जब-जब हम श्वांस द्वारा वायु
ींचते हैं, मस्तिष्क कुछ स्नायु तन्तुओं (नर्व्स) के द्वारा उन
स पेशियों में आज्ञा भेजता है, जो उन छोटी-छोटी स्मररज्जुओं
ोक्ल-कार्डस) पर शासन करती है। वे एक दूसरे से बहुत
थक होती हुई हिलती है, जिससे वायु सुगमता पूर्वक बिना
ोर या संघर्ष किये सहज ही उनके अन्दर से जा सकती है।
इस स्वर यन्त्र में से स्वांसोच्छ्वास का आवागमन और

आवाज का उच्चारण–ये दो कार्य होते हैं। इसकी लम्बाई-चौ
या परिधि अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न होती है। इसके दोनों
स्वर यन्त्र परावर्तिनी नाड़ियों के अति कोमल तन्तु होते
दूषित वायु के कारण यदि इन तन्तुओं का घात हो जाय,
श्वांसोच्छ्वास क्रिया यथा योग्य नहीं हो सकती है। वाणी
समुच्चार भी संभव नहीं है। दूषित वायु से स्वरभंग, स्वर-
प्रदाह, स्वरलोम, शुष्ककास, स्वर यन्त्र आक्षेप आदि रोग उ
हो जाते हैं। अतः वायु की शुद्धता का ध्यान रखना परमावश
है।

टेंटुआ-

स्वर नली के बाद ही टेंटुआ या हवा की नली शुरू
है। यह नली ४ इन्च लम्बी और गोलाई में एक इन्च मोटी
है। यह कार्टिलेज के छल्लों से बनी हुई नलिका है जिसे
में आसानी से टटोल सकते हैं। इसके अन्दर श्लैष्मिक झि
चढ़ी रहती है। झिल्ली पर छोटे-छोटे रोये होते हैं, जो
कणों को फेफड़ों में जाने से रोकते हैं।

वायु नलिकायें और वायुकोष-

आगे चलकर यह टेंटुआ दो भागों में बँट जाता है।
शाखा दायें फेफड़े, दूसरी बायें फेफड़े को हवा ले जाती है
ही नलिकायें फेफड़ों में और सूक्ष्म नलिकाओं में बँट जाती
ये दोनों शाखायें ब्रांकाई या वायु-नली कहलाती हैं। ये वायु-नलि
भी आगे चलकर छोटी-छोटी अनेक उपशाखाओं-प्रशाखाओं
विभक्त हो जाती हैं। दाहिनी श्वांस नलिका बायीं की अ
अधिक मोटी और छोटी हैं। इसकी लम्बाई लगभग एक इ

। बाम शाखा पतली और लम्बी हैं। छोटे अंगूर के गुच्छे की रह अनेक वायु-कोष होते हैं। फेफड़ों के अन्दर होने के ारण इन्हें फुफ्फुस-कोष गुच्छ या एअर सैक्स कहते हैं। इसमें त्येक कोष सदा वायु से भरा रहता है।

फेफड़ों की कार्य शैली-

फुफ्फुस या फेफड़े संख्या में दो होते हैं। ये छाती के धिकांश भाग को घेरे रहते हैं। ये अनैच्छिक मांस पेशियों से ने हैं। फेफड़ों का रंग भरा रहता है। ये स्पन्ज की तरह चीले छिद्रमय और खोखले होते हैं।१। इसके ऊपर दोहरी झिल्ली की थैली चढ़ी रहती है, जिसे प्लूरा कहते हैं। दाहिना फेफड़ा बायें से कुछ बड़ा व चौड़ा होता है। वह तीन पिण्डों का बना होता है। इन्हीं में वायु नलिका की बहुत सी शाखायें और अंगूर के गुच्छे के आकार के वायु-कोष (एअर सेल्स) रहते हैं। इनके चारों ओर बाल जैसी पतली-पतली नलियों का जाल बिछा रहता है, जिन्हें कोशिका कहते हैं।

दायें फेफड़े का औसत भार लगभग ६०० ग्राम और बायें का ५५० ग्राम होता है। पुरुषों के फेफड़े स्त्रियों के फेफड़े से कुछ भारी होते हैं। फेफड़े इतने हल्के होते हैं कि ये जल में तैर सकते हैं। दोनों फेफड़ों का निकला चौड़ा भाग डायाफ्रामके ऊपर सधा रहता है।

डायाफ्राम और श्वसन केन्द्र-

डायाफ्राम को ही महा प्राचीरा पेशी कहते हैं। छाती और उदरगुहा के बीच में स्थित यह माँसपेशी पर्याप्त लम्बी चौड़ी है।

यह गोल गुम्बद के समान है। यह पेट को छाती से पृथ करती है। यह माँस पेशी स्वतः गतिशील है। इसकी क्रिया उ प्रकार आपसे आप हुआ करती है, जिस प्रकार हृदय-धड़क की क्रिया हरदम अपने आप चला करती हैं। संकल्प के प्रभ से इसे कुछ सीमा तक, कुछ अवधि तक इच्छानुवर्ती बनाया ज सकता है।

श्वसन क्रिया का शासन मस्तिष्क के उस छोटे से बि द्वारा किया जाता है, जिसको श्वांस केन्द्र कहते हैं। यह बि हृदय और रक्त नलियों के केन्द्र के बिल्कुल पास में है। य आश्चर्यजनक केन्द्र किस प्रकार कार्य करता है, और कि प्रकार यह हमारी श्वांस क्रिया को प्रभावित करता है, इस प विचार करने से भावना की प्राणमयता का बोध होता है। त हम अनुभव करते हैं। कि अनेच्छापूर्वक चलने वाली श्वांस-क्रि को यदि भावना से भावित किया जा सके, तो अतुल शक्ति अपार ऊर्जा का अजस्र झरना अपने अन्दर प्रवाहित कर सहज सम्भव है। यह विज्ञान भावपूर्ण प्राणायाम की श्रेष्ठता व प्रतिपादन करता है। यह श्वांस बिन्दु ही चेतना की इकाई है चेतना-बिन्दु है।

ज़ब महा प्राचीरा के पेशियाँ सिकुड़ती हैं तो वह चपटी हो जाती हैं, जिससे पसलियाँ ऊपर चढ़ जाती हैं और फेफड़ों क आयतन ऊपर नीचे की दिशा में बढ़ जाता है। फेफड़ों के इ प्रकार फैलने से उनके अन्दर की हवा भी फैलती है, जिस उस पर दबाब कम हो जाता है और ऐसी दशा में बाहर क हवा जिसका दवाब अपेक्षाकृत अधिक होता है, खिंचकर अप

आप फेफड़ों में पहुँच जाती है। महा प्राचीरा के संकुचन से इस प्रकार जो फेफड़ों में खाली स्थान बनता है, उनके अंगूर सदृश्य वायु को भरने के बाहर से हवा नाक द्वारा प्रवेश करती है।

महा प्राचीरा की पेशियों के फैलने पर डायाफ्राम फिर से गोल गुम्बद के आकार का हो जाता है और पसलियाँ नीचे झुक जाती हैं। फेफड़ों का आयतन कम होता है, वे संकुचित हो जाते हैं और भीतर भरी हुई हवा का कुछ भाग बाहर निकल जाता है।

श्वसन क्रिया और उसका भोजन से सम्बन्ध—

प्रायः श्वांस-प्रश्वांस की संख्या प्रति मिनट शिशु की ३५ है। दो वर्ष तक के बालक प्रति मिनट तीस बार साँस लेते हैं। बारह वर्ष के बच्चे २० बार, सोलह वर्ष के १८ बार श्वसन क्रिया करते हैं। एक स्वस्थ जवान आदमी एक मिनट में सोलह से अट्ठारह बार साँस लेता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के श्वांस अधिक चलते हैं।

हम रात के समय, विश्राम काल में श्वांस लेते हैं। यदि भोजन में स्निग्ध पदार्थ (घृत आदि) और शक्कर अधिक हो तो कार्बन डाआक्साइड अधिक बनती है। उसे निकालने के लिए साँस की संख्या कुछ बढ़ जाती है। व्यायाम और भोजन के बाद इसी से श्वांस गति वृद्धि का अनुभव हम सबको होता है। स्वस्थ और सबल श्वसन क्रिया के लिए भोजन सुधार पर इसीलिए बल दिया जाता है। प्राणायाम के अभ्यासी को तो

सन्तुलित भोजन की अतीव आवश्यकता है, क्योंकि उसे प्राण के श्वांस के अपव्यय को रोकना है।

श्वांस क्रिया द्वारा परिपोषण-

अब तक हमने श्वांस-यन्त्र का क्रिया-विज्ञान समझा। अब उसके निष्कर्षों पर भी विहंगम दृष्टि से विचार कर लें, तो अच्छा होगा।

गहरी श्वांस के द्वारा अधिक आक्सीजन फेफड़ों में भरने से फेफड़ों का व्यायाम होता है, उसके बन्द पड़े शिथिल कोषों में चैतन्यता आती है। ओक्सीजन के द्वारा रुधिर साफ होता है। रुधिर की विकृति अनेक मूल कारणों से रहती है। नाक के द्वारा श्वांस लेने से रुधिर की अभिसरण क्रिया ढ़ङ्ग से होने लगती है। फलतः अङ्ग-अङ्ग को योग्य पोषण मिलता है। वे स्वस्थ, सबल और निर्विकारी बनते हैं। यकृत, गुर्दे, हृदय, अन्त्र, मस्तिष्क ही नहीं नतिका विहीन ग्रन्थियों के समुचित विकास और सक्रियता के लिए रुधिर का शुद्ध होना, यथोचित गतियुक्त होना आवश्यक है, जो श्वांस की अपेक्षा रखता है।

रुधिर की अभिसरण क्रिया के सम्यक होने पर ही विसर्जन क्रिया यथा विधि चल पाती है। मन्द गति वाला रक्त मल-निष्कासन के प्राकृतिक कार्य को अपेक्षित ढङ्ग से नहीं होने देता है। फलतः अङ्ग विशेष में दर्द सूचन, फोड़ा, फुन्सी, ऐंठन शोथ आदि दोष उभर आते हैं। आँतों की पुरस्सरण क्रिया और मस्तिष्क की चैतन्य-क्रियायें भी सुश्वांस-प्रश्वांस पर अवलम्बित रहती है। रुधिर संचार की मान्यता के कारण अथवा विकृति के

कारण मस्तिष्क के कोषों को पोषण नहीं मिलता तभी तो चक्कर आना, मुद्दर्दा, अपस्त्रार, अपतन्त्रक, उन्माद, बुसि वैकल्प, स्मृति नाश, धनुर्वात, पक्षाघात जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। ये प्राणों का, प्राणमयी ऊर्जा का द्रुतगति से विनाश करते हैं। श्वसन संस्थानों की स्वस्थता पर ही मानसिक विचारों का न होना सम्भव है। मन की स्थिरता और बुद्धि की तेजस्विनी शक्ति इस पर आश्रित है।

यही नहीं श्वांस क्रिया की ओर यदि उचति ध्यान समय रहते न दिया जाय तो त्वग्विकार भी हो जाते हैं। त्वचा रूक्ष हो जाती है। शारीरिक कान्ति और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। फोड़े-फुन्सी जैसे रोग आ घेरते हैं।

अपूर्ण और अधूरी साँस लेने से ही हृदय विकार, असमय में हार्टफेल होना जैसे विपरिणाम होते हैं, ऐसा डाक्टर वर्ग भी मानते हैं। पूरी श्वांस लेने से सभी भीतरी अवयवों का व्यायाम होता है और वे बलवान बनते हैं। उसी से मन प्रसन्न और प्रमुदित रहता है। एकाग्रता और स्मृति बढ़ती है।

प्राणायाम साधना में इन बातों का ध्यान रखें

आवश्यक नियम

योग ग्रन्थों के अनुसार प्राणायाम का अधिकारी वह साधक है जो ब्रह्मचर्य का पालन करता हो, युक्त आहार बिहार से रहता हो, यम-नियमों के अनुसार अपने जीवन को ढाल चुका हो, जिसकी योग पर श्रद्धा हो, जिसके स्वभाव में क्रोध का अभाव हो, जो, माँस, मदिरा, भाँग, गाँजा, सिगरेट, तम्बाखू आदि मादक वस्तुओं का सेवन न करता हो। कमजोर हृदय वाले जन्म से ही किसी ने किसी रोग में ग्रस्त रहने वाले, जिनके अजीविका के साधन में अधिक शारीरिक श्रम पड़ता हो, जो अग्नि तापने के अभ्यस्त हों, सूर्य की धूप में जिन्हें अधिक घूमना पड़ता हो, भ्रष्ट, असत्यवादी, नैतिक रूप से गिरे हुए और कामी व्यक्ति प्राणायाम के अधिकारी नहीं हैं। प्राचीन काल में तो योगाभ्यास करने के पूर्व उपासना विज्ञान में सिद्ध हस्त होना आवश्यक होता था। इस तरह से कोई विशेष विघ्न उपस्थित होने की संभावना कम होती थी। यदि कोई विघ्न आ भी जाता तो अनुभवी गुरू उसे दूर कर देते थे।

साधारणतः सात से चालीस वर्ष तक की आयु में प्राणायाम सुविधा पूर्वक किया जा सकता है, जब शरीर की रक्त संचालन की क्रिया स्वाभाविक गति से चलती है। जिनके फेफड़ों और हृदय में जन्म से ही कोई रोग हो, उन्हें प्राणायाम नहीं करना

चाहिए।

साधक रागद्वेष से रहित हो, सदैव प्रसन्न चित्त रहने वाला हो, शारीरिक व मानसिक दृष्टि से पवित्र हो और उसमें योगाभ्यास करने का भरपूर उत्साह हो।

योग ग्रन्थों का मत है कि प्राणायाम का अभ्यास करने से पहले आसनों से नाड़ियों को मृदु बना लेना आवश्यक है। पद्मासन, सिद्धासन आदि साधना के लिए प्रमुख माने जाते हैं। इसमें दृढ़ता आनी चाहिए। दृढ़ता का अभिप्राय यह है कि किसी कए आसन पर दो-तीन घण्टे तक लगातार बिना हिले-डुले बैठा जा सके। आसन सिद्धि होने पर ही प्राणायाम करना चाहिए।

बसन्त और सर्दी के मौसम प्राणायाम के लिए श्रेष्ठ बताये गये हैं। दूसरे मौसमों में कुछ विघ्न आ सकते हैं। यह केवल प्रारम्भ करने का नियम है। जो पहले से करते आ रहे हैं, उन्हें शेष ऋतुओं में किसी हानि की संभावना नहीं है। वास्तव में अपनी प्रकृति, देश, काल का निरीक्षण करके ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

अभ्यास के लिए पवित्र व स्वच्छ वातावरण युक्त स्थान का चुनाव करना चाहिए जहाँ वायु के झोंके न आते हों। खुली वायु में भी उसे करने का निषेध है। वायु जब तीव्र होती है तो पसीने को बाहर आने से रोकती है। पसीना आने से नाड़ी की शुद्धि मानी जाती है। जब पसीना आने में रुकावट होती है तो इसे नाड़ी शुद्धि क्रिया में एक विघ्न समझा जाता है। अभ्यास से जो पसीना आवें, उसे शरीर पर ही मल लेने का नियम है। इससे

शरीर मृदु बनता है।

प्राचीन योग ग्रन्थों में लिखा है कि प्रातः दोपहर, शाम औ आधी रात को चार बार प्राणायाम किया जा सकता है। ए समय में इस प्राणायाम से आरम्भ करना चाहिए और नित्यप्रा पाँच की वृद्धि करनी चाहिए। यदि दूसरे प्रकार अभ्यास नियमि चलता रहे तो एक समय में ८० प्राणायाम होने लगते हैं। प्र दिन में ३२० प्राणायाम हो जाते हैं। इसमें अनुमानतः ६ घण्टे क समय लग जाता है। इतना अभ्यास भी आजकल करन असम्भव सा ही प्रतीत होता है। अपनी सुविधा और सामर्थ्य क देखते हुए ही अभ्यास की सीमा निर्धारित करनी चाहिए, यदि इसमें कुछ कठिनाई हो तो किसी अनुभवी योगाभ्यासी क सहयोग लेना चाहिए।

साधारणतः प्राणायाम का अभ्यास, दो बार पर्याप्त रहता है प्रातः काल का समय सूर्योदय से पूर्व और शाम को सूर्यास्त क दो घण्टे बाद श्रेष्ठ समय माना गया है। जिस व्यक्ति में अजी रोग हो, शारीरिक श्रम करके आया हो अथवा दिन भर क किसी भी काम से थकावट की अनुभूति कर रहा हो तो रा का अभ्यास कम करना चाहिए अन्यथा फेफड़ों के दोषी हो की सम्भावना रहती है।

भोजन के ३–४ घण्टे के पूर्व प्राणायाम नहीं करना चाहिए भोजन में शीघ्र पचने वाले पदार्थ हों गरिष्ठ नहीं। तामसि पदार्थों से बचना चाहिए, सात्विक पदार्थ ही ग्रहण कर चाहिए। साधारणतः रोटी, चावल, खिचड़ी, साग आदि के सा यदि दूध, घी, फल ओर सूखे मेवे सम्मिलित रहें तो अभ्या

लाभदायक रहता है।

प्राणायाम के लिए पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिक आसन और सुखासन श्रेष्ठ माने गये हैं। अभ्यास से पूर्व इनको दृढ़ कर लेना चाहिए। आसन गुदगुदा हो। ग्रीवा और पीठ बिल्कुल सीधी हो। झुके हुए न बैंठे। अकड़े हुए भी न हों।

प्राणायाम से पहले स्वर का ध्यान रखना भी आवश्यक है। बायेंचन्द्र स्वर में ही प्राणायाम करना चाहिए। यदि उस समय दांयासूर्य स्वर चल रहा हो तो बांया कर लेना चाहिए। दांये ओर लेटने से दांया स्वर बांया हो जाता है। दायें बगल में बायें हाथ की मुट्ठी बल पूर्वक रखकर वे वाहु से दवाएँ तो कुछ ही समय में बाँया स्वर चलने लगता है। एक महात्मा ने लिखा है "जब चन्द्र स्वर चलने लगे तो फिर कोमल मात्रा करके सम स्वर कर लें ! सम स्वर होने पर जो प्राणायाम किया जायगा, वह सफलता देने वाला होगा।

बन्ध साधना की अनिवार्यता-

प्राणायाम के साथ बन्ध साधना आवश्यक बताई गई है। मूल बन्ध तो आरम्भ से अन्त तक लगा ही रहना चाहिए। पूरक करके शीघ्र जालन्धर बन्ध लगाये। कुम्भक के पश्चात् जब रेचक करने लगें, तब उड्डीयान बन्ध लगाकर जालन्धर खोल देने का विधान है। बन्ध साधना का वर्णन योग कुण्डल्युपनिषद् (१।४२–४५) में इस प्रकार किया गया है।–

"अधोगति वाले अपान को शक्तिपूर्वक गुदा के अंकुचन द्वारा ऊपर ले जाने से मूलबन्ध होता है। अपान ऊपर जाकर वह्निमण्डल से मिलता है तो उसके प्रभाव से अग्नि की तीव्रता

बहुत अधिक हो जाती है। उस ज्वाला से तृप्त होकर सोई हुई
कुण्डलिनी जागृत होती है और दन्डे से मारी जाने वाली
सर्पिणी के समान फुस्कार कर सीधी हो जाती है।

तब यह बिल में प्रवेश करने के समान सुषुम्ना के भीतर
जाती है। इस कारण योगियों को मूलबन्ध का अभ्यास सदैव
करना चाहिए, कुम्भक के पश्चात् रेचक करने के पूर्व उड्डियान
बन्ध करना चाहिए, जिससे प्राण वायु सुषुम्ना के भीतर उड़
है। इसलिए योगीजन इसको उड्डियान कहते हैं। इसके लिए
वज्रासन लगाकर पैरों को हाथों से दृढ़तापूर्वक पकड़े। जहाँ
गुल्फ (टखना) रखा जाता है, वहाँ कन्दस्थानों को दबावें, पेट
को ऊपर की तरफ खींचे और हृदय तथा गले को भी तनाव
देकर खींचे। इस विधि से प्राण क्रमशः पेट की संधियों में प्रवेश
करता है और पेट के सब दोषों को दूर करता है। इस कारण
यह अभ्यास सदैव करते रहना चाहिए।

जालन्धर में कण्ठ का संकोचन वायु को रोकने के निमित्त
किया जाता है, वह बन्ध पूरक के अन्त में करना होता है
अधोभाग में मूल बन्ध गुदा का आकुंचन करें और ऊपर [illegible]
जालन्धर बन्ध द्वारा कण्ठ का संकोचन करें और मध्य [illegible]
पश्चिमतान (उड्डियान) से प्राण को खींचे। इस प्रकार स[illegible]
तरफ से रोका जाकर प्राण ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्ना) में बढ़ता है
सम्यक प्रकार से आसन पर बैठकर सरस्वती का चालन करके
प्राण का निरोध करना चाहिए। प्रथम दिन चारों कुम्भकों को
दस-दस बार करना चाहिए और दूसरे दिन पन्द्रह-पन्द्रह बार
करना चाहिए। तीसरे दिन बीस बार करना चाहिए, इसी प्रकार

तिदिन पाँच-पाँच बढ़ाता जाय। इन कुम्भकों का अभ्यास तिदिन तीर बन्द सहित करना चाहिए।

इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास नियमित रूप से सत्वमयी बुद्धि से करना चाहिए। उसके फलस्वरूप चित्त सुषुम्ना संलग्न रहता है और उसमें प्राणवायु दौड़ता है। जब मलशोधन हो जाय और प्राण चलने लगे तब प्रयत्नपूर्वक अपान की ऊर्ध्वगति करनी चाहिए। इसके लिये जो गुदा का आकुंचन किया जाता है, उसे मूलबन्ध कहते हैं। यह अपान ऊपर जाकर अग्नि के साथ संयुक्त होता है और ऊपर चढ़ता है। जब यह अग्नि प्राण स्थान में पहुँच प्राणवायु से मिलता है और वे सोती हुई कुण्डलिनी को प्राप्त होते हैं तो उसकी उष्णता से तप्त होकर यथा वायु से चलित होकर कुण्डलिनी सीधी हो जाती है और सुषुम्ना के मुख में प्रवेश करती है।

हठयोग प्रदीपिका २।१६ में कहा है:–

प्राणयामादि युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयक्ताभ्यासंयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः।।१६

आहार आदि का ध्यान रखते हुए और बन्ध साधना के साथ जो प्राणायाम किया जाता है, उसे युक्त प्राणायाम कहा जाता है। युक्त प्राणायाम से समस्त रोगों का नाश होता है। अयुक्त प्राणायाम के करने से अर्थात् युक्त-प्राणायाम के नियमों का पालन करने से समस्त रोग उत्पन्न होते हैं।

हिक्का श्वांसश्च कालश्च शिरः कर्णक्षिवेदनाः।
भवति विविधा रोगाः पवनस्य प्रकोपः।।१७

अयुक्त प्राणायाम से प्राणवायु का प्रकोप होता है जिससे

हिचकी खाँसी, सर, कान, नेत्रादि में दर्द व ज्वरादि के हो
सम्भावना होती है।

हानि की सम्भावना

श्वांस भीतर रोकने की कुम्भक क्रिया को यथाशक्ति
प्रकार करें कि प्रश्वांस बाहर छोड़ने की रेचक क्रिया
धीरे-धीरे संचालित किया जा सके। पूरक को भी सावधा
करें। नली से शनैः-शनैः जल खीचंने की तरह श्वांस
खीचंना चाहिये। पूरक में जल्दी न करें। इसमें हानि
सम्भावना रहती है। यदि पूरक जल्दी जल्दी किया जाय
कुम्भक की अवधि अधिक नहीं रह पायगी। फेफड़े के कोष
भी हानि पहुँच सकती है। रेचक क्रिया में जहाँ तक सम्भ
शीघ्रता न करें अन्यथा फेफड़ों को आघात पहुँच सकत
अतः प्रश्वांस को बहुत धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए। उसके
थोड़ी देर बाह्य कुम्भक करके तब अगले प्राणायाम का
आरम्भ करें। बाह्य कुम्भक से फेफड़ों को शक्ति प्राप्त होत

हठयोग प्रदीपिका (२।१५) में कहा हैः–

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्चः शनैः शनैः।
यथैव सेवितो वायुरण्यथा हन्ति साधकम्।।

"सिंह आदि की तरह धीरे-धीरे प्राणों को वश में
चाहिए। जिस तरह से सिंह, हाथी व्याध्र को धीरे-धीरे व
किया जा सकता है, जल्दी से नहीं, उसी तरह प्राण भी शी
से वश में नहीं होता, धीरे-धीरे ही उस पर विजय प्राप्त
चाहिए। यदि शीघ्रता की जायगी तो प्राण भी सिंह की
साधक का नाश कर देता है।

शास्त्र का अभिप्राय यह है कि प्राणायाम साधना में उतावलेपन से काम न चलेगा, धैर्य को अपनाना होगा। थोड़े समय में ही सिद्धि प्राप्त करने की आशा न रखें। इसमें लम्बे समय के अभ्यास की अपेक्षा है। आरम्भ में आधा मिनट का अभ्यास करें। फिर शनैः-शनैः वृद्धि करें। यही प्राणायाम का श्रेष्ठ नियम है। इस नियम की अवहेलना से हानि हो सकती है।

जो साधक नियमों का पालन नहीं करते और विधि विधान की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते और बिना अनुभवी मार्ग दर्शक के अपने आप उल्टा सीधा, अभ्यास करके चमत्कार दिखाना चाहते हैं, उन्हें हानि हो सकती है। प्राणायाम का साधारण नियम है कि तीव्र-वायु वेग और ऋतु प्रतिकूलता में, जुकाम अथवा भरे पेट अभ्यास नहीं करना चाहिए। यदि किया जायगा तो निश्चित हानि होगी।

सावधानी के लिए इन नियमों का भी अवश्य ध्यान रखें:—

जिनका शरीर अशक्त हो, उन्हें नाड़ी अवरोध, भस्त्रिका, एकांग स्तम्भ, सर्वांग-स्तम्भ, मुख-प्रसारण-पूरक, हृदय-स्तब्ध, अग्नि प्रदीप्त, व वायवीय-कुम्भक नहीं करने चाहिए।

पित्त प्रकृति वालों को भस्त्रिका प्राणायाम नहीं करना चाहिए क्योंकि यह पित्त को उभारता है और बात व कफ की शान्ति करने वाला है।

गर्मी के मौसम में सूर्य भेश्य, भस्त्रिका. एकांग-स्तम्भ, सर्वांग-स्तम्भ, अवरोध, मुख-प्रसारण-पूरक व अग्नि प्रदीप्ति प्राणायाम वर्जित हैं। परन्तु जिनकी प्रकृति कफ प्रधान है, वह इन प्राणायामों को पर्वतीय स्थानों में कर सकते हैं। उन्हें हानि

की आशंका नहीं रहती।

सर्दी के मौसम में सीत्कार शीतली, चन्द्रभेदी, प्राणाय करने का निषेध है। जिनकी प्रकृति पित्त, प्रधान है, वह सा इस ऋतु में भी इनका अभ्यास कर सकते हैं। उन्हें हानि होगी।

जिन व्यक्तियों की प्रकृति बात प्रधान है, उनके शीतली प्लावनी, उदरपूरक, शीतकार, सीत्कारी, कण्ठ- प्राणायाम हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। वे इन प्राणायामों अभ्यास न करें।

शीतली प्राणायाम पित्त को शान्त करने का गुण रखता अतः जिन्हें पित्त प्रधान रोग है, उन्हें यह प्राणायाम क चाहिए। पूरक से गर्मी और पित्त बढ़ते हैं। पूरक के आभ्यान्तर कुम्भक करने से पित्त उत्पन्न होता है। जि प्रकृति वात और कफ की है, उनके लिए विशेष प्रकार लाभदायक है। रेचक क्रिया से समस्त दोषों की निवृत्ति है। इसके लिए ऋतु और प्रकृति का कोई प्रतिबन्ध नहीं

अतः अपनी प्रकृति का भली प्रकार से निरीक्षण करके विभिन्न प्राणायामों के अभ्यास का चुनाव करना चाहिए।

जिस व्यक्ति को ज्वर हो, उसे प्राणायाम नहीं क चाहिए। गर्भवती स्त्रियों को यह हानिकारक हो सकता है

प्राणायाम उसको उपयोगी क्रिया से परन्तु नियमों की जानकारी के अभाव से हानि होने की सम्भावना हो सकती इनके सम्बन्ध में स्वयं सावधान रहना चाहिए या किसी अनु गुरु की देखरेख में करना चाहिए।

प्राणायाम के पूर्व की नाड़ी शोधन साधना

मनुष्य का शरीर एक कारखाना है उसमें विभिन्न प्रकार की मशीनें हर समय कार्यरत रहती हैं। नियम है कि मशीनों के क्रियाशील रहने पर उनमें मल उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस मल की शुद्धि होना आवश्यक है। यदि वह एकत्रित होता रहे तो विभिन्न रोगों के रूप में शरीर के बाहर आने का प्रयत्न करता है। यदि उस रोग की कोई वैज्ञानिक चिकित्सा की गई तो वह रोग जड़ से नष्ट हो जायेगा अन्यथा उसका विष रक्त के साथ-साथ सारे शरीर में घूमता हुआ सारे शरीर को ही विषैला बना देता है। अँग्रेजी दवायें यही खतरनाक काम करती हैं। जो मल शरीर बुद्धि के लिए शरीर के बाहरी भागों में आ जाता है, यह दवायें उसे पुनः शरीर में जाने को बाध्य करती हैं और शरीर में समस्त नाड़ी जाल को दूषित बना देती हैं। अतः इन दवाओं से बचना चाहिए। नाड़ियों के जिस कारण से भी मल उत्पन्न हो रहा हो, उनका शोधन आवश्यक है।

योग ग्रन्थों में नाड़ियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। योगदर्शन में तो केवल 'कूकर्म' नाड़ी का उल्लेख आया है परन्तु अन्य योगग्रन्थों में ७२०० यौगिक नाड़ियों का उल्लेख मिलता है। जिनको स्थूल नेत्रों से देखा जाना सम्भव नहीं है। योगी अतीन्द्रिय बुद्धि से ही उनका निरीक्षण कर सकते हैं। शरीर की वैज्ञानिक चीर-फाड़ करने पर भी उनका अनुमान

लगाना सम्भव नहीं है। इस समस्त नाड़ियों में तीन नाड़ियों क प्रमुख स्थान है। इसका नाम है—सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला इनमें से भी सुषुम्ना विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करत है। विदेशी वैज्ञानिक तो इन्हें कल्पना मात्र ही मानते हैं। क्योंकि यह उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्रों की पकड़ में नहीं आती "मिस्टीरियम कुण्डलिनी" के लेखक डा० वी० जी० रेले अपनी पुस्तक में इस विषय पर पर्याप्त चर्चा की है औ विसतार से इनकी जानकारी दी है। स्वामी विवेकानन्द ने अप अमेरिकन शिष्यों को शिक्षायें दी थीं, उन भाषणों में यौगिक नाड़ियों का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। इनको बाल से भी सूक्ष्म बताया जाता है। कुछ अन्वेषकों ने इनकी संज्ञा ज्ञान तन्तुओं से दी है। योग ग्रन्थों ने इनका स्थान इस प्रकार निर्धारित किया है कि सुषुम्ना रीढ़ की हड्डी के नीचे जाते हु प्रमुख ज्ञान तन्तु और इड़ा व पिंगला उनकी कार्यकारिणी शक्ति प्रदायिनी शक्तियाँ हैं जो इधर-उधर के तन्तुओं से प्रदर्शित होती हैं। इन्हें एक प्रकार की सूक्ष्म विद्युत धारा भी कहा ज सकता है जिसका शरीर की गतिविधियों में महत्वपूर्ण स्थान है योगाचार्यों ने इनका शोधन एक दैनिक क्रिया के रूप में बताय है।

योगियों ने प्राणायाम के पूर्ण शरीर के समस्त नाड़ी जा की शुद्धि कर लेना आवश्यक बताया है। इसकी पुष्टि में योगशास्त्र कहते हैं—

"मला कलासु नाड़िसु मारूतौणैव मध्यगः।"

"जब नाड़ियाँ मल दोषों से दूषित रहती है तो प्रांण का वाह सुषुम्ना से सुविधा पूर्वक नहीं हो पाता।"

"कद्धमेतियदा सर्व नाड़ी–चक्रं मला कुलम्"
सदैव जायते योगी प्राण–संग्रणे क्षमः।।

जब शरीर का समस्त नाड़ी चक्र मलों व दोषों से रहित कर शुद्ध हो जाता है तभी योगी प्राणायाम करने के योग्य ता है। नाड़ी शुद्धि के लक्षणों का वर्णन करते हुए हठयोग दीपिका में कहा गया है:–

यदा तु नाड़ी शुद्धि स्यात्तथा चिह्नादि वाह्यतः।।
"कायस्य कृशता कांतिरत्तदा जायेत निश्चितम्।।१८

"नाड़ियों की शुद्धि होने से शरीर के बाहर व भीतर काया ी कृशता व तेज निश्चय रूप से दृष्टिगोचर होने लगते हैं।"

यथेष्ट धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम्।।
नादभिव्यक्तिरा रोग्यं जायते नाड़िशोधनात्।।

वायु के यथेष्ट धारण करने व नाड़ियों के शोधन करने से ठराग्नि प्रदीप्त होती है, नाद की अभिव्यक्ति होती है और गों का नाश होता है।

नाड़ियों के शोधन के बिना प्राणायाम साधना में सफलता हीं मिलती। नाड़ी शोधन क्रिया को प्राणायाम की पूर्व तैयारी मझना चाहिए जो उसकी भूमि को दृढ़ व पुष्ट करती है। पूर्व यारी किये बिना कोई भी काम किया जाय, उसमें सफलता दिग्ध रहती है। प्रमुख बात यह है कि प्राणायाम के साथ प्राण ा प्रवाह ब्रह्मरन्ध्र तक होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब

नाड़ियाँ मल रहित हों। शुद्धि होने पर प्राण का प्रवाह निर्वि
गति से सारे शरीर में होने लगता है। इसके प्रमुख तीन के
हैं–सुषुम्ना, इड़ा व पिंगला। इन्हीं से प्राण प्रवाह होकर चक्र
तक पहुँचकर उन्हें जगाता है जिनसे साधक असाधारण का
करने की क्षमता प्राप्त करता है। इस क्रिया में कोई व्यवधा
उत्पन्न हो जाये तो विकृति होना स्वाभाविक है।

योग ग्रन्थों में नाड़ी शुद्धि के लिए पहले षट् कर्मों
विधान निर्देशित किया गया हैं वे षट् कर्म हैं–धौति, वस्ति, नौ
त्राटक, कपाल, भाँति। इन षट् कर्मों के लाभों की चर्चा क
हुए हठयोग प्रदीपिका (२।३६) में कहा है:–

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्हकफदोष जलपदिकः।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्धयतिः।।३६

षट् कर्मों के अभ्यास से शरीर की स्थूलता, बीस प्रकार
कफ दोष और मल पित्त आदि दोष निवृत्त होते हैं। इन
कर्मों के बाद प्राणायाम किया जाय तो सहज में ही प्राणाय
में सफलता प्राप्त होती है।

यह षट् कर्म पुस्तक पढ़कर किये जाने सम्भव नहीं
अतः इन्हें योग्य गुरु से ही सीखने चाहिये।

नाड़ी व शिराओं की शुद्धि के लिए नाड़ी शोधन प्राणाय
को अपनाना अभीष्ट है। इसकी विधि इस प्रकार है:–

पदमासन में बैठें। इसमें केवल पूरक व रेचक करना हो
है। कुम्भक नहीं करना पड़ता। सर्व प्रथम बाँयें हाथ के अँ
से दायें नासिका को दबायें और बायें नासिका से शनैः-श

श्वांस भीतर खींचे। योग की भाषा में इसे मूलाधार तक लेना चाहिए। अब श्वांस को रोके बिना ही बायें नासिका को बन्द कर ले और दायें नासिका से प्रश्वांस को धीरे-धीरे बाहर निकालना चाहिए। यह एक प्राणायाम हुआ। संख्या की वृद्धि एकदम न बढ़ाकर धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए।

इस नाड़ी शोधन प्राणायाम की विधि योग चूड़ामणि उपनिषद् (९८) में वर्णित है। नियमित रूप से इस क्रिया को करते रहने पर एक मास में नाड़ी शुद्धि हो जाती है, ऐसा उपनिषद्कार का आश्वासन है।

एक विद्वान लेखक ने नाड़ी शोधन प्राणायाम की एक आदर्श विधि का प्रतिपादन करते हुए लिखा हैः–

"प्रातः काल पूर्व की ओर मुख करके सुखासन पर बैठकर नाक का दाँया नथुना बन्द करके बाँये से साँस खींची जाय जो इतनी हो कि केवल फेफड़े में ही न रहकर पेट भी कुछ फूल जाय। इस विधि से वह साँस नाभि चक्र को प्रभावित करती है। बाँये नथुने से जो साँस खींची जाती है, वह इड़ा नाड़ी द्वारा भीतर जाती है जिसे चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं। इसलिए नथुने से साँस लेते समय यह भावना करनी चाहिए कि नाभि स्थिर चन्द्रमा को स्पर्श करके शीतल और प्रकाशित बना रही है। जब वह साँस बाहर निकाली जाय तो भावना कीजिए कि उसके द्वारा इड़ा नाड़ी शीतलता और प्रकाश पाकर शुद्ध और पुष्ट बन रही है। इस प्रकार का अभ्यास तीन बार करना चाहिए, उसके बाद बाँयें नथुने को बन्द करके दाँये से इसी प्रकार खींची और निकाली जाय। यह भावना की जाय कि प्राण-वायु

के द्वारा नासि स्थिति सूर्य की ऊष्मा और प्रकाश ऊपर उठकर पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी को शुद्ध और सशक्त बना रहा है। यह क्रिया भी तीन बार करनी चाहिए। अन्त में दोनों नथुनों को खोलकर एक बार साँस भीतर खींचकर मुख से बाहर निकाल देना चाहिए इस प्रकार सात बार साँस खींचने को एक नाड़ी शोधन प्राणायाम कहा जाता है क्रमशः अभ्यास करके इस प्रकार के तीन प्राणायाम प्रतिदिन करते रहने से कुछ दिनों में सभी नाड़ियाँ मल रहित और शुद्ध हो जाती हैं और साधक अपने शरीर में हल्कपान और साथ ही शक्ति की अधिकता का अनुभव करने लगता है।"

नाड़ी शोधन में प्राणायाम में पूरक और रेचक ही किया जाता है, कुम्भक नहीं किया जाता। शाण्डिल्योपनिषद् (६।१।२) में एक ऐसी विधि का विवेचन है जिसमें कुम्भक को भी सम्मिलित किया गया है। विधि इस प्रकार है:—

अथासनदृढो योगी वशी मियहिताशनः, सुषुम्नाड़ीस्थ-मलशोषार्थ योगी बद्धपद्मासनो वायु चन्द्रेणापूर्य यथाशक्ति कुम्भालित्वा सूर्येण रेचयित्वा पुनः सूर्येणापूर्ये कुम्भयित्वा चन्द्रेण वविरेच्य यया त्यजे तया सम्पूर्ण धारयेत। तदेते श्लोका भवन्ति

प्राण प्रोगिया पिन्नियमित भूयोऽन्यया रेचयेत्।
पीत्वा पिंगलया समीरणमथो बद्ध्वा त्यजेद्वामया।
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाऽभ्यासं सदा तन्वतां।
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रायादूर्ध्वतः।।१
प्रातमंध्यन्दिने सायमर्धरात्रे तु कुम्भकान्।

शनैरशीतिपर्यन्त चतुर्वारं समभ्ययेत्।।२

"फिर आसन दृढ़ होने पर योगी को जितेन्द्रिय बनकर हितकारी मिताहार पर रहकर सुषुम्ना नाड़ी में रहने वाले मल को सुखाने के लिए योग करना चाहिए उस समय पद्मासन पर बैठकर चन्द्रनाड़ी में वायु भरकर, शक्ति अनुसार कुम्भक करके, सूर्य नाड़ी से रेचक करना। फिर सूर्य नाड़ी से पूरक करके, कुम्भक करना और चन्द्रनाड़ी रेचक करना। इस प्रकार गाड़ी से रेचक करे, उस नाड़ी से फिर पूरक करके कुम्भक करे। इस आशय को प्रकट करने वाले निम्न श्लोक कहे गये हैं-"प्रथम इड़ा नाड़ी में प्राण को भर कर कुम्भक करके दूसरी पिंगला नाड़ी से रेचक करना। फिर पिंगला से पूरक करके कुम्भक करते हुए इड़ा से रेचक करना। इस विधि से सूर्य-चन्द्र की नाड़ी द्वारा प्राणायाम का नित्य अभ्यास करने से योगी की समस्त नाड़ी तीन महीने में शुद्ध हो जाती है।१। प्रातः दोपहर, सन्ध्या और मध्य रात्रि-इस प्रकार चार बार धीमे-धीमे अस्सी मात्रा तक के कुम्भक का अभ्यास करना।।२।।

प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त करने के लिए उपरोक्त विधियों के अनुसार नाड़ी शोधन करना आवश्यक है।

श्वांस क्रिया की कुछ सरल विधियाँ

प्राणायाम के पूर्वाभ्यास के रूप में कुछ श्वांस के योग बड़े उपयोगी हैं ये स्वरूपतः सरल व्यायाम हैं, किन्तु श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया के यथेष्ट नियम के अभ्यास के लिए उनकी बड़ी उपयोगिता है। महत्व की दृष्टि से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनके करने से अंङ्ग-प्रत्यङ्ग पुष्ट होते हैं, रुधिर-परिभ्रमण की क्रिया सुचारू रीति से चलती है। रुधिर में आक्सीजन का संचार हो जाता है। रुधिरगत गन्दगी बाहर निकल जाती है। फेफड़े सबल होते हैं वक्षस्थल या सीना चौड़ा होता है। आमाशय, यकृत और गुर्दों के बहुत से विकार दूर हो जाते हैं। नस-नस में ताजगी और चेतन्यता आती है। काम में खूब मन लगता है। मानसिक स्वास्थ्य बढ़ता है।

इन व्यायामों में श्वांस पूरी और लम्बी ली जाती है। जिससे आगे के कठिन प्राणायाम करने में बड़ी मदद मिलती है। अधूरा साँस लेने से फेफड़ों की अगणित कोठरियाँ बन्द पड़ी रहती हैं। निष्क्रिय रहने से उनकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अतः पक्षाघात खाई हुई मृत प्रायः दशा में रहने से शरीर के योग्य-पोषण में बड़ी बाधा पड़ती है। परन्तु इन सरल श्वांस-योगों के अभ्यास से वे पुनः सक्रिय हो उठती हैं। फलतः हृदय और फेफड़ों के रोग नहीं होने पाते। जो व्यक्ति नियमित रूप से इन्हें करता है, बाल अकाल में सफेद नहीं होते हैं। उसे

न्यूमोनिया, प्लूरिसी, अजीर्ण आदि रोग भी नहीं होते। अतः इनकी सरलता देखकर इनकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। इन व्यायामों के द्वारा श्वांस क्रिया पर नियन्त्रण रखने पर ही प्राणायाम करना अधिक लाभप्रद होगा। ये श्वांस योग अन्य प्राणायामों को यथाविधि करने में, कुम्भक, पूरक और रेचक के यथा योग्य संचालन में बड़े सहायक हैं।

पहली श्वांस क्रिया

सर्वप्रथम सीधे खड़े हो जाइये। पाँव एक-दूसरे से बीस-पच्चीस इन्च की दूरी पर हों। दोनों टाँगों पर समान बल हो। गर्दन सीधी, सीना आगे को तना हुआ, ठोड़ी कुछ अन्दर की ओर झुकी हुई हो। हाथ नीचे की ओर जंघा से सटे हुए रहें, अब धीरे-धीरे गहरी साँस भरें। हवा को तब तक रोके रहें, जब तक सुविधा के साथ वैसा कर सकते हों। फिर मुँह खोलकर जोर से हवा को बाहर निकाल दें। इस क्रिया को सात से दस बार तक करके दूसरा श्वांस योग करें। अच्छा हो, एक दो मिनट टहलकर दूसरा योग करें।

दूसरी श्वांस क्रिया

पूर्ववत् सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये। गर्दन सीधी, छाती आगे की ओर निकली हुई, ठोड़ी कुछ नीचे की ओर झुकी हुई और हाथ दोनों पार्श्वों में लटक रहे हों। अब बहुत धीरे-धीरे हवा को खींचें। श्वांस भरते समय ऊपर से नीचे की ओर सभी पसलियों को एक-एक करके थपथपायें। जब पूरी साँस ले लें, तो हथेली से धीरे-धीरे सम्पूर्ण वक्ष की मालिश उस

समय तक करते रहें, जब तक आसानी से आप साँस को अन्दर ही रोकें रख सकते हों। तदनन्तर श्वांस को धीरे-धीरे छोड़ें। इस क्रिया को सात से दस बार तक करें। इस क्रिया के करने से फेफड़ों के सभी कोष खुल जाते हैं। फेफड़ों की क्रियाशीलता बढ़ती है। वे परिपुष्ट होते हैं। फेफड़ों के रोग नहीं होने पाते जिन्हें जल्दी-जल्दी जुकाम खाँसी आदि हो जाते हैं। उनके लिए तो यह योग अमृतोपम है।

इस क्रिया को करने के बाद एक दो मिनट तक टहलना चाहिए। उसके बाद तीसरा श्वांस-योग करना चाहिए।

तीसरी श्वांस क्रिया

सीधे खड़े हो जायें। एक पाँव से दूसरे पाँव की दूरी आधा मीटर (अर्थात् बीस पच्चीस इन्च) रहनी चाहिए। दोनों टाँगों पर समान बल रहे। गर्दन सीधी, सीना आगे की ओर निकला हुआ रहना चाहिए। दोनों हाथ बगलों से इस प्रकार सटा रखें कि अँगुलियाँ स्तन स्थान के पास छाती की ओर रहें और अँगूठा पीठ की ओर हो।

अब गहरी साँस लीजिए। सुविधानुसार अधिक से अधिक समय तक वायु को अन्दर ही रोके रहिये। फिर बगलों को बार-बार हाथों से दबाते हुए कई बार में धीरे-धीरे हवा निकालिये इस श्वांस क्रिया को पाँच बार ही करें। इसके बाद चौथा श्वांस योग करें।

चौथी श्वांस क्रिया

तीसरे श्वांस योग में जिस प्रकार खड़े होने को बताया गया है, उस स्थिति में खड़े होकर यह योग भी करना है। तीसरे योग में हाथ बगलों में सटे हुए रखने को कहा गया है, इसमें हाथ कोरवों में रखने होंगे। पसलियों और पेट (उदर) जहाँ मिलते हैं, उस स्थान को कोख कहते हैं। यहाँ दोनों हाथ इस प्रकार रखें कि उँगलियाँ क्रमशः बांई ओर आमाशय के पास और सीधी ओर जिगर के पास रहें।

अब पूर्ववत् गहरी साँस लीजिए। जितनी देर रोक सकते हैं। हवा को अन्दर ही रोके रहिये। उसके बाद अँगुलियों से कोखों को बार-बार दबाते हुए श्वांस छोड़िये श्वांस छोड़ने में जल्दबाजी न कीजिए अधिक से अधिक श्वांस बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस क्रिया को भी पाँच बार ही करें।

तीसरा और चौथा श्वांस योग करने के बाद फेफड़ों को आराम देने के लिए एक दो मिनट टहलना चाहिए अथवा गहरी साँस लेकर कुछ सेकेण्ड रोककर सीटी बजाने के समान मुँह की आकृति बनाते हुए होठों के बीच के छेद में से उस वायु को वेग पूर्वक कई बार में रुक-रुक कर निकालें। ऐसा करने से अवसाद और थकान मिटती है। चैतन्यता बढ़ती है।

पाँचवी श्वांस क्रिया

पैरों को बीस-बाईस इन्च की दूरी पर रखते हुए सीना तानकर सीधे खड़े हो जाइये। दोनों हाथों को समानान्तर सामने की ओर रखिये। अब गहरी साँस लीजिए। सांस अन्दर ही कुछ देर तक रोके रहिये। जब तक साँस अन्दर रोके रहें तब तक मुट्ठी बाँधकर खूब जोर लगाते हुए भुज दण्ड की माँसपेशियों पर बल डालते हुए, मुट्ठियों को कंधों से मिलाइये। सुविधानुसार जब तक आप श्वांस रोक सकते हैं, तब तक कि अवधि में इस क्रिया को कई बार करें।

ध्यान रहे, यह क्रिया इस ढंग से की जानी चाहिए, कि हाथों को मुट्ठी बाँध कर कंधों की ओर लाते समय इतना जोर लगाया जाय कि कँपकँपी मालूम होने लगे। फिर पुट्ठों पर वैसा ही जोर लगाते हुए हाथों को सामने की ओर लाया जाय। कई बार ऐसा ही करने के बाद मुँह के मार्ग से वायु को बाहर निकाल देना चाहिए।

छठी श्वांस क्रिया

इसमें श्वांस योग को पांच से दस बार तक किया जा सकता है। इससे पुट्ठे तो बलवान होते ही हैं, फेफड़ों के साथ सम्पूर्ण ऊर्ध्वांग पुष्ट हो जाते हैं।

सावधान की स्थिति में सीना तानकर खड़े हो जाइये। आपकी गर्दन सीधी रहे। ठोड़ी कुछ झुकी हुई हो। आँखें नासाग्र पर स्थिर हों या सामने को देखती हों। होठों और भौंहों पर मुस्कान हों, प्रसन्न मुद्रा में हों घुटने कड़े हों। दोनों टाँगों पर समान बोझ रहे। भुजायें अगल-बगल में लटकती हों।

अब धीरे-धीरे श्वांस भरिये। साथ ही पैरों की उँगलियों पर ऊपर की ओर तनते हुए खड़े होइये। कुछ देर साँस अन्दर ही रोकिये। जब तक साँस रोके रहें, अपने को ऊपर तानते हुए पंजों के बल पर ही खड़े रहिये। फिर धीरे-धीरे श्वांस छोड़ते हुए एड़ियों को शनैः-शनैः पृथ्वी पर रखिये। इस क्रिया को इसी तरह से दस बार तक करना चाहिये। तत्पश्चात् एक दो मिनट टहलकर अलग श्वांस-योग कीजिए।

सातवीं श्वांस क्रिया

सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये। सीना तना हो। बाहें अगल-बगल में सीधे लटकती हों अब धीरे-धीरे गहरी साँस लीजिए। साँस भरने के समय हाथों से दृढ़ता के साथ खूब जोर लगाते हुए हाथों की नस-नस को कड़ा करते हुए सिर ऊपर की ओर ले जाइये। सिर के ऊपर जाकर नमस्ते की स्थिति में दोनों हाथों को मिलाइये। यह क्रिया करते समय एड़ियों को भी ऊपर की ओर उठाते चलिये—पूरी साँस लेने तक को दोनों पंजों पर साथ लीजिए।

अपनी शक्ति के अनुसार कुछ समय तक श्वांस को अन्दर ही रोके रखिये। जब तब सांस रोके रहें, तब तक पंजों के बल पर ही तने खड़े रहें और हाथ सिर के ऊपर सीधे जुड़े रहें।

इसके बाद धीरे-धीरे श्वांस छोड़िये। धीरे-धीरे एड़ियों को गिराइये। हाथों को नीचे लाइये।

इस क्रिया को पाँच से सात बार तक करना चाहिए। फिर दो तीन मिनट टहलना चाहिए। तत्पश्चात् अगला श्वांस-योग करें। छठे और सातवें श्वांस योग से नस-नस में रुकी गन्दगी

रुधिर प्रवाह के साथ बहकर मूत्र, पसीना और श्वांस-मार्ग बाहर निकल जाती है। नाड़ी संस्थान दृढ़ होता है। उनकी क्रियाशीलता बढ़ती है। जिससे स्फूर्ति और उत्साह का प्रादुर्भाव होता है। प्राणायाम क्रिया (मेटावोलिज्मि) स्वस्थ रीति से होने लगती है।

आठवीं श्वांस क्रिया

आठवें योग को करने के लिए भी पहले के समान सावधान मुद्रा में ही सीना तानकर, टाँगों पर एक जैसा बल देते हुए खड़ा होना चाहिए। दोनों हाथ आगे की ओर आमने-सामने होने चाहिए। हाथ सीने की चौड़ाई के बराबर की दूरी पर परस्पर एक दूसरे के समानान्तर रहने चाहिए।

अब लम्बी साँस भरिये और हाथों को पीठ की ओर ले जाने का उपक्रम कीजिए। साँस को आसानी से जितनी देर रोक सकते हो, रोकिये। बाँहों को पीछे की ओर ही ताने रहिये। फिर मुँह के द्वारा साँस को सीटी बजाते हुए वेग के साथ बाहर निकाल दीजिए। इस क्रिया को सीटी बजाये हुए वेग के साथ बाहर निकाल दीजिए।

इस क्रिया को पाँच से सात बार तक कीजिए। पूरक की स्थिति में (अर्थात् श्वांस को अन्दर ही रोके रहने के काल में) हाथों को कई बार आगे और पीछे भी किया जा सकता है। इस श्वांस योग से सीना फैलता है। फेफड़े पुष्ट होते हैं। इन्जाइना पेक्टोरिस जैसे हृदय की ओर आने जाने वाली महाशिरा और महाधमनी स्वच्छ और सबल होती हैं।

नवीं श्वांस क्रिया

पहले के समान सीना तानकर खडे हो जाइये। दोनों हाथ आमने-सामने आगे की ओर रहने चाहिए। अब श्वांस लीजिए। श्वांस लम्बी होनी चाहिए। कुछ सेकेण्ड तक हवा को अन्दर ही रोके रहिये। मुट्ठी बाँधकर दोनों हाथों को ऊपर से नीचे की ओर चक्राकार घुमाइये। फिर श्वांस मुँह के मार्ग से बाहर निकालिये।

दुबारा साँस लीजिये। इस बार हाथों को नीचे से ऊपर को चक्राकार मुट्ठी बाँधकर वेग के साथ घुमाना चाहिए।

हाथों को नीचे से ऊपर या ऊपर से नीचे की ओर तभी तक घुमाना चाहिए, जब तक आप श्वांस को अन्दर रोके रहें। साँस बाहर निकालते ही पूर्व स्थिति में आ जाना चाहिए। इस क्रिया को भी पाँच से सात बार तक किया जाना चाहिए।

दसवीं श्वांस क्रिया

यह श्वांस-योग नवें योग के ही समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसको करते समय अपने को पंजों के बल पर रोकना पड़ता है। नवें श्वांस योग को करते समय सांस को साधकर दोनों भुजाओं की मुट्ठी बाँधकर चक्राकार घुमाने को कहा गया हे। इसमें भी वैसा ही करें, किन्तु यह ध्यान रहे हाथों को घुमाते समय आप पन्जों के सहारे खड़े हों। एड़ियाँ भूमि से उठी हों। सीना तना हो। जब साँस छोड़े, तो एड़ियाँ जमीन से लग जावें और हाथ आमने-सामने आ जावें। इस तरह हम देखते हैं, दसवाँ श्वांस योग नवम्-योग का ही विकसित रूप

है। इसे भी पाँच सात बार किया जाना चाहिए।

ग्यारहवीं श्वांस क्रिया

पाल्थी बाँधकर सुख पूर्वक बैठिए। सीना तना हुआ रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। नाक से कई बार में रुक-रुक गहरी साँस लीजिए। साँस एक साथ न लेकर थोड़ा-थो करके कई खण्डों में अधिक से अधिक भरने की कोशि कीजिए। इतनी गहरी साँस हो कि फेफड़ें अच्छी तरह जाँय और पेट भी कुछ-कुछ फूल जाय। यथा शक्ति सुवि पूर्वक इस साँ को अन्दर ही रोके रहें। फिर नाक की राह आराम के साथ लम्बी साँस के रूप में सम्पूर्ण हवा निकाल

इस क्रिया को पाँच से सात बार तक करना चाहिए। यह श्वांस-योग समाप्त कर लें, तो गहरी साँस लेकर होठों मोड़कर सीटी बजाने की आकृति में बनाकर जोर लगाते थोड़ा-थोड़ा करके कई बार अन्दर भरी हुई हवा को बा निकालें। यह क्रिया ग्याहरवें श्वांस-रोग का विलोम है। उस थोड़ा-थोड़ा करके कई खण्डों में श्वांस भरी जाती है उसमें होठों को मोड़कर कई खण्डों में हवा निकाली जाती इसे भी पांच से सात बार करना चाहिए।

बारहवीं श्वांस क्रिया-

चौरस जमीन पर साफ कपड़ा बिछाकर पेट के बल ले जाइये। यदि फर्श या जमीन साफ हों, तो कुछ भी बिछाने जरूरत नहीं है। सिर, रीढ़ और पैर सीध में हों। एड़ियाँ स हुई और पन्जे खुलें रहें हाथ कोहनियों से मुड़कर दोनों अ

अगल-बगल में हथेलियों के बल फर्श पर जमें रहें।

अब धीरे-धीरे साँस भरते हुए सिर और छाती को ऊपर उठाइये और उसे पीछे की ओर जहाँ तक ले जा सकें, ले जाइये। ध्यान रहे हाथों पर भार न पड़ने पावे। साँस को सुविधानुसार कुछ सेकन्ड तक रोकिये और इसी मुद्रा में स्थिर रहिये। फिर धीरे-धीरे श्वांस छोड़िये और पूर्व स्थिति में आ जाइये।

इस श्वांस-योग को तीन से सात बार तक किया जा सकता है इसके द्वारा आमाशय की पेशियों का अच्छा विकास होता है। रीढ़ में लोच आती है। रीढ़ से निकलने वाली नाड़ी गुच्छों में तीव्रता के साथ रक्त-संचार होने से उनकी क्रियाशीलता बढ़ती है स्वप्नदोषादि वीर्य विकार भी दूर हो जाते हैं।

तेरहवीं श्वांस क्रिया-

पूर्ववत् पेट के बल लेट जाइये। तलवे ऊपर की ओर रहें। हाथ अगल-बगल में इस प्रकार फैले हों कि हथेलियों का पृष्ठभाग फर्श पर जमा रहे। सिर का झुकाव कुछ पीछे की ओर हो, ठुड्डी फर्श पर अच्छी तरह टिकी रहे। नाक और मुँह भी जमीन पर टिकाया जा सकता है।

अब धीरे-धीरे साँस लेते हुए सीने तथा हाथों को भूमि से सटाये रखकर कमर सहित टांगों को ऊपर की ओर उठाइये। यह उठान तीस या साठ अंश के कोण जितनी होनी चाहिए। जितनी देर आसानी के साथ साँस रोक सकते हैं, उतने समय तक रोके रहिये और कटि सहित पैरों को ऊपर उठाये रहिये। फिर धीरे-धीरे साँस बाहर निकालते हुए टाँगों को नीचे ले आइये।

यह श्वांस योग बाहरवें श्वांस योग का विलोम है। उ
सांस रोककर सिर और सीना उठाया जाता है, इसमें क
और टाँगे। इसे भी तीन से सात बार तक किया जा सकता
इससे बस्ति प्रदेश की पेशियाँ सुदृढ़ होती हैं। उदर सम्ब
विकारों में यह बहुत लाभदायक है। यकृत की शिथिलता
दूर करता है। इसके द्वारा कटिप्रदेश के विकार नष्ट हो ज
हैं।

चौदहवीं श्वांस क्रिया-

सर्व प्रथम पीठ के बल फर्श पर लेट जाइये। आँखें ब
कर लीजिये। पैरों को परस्पर सटा दीजिये। हाथों को
अगल-बगल शरीर से सटा कर रखिये। सारा बदन ढीला
दीजिये। सब ओर से ध्यान हटाकर श्वांस-प्रश्वांस को निय
बनाइये, श्वांस धीरे-धीरे बिना आवाज करते हुए लीजि
निःश्वांस भी उसी ढंग से छोड़िये। श्वांस लेते और छो
समय नासा, फेफड़ों आदि पर कोई जोर दबाव या तनाव
आने दीजिए। श्वांस-प्रश्वास समान आकार के हों इसका ध्य
रखिये। पूर्णता से श्वासं अन्दर जाये और पूर्णता से बा
आये। श्वांस एक ताल में हो। उसमें तालबद्धता और दीर्घ
लाने पर ध्यान दीजिए। श्वांस और निःश्वास का परिणाम
हो, जितना लम्बा (दीर्घ) निःश्वांस रहे। इसका अभ्यास सा
के लिए किसी छोटे से मात्र का सहारा लिया जा सकता
आगे चलकर मन की सभी प्रकार की क्रियाओं को बन्द क
होगा। श्वांस-प्रश्वांस की ओर से ध्यान हटाकर अपने मन
उधेड़बुन को बन्द कर दीजिए।

इस यौगिक-क्रिया को दो से तीन मिनट तक करना चाहिए। इस योग के करने से अंग-प्रत्यंग की थकान दूर होती है। शरीर सुख-अनुभव करता है मन को शान्ति मिलती है। श्वास-योग नाड़ी संस्थान पर शासक प्रभाव डालता है। स्नायु दौर्बल्य दूर होता है। मानसिक शक्ति बढ़ती है।

हमने ऊपर देखा कि ये श्वांस-योग कितने सरल हैं, फिर भी कितने उपयोगी हैं। इन्हें करने के लिए अधिक समय भी नहीं चाहिए। तीस से चालीस मिनट के अन्दर सभी योगों को किया जा सकता है। जो लोग समयाभाव या अन्य किसी कारण से सभी श्वास-योग प्रतिदिन नहीं कर सकते हों, वे अपनी सुविधा के अनुसार कुछ योगों को छोड़ भी सकते हैं। परन्तु पूर्ण-आरोग्य-लाभ के इच्छुकों को इनकी उपेक्षा कदापि नहीं करनी चाहिए। योगीजन भी इसका अप्रसाद भाव से अभ्यास करते हैं। हम संसारी लोगों के लिए तो ये अनुपम हैं। जितने ही सरल हैं, उतने ही अधिक लाभप्रद भी हैं।

प्राणायाम से स्वास्थ्य संरक्षण आयु वृद्धि और स्फूर्ति प्राणायाम के अपूर्व प्रयोग

स्वास्थ्य संरक्षण

स्वास्थ्य का संरक्षण शरीर के पाँच प्रमुख अवयवों (पाकाशय फेफड़े, हृदय, ग्रन्थि समूह व मस्तिष्क) के सुव्यवस्थित संचालन पर निर्भर करता है। इनमें से एक भी अपने सहयोग का हाथ खींच ले तो शरीर अस्वस्थ कहलाता है। और विभिन्न प्रकार के रोग घेर लेते हैं, प्राणायाम इन सभी अवयवों की गति विधि को प्रभावित करके इन्हें स्वस्थ रखने की **क्षमता रखता है** इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

१. पाकाशय:-

जो कुछ हम खाते हैं, वह जब भली प्रकार से पच जाता है तो उसका रस बनता है। रस ही रक्त के रूप में परिवर्तित होता है, पाचन क्रिया के सम्बन्ध में गीता (१५।१४) में भगवान ने स्वयं कहा है:—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:।
प्राणापानसमायुक्त पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

"मैं वैश्वानराग्नि के साथ प्राणियों के शरीर में निवास करता हूँ और प्राण व अपान के सहयोग से भक्ष्य, चौष्य, लेह्य

और पेय) चार प्रकार के अन्न को पाचन से सम्पन्न करता हूँ।

नियमित व विधि विधान से किये गये प्राणायाम से पाकाशय की माँसपेशियों का सुव्यवस्थित संचालन होने लगता है। परिणाम स्वरूप उनमें शक्ति व दृढ़ता बनी रहती है, आँतों व गुर्दों के मल-मूत्र की विसर्जन क्रिया स्वाभाविक ढंग से चलती रहती है। ऐसी स्थिति में अजीर्ण, मन्दाग्नि व कब्ज आदि होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

''प्लाविनी-कुम्भक'' प्राणायाम से पाकाशय की माँसपेशियाँ अपना कार्य ढंग से करती रहती हैं। इससे जठराग्नि उद्दीप्त होती है और कब्ज से निवृत्ति होती है। इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से प्राण की गति अव्यवस्थित नहीं हो पाती। इसकी विधि ''प्राणायाम से रोग निवारण'' प्रकरण में कब्ज निवृत्ति शीर्षक में देखें।

पाचन शक्ति बढ़ाने के लिए निम्न प्राणायामों से भी लाभ उठाया जा सकता है।

१. दीर्घ-श्वांस प्रश्वांस प्राणायाम-

समकार्य ग्रीवा होकर बैठे, हाथों की हथेलियाँ घुटनों पर हों किसी भी नासिका को किसी अँगुली से बन्द नहीं करना है। दोनों नासिकाओं से तीव्र गति से लम्बे-लम्बे श्वांस भीतर खींचे अर्थात् पूरक करें। खींचे हुए श्वांस को भीतर रोकना नहीं है। खींचने के तुरन्त बाद उसे वेग से ही बाहर निकालना है, रेचक करना है इस पूरक-रेचक को बल से शीघ्रतापूर्वक करना है। १ से आरम्भ करें और धीरे-धीरे उसे बढ़ाते रहें। आशातीत लाभ होगा।

२. अग्नि प्रसारण–प्राणायाम-

इससे अग्नि प्रदीप्त होती है, मन्दाग्नि से निवृत्ति होती है और पाचन शक्ति बढ़ती है।

सिद्धासन में हथेलियों को घुटनों पर रखकर बैठें। दीर्घ-श्वांस प्रश्वांस-प्राणायाम में पहले वेगपूर्वक पूरक किया जाता है फिर बिना कुम्भक के किए रेचक किया जाता है। इस क्रिया में पहले पूरक न करके पहले रेचक किया जाता है, फिर पूरक पेट को यथाशक्ति अन्दर की ओर करते हुए प्राण वायु को नाभि से लाते हुए वेग पूरक श्वांस बाहर निकालें और शीघ्रता से भीतर खींचें। इस रेचक पूरक क्रिया से अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाएँ। ५० तक नित्य प्रति करने से पूरा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त दोनों विधियों में से किसी एक विधि को ही अपनाना चाहिए।

३. फेफड़े

वक्षःस्थल के दोनों ओर फेफड़ें होते हैं। स्वास्थ्य की स्थिरता में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि यदि इन्हें किसी भी विधि से भूमि पर फैलाया जा सके तो इन्हें कम से कम दो बीघा भूमि चाहिए। तभी तो कहा जाता है कि फेफड़ों में १८ करोड़ कोठरियाँ होती हैं। यह कोठरियाँ वायु में से आक्सीजन को ग्रहण करके रक्त शुद्धि के कार्य में संलग्न रहती हैं। परन्तु साधारणतः मनुष्य इन सभी कोठरियों का उपयोग नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप यह

अविकसित पड़ी रहती हैं और रक्त-शुद्धि व दूषित तत्वों के विसर्जन का कार्य सीधे प्राकृतिक रूप से नहीं हो पाता। प्राणायाम से फेफड़ों की सभी कोठरियाँ सक्रिय हो उठती हैं, वे वायु में से आक्सीजन तत्व को स्वाभाविक रूप से ग्रहण करने लगती हैं। इस क्रिया से ही फेफड़ें व शरीर स्वस्थ रहते हैं।

फेफड़ों की गतिविधियों को सक्रिय बनाये रखने के लिए "कपाल भांति प्राणायाम" का अभ्यास करना चाहिए इसका विवरण "प्राणायाम से रोग निवारण" प्रकरण में 'कफ दोष निवारण के लिए' शीर्षक में किया गया है।

रक्त शुद्धि क्रिया

मानव शरीर में स्नायु मण्डल और प्रवाहिनी ग्रन्थियों का महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु उसकी सुव्यवस्थित गतिविधियाँ रक्त संचालन पर निर्भर करती हैं। रक्त संचालन तभी ठीक रहेगा जब स्वास क्रिया और पाचन क्रिया प्राकृतिक रूप में कार्यरत हों। शरीर के प्रत्येक भाग में शुद्ध रक्त पहुँचाने के लिए हृदय, नसों नाड़ियों और शिराओं की व्यवस्था की गई है। यदि शरीर में शुद्ध रक्त की कमी है तो स्नायु मण्डल व रस प्रवाहिनी ग्रन्थियां कमजोर पड़ जायेंगी, उनका कार्य अव्यवस्थित हो जायगा और शरीर शक्तिहीन हो जायेगा।

रक्त संचालन क्रिया स्वाभाविक होने पर भी यदि रक्त अशुद्ध हो तो रवत संचालन के सहायक यन्त्रों का विशेष अर्थ नहीं रह जाता क्योंकि अच्छा स्वास्थ्य शुद्ध रक्त पर निर्भर करता है और शुद्ध रवत स्वास क्रिया व पाचन क्रिया पर आधारित है।

रक्त का शुद्ध होना इस बात पर निर्भर करता है कि हमें आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो रही है। रक्त को आक्सीजन मिलने का प्रमुख साधन श्वांस क्रिया है। रक्त में उतनी ही आक्सीजन प्रवाहित हो सकेगी जितनी कि श्वांस क्रिया उसे ग्रहण कर सकेगी। यदि श्वांस क्रिया का संचालन भली प्रकार नहीं हो पा रहा हो तो रक्त में आक्सीजन की मात्रा कम हो जायगी और शरीर के समस्त-अंग अशुद्ध रक्त ग्रहण करने पर बाध्य होंगे। परिणामस्वरूप वह अस्वस्थ व रोगी हो जायेंगे। उत्तम स्वास्थ्य शुद्ध रक्त पर निर्भर करता है तो शुद्ध रक्त व्यवस्थित श्वांस क्रिया के संचालन पर आधारित है। श्वांस क्रिया को व्यवस्थित करने की वैज्ञानिक प्रणाली प्राणायाम है।

प्राणायाम किस प्रकार से श्वांस क्रिया की गतिविधियों को संचालित करके रक्त शुद्धि करता है इस पर भी विचार करना आवश्यक है। फेफड़ों में प्राणवायु प्रसारण की व्यवस्था इस प्रकार है—

फेफड़ों में श्वांस नलिकाओं की संख्या लगभग साठ करोड़ मानी गई। वह वायुकोष्ठों के बिछे विस्तृत जाल तक पहुँचने का काम करती है। वायुकोष्ठों का काम यह है कि आक्सीजन को सुरक्षित रखें और कार्बन-डायाक्साइड को बाहर फेंकें। इस तरह से फेफड़े मल निवृत्ति का कार्य करते हैं। यह कार्य वायु के सहयोग से सम्पन्न हो पाता है।

मशीन किसी प्रकार की हो जब वह क्रियाशील रहती है तो उसमें मैल एकत्रित होता रहता है। मानव शरीर में भी विभिन्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण यन्त्र कार्यरत रहते हैं। विभिन्न क्रियाओं से

इनमें भी मल उत्पन्न होता रहता है। इसकी शुद्धि की विधि व्यवस्था इस प्रकार से है कि निरन्तर प्रवाहित होने वाले रक्त मल के अधिकांश भाग को अपने हाथ लेकर हृदय के दांये कोष्ठ में प्रविष्ट होता है। दूषित रक्त की शुद्धि के लिए फेफड़ों में आना पड़ता है। फेफड़ों में श्वांस क्रिया द्वारा जो आक्सीजन आती रहती है, वह रक्त के इस दूषित अंग को ग्रहण करके शुद्ध कर देती है और कार्बन-डायाक्साइड के रूप में परिवर्तित वायु को बाहर फेंक दिया जाता है, फेफड़ों की कार्य विधि से शुद्ध हुआ रक्त पुनः हाथ की बाँये कोष्ठक से प्रविष्ट होता है। इस तरह से रक्त शुद्धि की क्रिया निरन्तर संचालित होती रहती है। यह क्रिया भली प्रकार से तभी चलती रह सकती है जब शुद्ध वायु पर्याप्त मात्रा में हमें प्राप्त होती रहे। साधारणतया जितनी वायु हमें प्राप्त होती है, वह अपर्याप्त रहती है। परिणामतः फेफड़ों की प्रत्येक कोठरी में वह नहीं पहुँच पाती। वह निष्क्रिय पड़ी रहती है और निर्मल होती रहती हैं जिससे बाह्य वातावरण के छोटे-छोटे आघातों को भी सहन करने की क्षमता नहीं रहती।

सार यह है कि स्वास्थ्य की स्थिरता शुद्ध रक्त पर निर्भर करती है पहले और बाद में रक्त शुद्धि की क्रिया फेफड़ों में आई, वायु पर आधारित है। फेफड़ों की प्रत्येक कोठरी क्रियाशील हो तभी रक्त शुद्धि की क्रिया सुव्यवस्थित ढंग से चलती रहती है। इस उद्देश्य की पूर्ति केवल प्राणायाम के अभ्यास द्वारा सम्भव हो सकती है।

प्राणायाम की पूरक, कुम्भक, रेचक तीन क्रियाओं का

प्रभाव इस प्रकार से होता है–

पूरक क्रिया द्वारा शुद्ध वायु को फेफड़ों में ग्रहण किया जाता है। कुम्भक में जब ग्रहण की हुई वायु को रोका जाता है तो वह फेफड़ों की समस्त कोठरियों में फँस जाती है। इससे फेफड़े अधिक क्रियाशील व सशक्त बनते रहते है। जिससे अधिक से अधिक आक्सीजन को ग्रहण करके रक्त को शुद्ध करने और कार्बन-डायआक्साइड को बाहर फेंकने की क्षमता बढ़ती रहती है। रेचक क्रिया से ग्रहण की गई वायु को बाहर निकाला जाता है। इस क्रिया से उन्हें विश्राम मिलने से उनमें असाधारण स्फूर्ति उत्पन्न होती है। इस तरह से प्राणायाम रक्त शुद्धि का एक श्रेष्ठ साधन सिद्ध होता है।

रक्त शुद्धि व रक्त वाहिनी नाड़ियों को पुष्ट व शुद्ध करने के लिये मुख प्रसारण पूरक-कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए। विधि इस प्रकार है–

सुखासन से बैठें। दायें नासिका को बन्द करके बायें नासिका से श्वांस-प्रश्वांस लेते हुए एक लम्बा पूरक इस प्रकार करें कि फिर शरीर के किसी स्थान में भी वायु भरने की कमी न रह जाये। पूरक के बाद कुम्भक करना चाहिए। गले को इस प्रकार सिकोड़ लेना चाहिए कि अन्दर की वायु का बाहर निकलना बिलकुल सम्भव न हो। यहाँ तक कि मुख के खोलने पर भी श्वांस रुका रहे। कुम्भक को यथा शक्ति ही करना चाहिए। कुछ असुविधा अनुभव हो तो दाँये नासिका से प्रश्वांस धीरे-धीरे निकाल दें। बार-बार करने से इसमें दृढ़ता आती है।

३. हृदय

पाइपों से नगर की विभिन्न दिशाओं में जल वितरण व्यवस्था का निरीक्षण करने से हृदय यन्त्र की कार्य पद्धति को सुविधा से समझा जा सकता है। हृदय कार्य है–रगों व धमनियों द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग को रक्त पहुँचाना। रक्त से ही उस भाग का पोषण बना रहता है। जब हृदय गति रुकती है तो रक्त संचार भी बन्द हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप प्राण शरीर को छोड़ देते हैं। स्वास्थ्य की स्थिरता रक्त के सुचारु रूप से चलते रहने पर निर्भर रहती है। हृदय गति स्वाभाविक रूप से जब तक चलती रहती है तब तक रक्त का प्रवाह भी भली प्रकार से संचालित होता रहता है।

"वक्षस्थल-रेचक-प्राणायाम" से हृदय को बल मिलता है। इसकी विधि "प्राणायाम से रोग-निवारण" प्रकरण में 'हृदय की धड़कन शीर्षक' में देखें।

४. ग्रन्थि समूह

शरीर में विद्यमान विभिन्न गुत्थियाँ किन्ही विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बताई गई हैं। उनका वास्तविक कार्य तो यह है कि उनसे एक विशिष्ट प्रकार का रासायनिक द्रव प्रवाहित होता रहता है जिनसे शरीर में स्फूर्ति व क्रियाशीलता बनी रहती है। जिगर को सबसे बड़ी ग्रन्थि माना गया है। इससे प्रवाहित होने वाला द्रव पाचन क्रिया में सहयोग देता है।

"मध्य रेचक प्राणायाम" से जिगर की सक्रियता बनी रहती है इसकी विधि इस प्रकार है–

मस्तिष्क आसन से रीढ़ की हड्डी को सीधा करके बैठे। इससे पूरक की बजाय रेचक क्रिया करनी होती है। सर्वप्रथम पेट की वायु को बाहर निकालना होता है। फिर उड्डियान बन्ध लगाकर आँतों को बेलन के आकार की तरह उठाकर स्थित करना पड़ता है। वायु रेचन के बाद बाह्य कुम्भक करना चाहिए अर्थात् पेट की समस्त वायु को बाहर निकाल कर उसे वहीं बाहर रोक दें। यथाशक्ति रोककर छोड़ना आरम्भ करें। यह एक प्राणायाम हुआ। सुविधा से इसका अभ्यास बढ़ायें। इस क्रिया से तिल्ली व जिगर दोनों को शक्ति प्राप्त होती है।

५. मस्तिष्क

शरीर का सबसे अधिक चमत्कार पूर्ण यन्त्र यही है। इस अरब न्यूरोन्स से यह जितना जटिल हो गया है उतना ही यह रहस्य-पूर्ण भी है। प्रमुख रूप से इसके तीन कार्य हैं–(१) ज्ञानात्मक, (२) क्रियात्मक (३) संयोजनात्मक इन तीन क्रियाओं से निम्न तीन परिणाम उपस्थित किये जा सकते हैं–

१–साधक किसी भी स्थान पर बैठा हुआ हो, वह ब्रह्माण्ड की छोटी से छोटी वस्तु की कोई भी जानकारी प्राप्त कर सकता है।

२–किसी भी स्थान से किसी को भी कहीं भी इच्छित सन्देश भेजे जा सकते हैं कहीं से भी अत्यन्त भारी वस्तुओं को सुविधा से लाया जा सकता है। किसी को मूर्छित अथवा मारने की क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

३–संसार की किसी भी वस्तु पर स्वामित्व किया जा

सकता है, विश्व के किसी भी प्राणी को वश में किया जा सकता है, अष्ट सिद्धियाँ व नवसिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं मस्तिष्क के यह चमत्कार औषधियों द्वारा विकसित मानसिक एकाग्रता व ध्यान के सत्परिणाम हैं।

डा० जोर्ज डैलगाडो ने मस्तिष्क के नियन्त्रण के सम्बन्ध में अनेकों प्रयोग किये हैं। उन्होंने लिखा है कि मस्तिष्क में दस अरब न्यूरोन्स का जो जाल बिछा हुआ है, उनके नियन्त्रण से बिना तार के सन्देश व प्रेरणायें भेजी जा सकती हैं, किसी भी मन की बात को जाना जा सकता है, कामना व भूख-प्यास पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। न्यूरोन्स का अभिप्राय उन सूक्ष्म कोषों से है जो शरीर के हर अंग को सन्देश भेजते हैं और वहाँ के सन्देशों को प्राप्त भी करते हैं। इन कोषों में अद्‌भुत सक्रियता है। ऐसा लगता है प्रत्येक न्यूरोन एक नक्षत्रों का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह से तो मस्तिष्क को ग्रह-नक्षत्रों का चमकता हुआ आकाश की संज्ञा दे सकते हैं।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक साधारण व्यक्ति के मस्तिष्क में लगभग २० बाट विद्युत शक्ति हर समय काम करती रहती है। यदि काई ऐसी विधि अविष्कृत की जा सके जिससे इन न्यूरोन्स को जाग्रत किया जाना सम्भव हो तो दस अरब न्यूरोन्स को दस अरब डायनोमों में परिवर्तित किया जा सकता है। पूर्ण विकसित मस्तिष्क का सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है। मस्तिष्क की इन चमत्कारी क्षमताओं को देखते हुए ही शास्त्र ने इसे देव भूमि कहा है।

मस्तिष्क के दो भाग हैं। १–वृहत् मस्तिष्क २–लघु मस्तिष्क।

शरीर के समस्त भागों से सभी नस-नाड़ियों आ-आ कर वृहत् मस्तिष्क में एकत्रित होती हैं। यह शरीर का नियन्त्रण केन्द्र है लघु मस्तिष्क में स्मृति शक्ति का केन्द्र माना जाता है। यही व स्थान है जहाँ से अचेतन कार्यों के लिए विद्युत् प्रवाह संचालि होता है।

मस्तिष्क ही मानवता का वास्तविक जीवन है। यदि रो अविकसित अथवा सुप्तावस्था में रहता है तो यह शरीर व्य सा भार रूप ही लगता है। पागल, बेवकूफ, अनपढ़ पिछ हुआ—सब इन्हीं की संज्ञायें हैं। इनके विपरीत विकसित मस्तिष चमत्कारी वैज्ञानिक प्रयोगों में सफल होकर चन्द्रमा तक क असम्भव यात्राओं को भी सम्भव बना सकता है, विश्व की स जटिल समस्याओं का समाधान कर सकता है, भौतिक आध्यात्मिक हर प्रकार से, पूर्णरूप से सुखी व आनन्दित ह सकता है। मस्तिष्क की क्रियाशीलता के परिणामों का वर्ण करना असम्भव है।

प्राणायाम द्वारा मस्तिष्क सबल, जाग्रत, विकसित, क्रियाशील हो सकता है। मुख-प्रसारण—पूरक—कुम्भक प्राणायाम इसके लिये विशेष प्रकार से उपयुक्त है। इसका विवरण इसी लेख में फेफड़ों के प्रकार में 'रक्त शुद्धि क्रिया शीर्षक' में दिया जा चुका है।

स्वास्थ्य संरक्षण में शरीर के प्रमुख अवयवों—पाकाशय, फेफड़े, हृदय, जिगर व मस्तिष्क का सुव्यवस्थित संचालन आवश्यक है। यह क्रिया प्राणायाम द्वारा भली प्रकार सम्पादित हो सकती है। इसीलिए प्राणायाम के नित्य अभ्यास से मनुष्य

पूर्ण स्वस्थ रह सकता है और उस पर किसी भी रोग के आक्रमण की सम्भावना नहीं रहती।

दीर्घायु प्राप्ति-

योग के प्रसिद्ध ग्रन्थ गोरक्ष-पद्धति में प्राणायाम से दीर्घायु प्राप्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया–

चले वाते चलो विन्दुनिश्चले निश्चलो भवेत्।
योगी स्थाणु त्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।।

जब प्राण वायु का निःश्वांसोच्छ्वास चलता रहता है तो बिन्दु भी अस्थिर व चलायमान रहता है। इसके विपरीत जब प्राणवायु की गतिविधियाँ बन्द होती हैं तो बिन्दु भी स्थिर स्थिति में आ जाता है। प्राणायाम क्रिया से जब प्राणवायु को स्थिर करने का प्रयत्न किया जाता है तो योगी स्वाणुभाव को प्राप्त होता है और दीर्घायु को प्राप्त होता है। अतः प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

मनुस्मृति (४।६४) में कहा है–

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।

"लम्बी सन्ध्या करने से जिसमें प्राणायाम आदि अंग भी सम्मिलित रहते हैं, ऋषियों ने दीर्घायु प्राप्त की थी।"

प्राणायाम से दीर्घायु प्राप्ति का रहस्य यह है कि कुम्भकों से प्राण की गति का निरोध किया जाता है, इसी से साधक की आयु में वृद्धि होती है। यह निश्चित व अनुभव सिद्ध सिद्धान्त है। इसमें सन्देह का कोई स्थान नहीं है। गंगोत्री आदि पर्वतीय स्थान व गुफाओं में आज भी ऐसे योगी निवास करते हैं जिनकी आयु २००–३०० वर्ष बताई जाती है। यह प्राणायाम के अभ्यास

का ही प्रतिफल है। ४०० वर्षों की आयु के योगियों का व
प्राप्त होता हैं योगीराज अरविन्द के गुरु की आयु ४०० वर्ष
अधिक बताई जाती है। इसका वर्णन कलकत्ता कारपोरेशन
गजट दिनांक १६–१२–५० में छपा था। जब श्री अरविन्द उन
दर्शन करने गये थे तो उनके नेत्र तारों की तरह चमक रहे थे
स्वामी सत्यमूर्ति जिनकी आयु ६६ वर्ष है प्राणायाम योग
दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं। जिनके योगी गुरु स्वामी सर्वानन्द
आयु ३५० वर्ष है जिनका निवास गंगोत्री की ओर ही है
मालवीय जी के गुरुजी की भी इतनी आयु बतायी जाती थी
यह निश्चय ही प्राणायाम का चमत्कार है।

यह श्वांस साधना केवल योगियों के लिए ही सुरक्षित न
है। वरन् इसे हर कोई कर सकता है। इसमें अभ्यास की
विशेषता है। आप स्वयं इसका अभ्यास करके देख लीजिये
साधना स्थल के सामने घड़ी रखकर प्राणायाम का अभ्या
कीजिये। आरम्भ प्राणावरोध कुछ क्षणों तक ही सीमित रहे
धीरे-धीरे इसे बढ़ाते रहें। एक मास में अभ्यास का परिणा
स्वयं ही परिलक्षित होने लगेगा। लम्बे अभ्यास से प्राणावरोध
सीमा मिनटों और घण्टों तक बढ़ाई जा सकती है। योगी
वर्षों तक श्वासोवरोध की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। इ
श्वासावरोध के अभ्यास में ही लम्बी आयु का रहस्य निहित है
कोई भी व्यक्ति अनुभवी गुरु के निर्देशन में इसका अभ्या
करके दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

दीर्घायु प्राप्ति के लिए निम्न प्राणायाम लाभदायक सि
हुए हैं–

१. केवली प्राणायाम

आयु वृद्धि के लिए केवली-प्राणायाम को उत्तम माना गया है। हठयोग प्रदीपिका २।७३ में केवली कुम्भक और स्तम्भ वृद्धि प्राणायाम में एकता सिद्ध की गई है और २।७४ में इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि बिना प्रश्वांस बाहर निकाले व श्वांस अन्दर भरे, रोकने की क्रिया गें सफलता प्राप्त हो जाने पर ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यही केवली प्राणायाम की विधि है। इसमें रेचक-पूरक करने की आवश्यकता नहीं है। प्राणों का प्रवाह जहाँ चल रहा है उसे वहीं रोक लेना ही केवली प्राणायाम कहलाता है। इसे आयु बढ़ाने में सहायक माना गया है।

२. सूक्ष्म श्वांस-प्रश्वांस प्राणायाम

इसके अभ्यास के साथ आहार-विहार में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। आहार स्वल्प होना आवश्यक है। विधि इस प्रकार है–

सुखासन से बैठें। अपने सामने रखी तिपाई पर थोड़ी सी रुई रखें जो नासिका के बिल्‌कुल सामने हो। आरम्भ में नासिका और रुई की दूरी एक फुट होनी चाहिए। अब प्राणवायु को इस गति से बाहर निकालें रेचक करें कि रुई हिलने लगे। एक सप्ताह तक इस रेचक क्रिया का अभ्यास करें। इसके बाद रुई की दूरी को एक फुट के बजाये १० इन्च कर दें। प्रश्वांस की गति इस प्रकार से रहे कि रुई हिलती रहे, उड़े नहीं। इस अभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। रुई की दूरी को कम

करते चलना चाहिए। जब तक रुई नासिका के पास रखक स्थिर न हो जाये, यह अभ्यास चलता रहना चाहिए। रु नासिका से लगी रहे परन्तु रेचक क्रिया से भी वह हिले नहीं यही इस प्राणायाम की सफल अवस्था है।

दोनों हाथों की हथेलियों को घुटने पर रखें। दोनों नासिका से तीव्र गति से शब्द करते हुए श्वांस भीतर खीचें। बिना भीत रोके उसे उसी गति से बाहर निकालते रहें। यही क्रम बार-बा चलता रहे और पूरक-रेचक की संख्या बढ़ती रहे।

इनमें से किसी प्राणायाम का अभ्यास करते रहने प अभीष्ट लाभ की सिद्धि होती है।

स्फूर्ति व क्रियाशीलता के लिए-

शरीर में आलस्य व अकर्मण्यता को दूर करके स्फूर्ति क्रियाशीलता लाने के लिए सहित कुम्भक नामक प्राणाया लाभदायक सिद्ध हुआ है। घेरण्ड संहिता (५।४६) में इसके द प्रकार का वर्णन आता है।

सहितो द्विविधः प्रोक्तः प्राणायाम समाचरेत्।
सगमो बीजमुच्चार्य, निगर्भो बीज वर्जितः।।

सहित कुम्भक दो प्रकार का होता है—सगर्भ और निगर्भ सगर्भ वह कहलाता है जिसमें पूरक, कुम्भक व रेचक के सा निश्चित संख्या में ओंकार का मानसिक जप किया जाता है निगर्भ में मन्त्र जप का होना आवश्यक नहीं है।

यह प्राणायाम उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार का माना गया है। उत्तम प्रकार की विधि इस प्रकार है—

दायें अँगूठे से दायें नासिका को बन्द करें और बा

नासिका से श्वांस भीतर खींचना आरम्भ करें। श्वांस खींचने की क्रिया के साथ ३२ बार ओंकार का मानसिक जप होना चाहिए। अब श्वांस खींचना बन्द कर दें, इसे वहीं रोक दें। इसे योग की भाषा में कुम्भक कहते हैं। कुम्भक कितनी देर करें जिसमें ओंकार का १२८ बार मानसिक जप हो जाये। तत्पश्चात् दांये हाथ की ही अनामिका व मध्यमा से वांये नासिका को बन्द करके दायें नासिका से श्वांस छोड़ना आरम्भ करें। इस रेचक क्रिया में ओंकार का ६४ बार मानसिक जप होना चाहिए। इसी तरह से बाँयें नासिका को अँगूठे से दबाकर पहले दायें नासिका से पूरक करें और फिर बायें नासिका से पूरक करें और फिर दायें को अनामिका व मध्यमा से दबाकर बायें से रेचक करें। ओंकार जप की संख्या इतनी ही रहे।

इस प्राणायाम की सिद्धि शीघ्र न हो तो निराश नहीं होना चाहिये क्योंकि सफलता अभ्यास पर निर्भर करती है। इसे निरन्तर करते रहने से यह धीरे-धीरे दृढ़ होता रहता है।

मध्यम प्रकार के सहित कुम्भक की विधि उपरोक्त प्रकार से ही है। अन्तर केवल ओंकार जप का है। इसके पूरक में १६ बार, कुम्भक में ६४ बार और रेचक में ३२ बार ओंकार का जप होना चाहिए। कनिष्ट सहित कुम्भक में भी केवल जप संख्या का अन्तर है। इसके पूरक में ८ बार, कुम्भक में ३२ बार और रेचक में १६ बार ओंकार का मानसिक जप करें।

आरम्भ में साधक को कनिष्ट सहित कुम्भक ही करना चाहिये। इसमें दृढ़ता प्राप्त होने पर मध्यम में प्रविष्ट हों मध्यम का पूरा अभ्यास होने पर ही उत्तम सहित कुम्भक करना

चाहिये। अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ायें इसमें जल्दी न करें।

इस प्राणायाम के दीर्घ कालीन अभ्यास के परिणामस्वरू ऐसा अनुभव होता है कि शरीर में नवीन शक्तियों का प्रादुर्भा हुआ है और वह निरन्तर कुछ करना चाहती रहती है। अत शरीर परिश्रम व तप चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक साध को उसमें आनन्द आता है। वह काम करने में थकावट अनुभ नहीं करता। क्रियाशीलता उसके जीवन का एक अङ्ग ब जाती है। यही सफल जीवन का रहस्य है। और सहित कुम्भ उसमें सहायक होता है।

प्राणायाम से रोग निवारण

प्राण चिकित्सा की श्रेष्ठता

जिस प्रकार एलोपैथी सभी प्रकार की बीमारियों का कार 'जीवाणु' को मानता है, प्राकृतिक चिकित्सा ''विजातीय तत्वों को और आयुर्वेदिक प्रणाली 'आम रस (आहार से बनने वाल कच्चा रस) को रोगों का मूल हेतु बताती है, उसी प्रकार प्रा चिकित्सा के प्रयोक्ता सभी शारीरिक रोगों और मानसिक दोष का निदान 'सबल' 'प्राण' की कमी मानकर करते हैं। उनक विश्वास है, जिस व्यक्ति में सबल प्राण की मात्रा कम हो जात है, उसके शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढीले पड़ जाते हैं। वे अपन कार्य यथेष्ट रीति से नहीं कर पाते। यकृत आँते, गुर्दे हृदय मस्तिष्क और नलिका विहीन ग्रन्थियों में सबल प्राण की कम से शिथिलता आती है, जिससे आहार ठीक तरह से नह पचता। पेट खराब रहता है। ठीक तरह से भोजन के पाचन

होने से आम रस (कच्चा आहार रस) अधिक मात्रा में बनने लगता है और अङ्ग-प्रत्यङ्ग को दूषित विकृत करता जाता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शिथिलता, रक्त संचार को मन्दतर कर देती, जिससे छीजे हुए मृत कोषों का निर्सरण शरीर के बाहर यथायोग्य नहीं हो पाता। रुधिर के माध्यम से शरीर में विजातीय द्रव्य अधिक हो जाते हैं, परिणामतः रोग आ घेरते हैं। इस तरह "आम रस या विजातीय द्रव्य" के मूल में सबल-प्राण की कमी ही निहित है। वही मुख्य हेतु है जीवाणुवादी भी इस तथ्य को स्वीकारते हैं। उनका कहना है कि जीवाणु उन्हीं को रोग-ग्रस्त बनाते हैं जिनकी जीवनी-शक्ति जीवाणुओं को आत्मघात करने में असफल रहती है। जीवाणु और जीवनी-शक्ति की लड़ाई का नाम रोग है। यदि जीवनी शक्ति प्रबल पड़ती है तो रोगी स्वस्थ हो जाता है, निर्बल होने पर वह जीवाणु-कवलित (मृत) हो जाता है। इस प्रकार वे भी जीवनी शक्ति के नाम से प्राण शक्ति को ही आधि-व्याधि का प्रधान कारण मानते हैं।

जब प्राण शक्ति या जीवनी-शक्ति ही सभी प्रकार की बीमारियों का प्रमाणित कारण है, उसकी निर्बलता ही आधि-व्याधि की जननी है तो उसकी सबलता ही रोग निर्मूलन का एक उपाय है, ऐसा कहना सर्वथा युक्तिपूर्ण है प्रश्न उठता है क्या प्राण शक्ति को औषधियों के द्वारा सबल बनाया जा सकता है। रासायनिक दृष्टि से प्राण की व्याख्या करने वाले लोग यदि औषधि को प्राण प्रवर्धक मानते हों, तो आश्चर्य नहीं। उनकी दृष्टि स्थूल है। वे प्राण को पारमाण्विक संरचना (कम्पाउण्ड आफ एटम्स) मानते हैं, किन्तु "प्राण क्या है" प्रकरण में हम

देख चुके हैं कि वह परमाणु का ही मूल है। परमाणु जो उसका स्थूल रूप है। अपितु अव्यक्त रूप में 'चिन्मय' विद्युत है। वह भावात्मक विद्युत है। प्राण वह चिद्स्पन्दन है जिससे परमाणु का उद्भव और संश्लेषण-विश्लेषण होता है। अतः रसायन या औषधि चिकित्सा तो स्थूल चिकित्सा भर है।

औषधि रूप स्थूल चिकित्सा से भाव-रूप वियत् या प्राणशक्ति की अभिवृद्धि नहीं की जा सकती। प्राकृतिक चिकित्सा (जिसमें प्रकृति के मूल उपादानों के सहयोग से प्राणाकर्षण किया जाता है) प्राणायाम और योग चिकित्सा के द्वारा ही प्राण को सबल बनाया जा सकता है। प्राण का विपुल संग्रह करके जीवन को तेजस्वी, ओजस्वी और यशस्वी बनाया जा सकता है। औषधि तो बाहरी उपचार है, प्राणायाम आन्तरिक योग है। मौलिक उपचार है। प्राणायाम और प्राण ये सजातीय सम्बन्ध है। अतः भावना भरित प्राणायाम ही सजातीय कर्षण नियम के अनुसार प्राण प्रवर्धन का सरल, निःशुल्क एवं नैसर्गिक उपाय है।

प्राण बल कोई काल्पनिक ख्याल या मन के लड्डू नहीं है और न स्वप्न की तरह यह कोई मन गढ़न्त है। जिन लोगों ने योगाभ्यास किया है और थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त की है, यह अपने अन्तर्नेत्रों से नाड़ी जाल में बहती हुई प्राण शक्ति को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। सांच को आँच क्या? आप भी ज्योति रूप शक्ति प्रवाह को थोड़े से अभ्यास से ही सहज में अपने ही प्रवह्यान देख सकते हैं। वह हलके गुलाबी रङ्ग के प्रकाशमय विद्युत-स्फुल्लिंगों (चिन्गारियों) या किरणों के रूप में शरीर के

अन्दर और शरीर के आस-पास कुछ दूर तक मनो मुग्धकारी घेरे के रूप में स्पष्ट दिखाई देता है। जो लोग अभ्यासी नही हैं वे भी यदि ध्यान दें, तो उन्हें भी प्राण में चूल्हे से निकली हुई हवा, भाव या काँपती हुई ध्वनि-तरङ्ग (लहर) की तरह अनुभव होगी। नाभि के पास स्थित सूर्य चक्र रूपी सूक्ष्म डिब्बी के अन्दर जार में भरी गैस के समान इसे संग्रह किया जा सकता है और अन्तरावयवों को इस प्रकार संचेतित रक्खा जा सकता है कि वे अन्तरिक्ष-व्यापी महाप्राण के दिव्य प्रवाह से यथापेक्ष (जितना जरूरी हो, उतने) प्राण का स्वाभाविक रूप से लेन-देन करते रहें, जिससे बहते हुए जल के समान हमारा प्राण सदैव-शुद्ध, निर्मल, शीतल और गतिमय बना रहे।

प्राणायाम की विधि-व्यवस्था प्राण के आकर्षण कुदरती बहाब को स्वाभाविक बनाये रखती है, जिससे प्राण का आदान-प्रदान करने वाले आन्तरिक अङ्ग स्वस्थ रहते हैं। वे अपना कार्य अहर्निशि सुचारु रूप से करते रहते हैं। अतः प्राणायाम आरोग्य और बल वृद्धि का बिना पैसे कौड़ी का साधन तो है ही, रोग निवारण और स्वास्थ्य लाभ का अचूक उपाय है। उसका प्रभाव स्थायी होता है। वह औषधियों के समान रोग या रोग के कारण को दबाता नहीं है।

उपनिषद् में ऋषियों ने इस तथ्य की पुष्टि की है। जाबालदर्शनोपनिद् में लिखा है कि प्राणायाम से सभी रोग समूल नष्ट हो जाते हैं और भगन्दर जैसे भयंकर रोग भी दूर हो सकते हैं। योगकुडल्योपनिषद् के अनुसार प्राणायाम से गुल्म, जलोदर, प्लीहा तथा पेट सम्बन्धी अन्य रोग निश्चय

पूर्वक नष्ट हो जाते हैं. चारों प्रकार के बात दोष और कृमिदोष नष्ट हो जाते हैं, मस्तक की उष्णता, गले की कफ धातु सम्बन्धी रोग, पित्त ज्वर, तृषा आदि दूर होते हैं। कुछ प्रयोग नीचे दे रहे हैं–

रोग निवारण उपचार

यदि आपके किसी अङ्ग में दर्द हो रहा हो सूजन हो, हाथ पाँव भीषण शीत के कारण सुन्न हो रहे हों, सिर में असह्य पीड़ा हो अथवा नाक, कान आदि अङ्ग का कोई विशेष रोग हो, तो उसके निवारण के लिए प्राण से पुष्ट रुधिर का उस अवयव की ओर तीव्र गति से संचरण या प्रेषण बड़ा लाभकारी होता है। ऐसा करने से रोग निरोधनी शक्ति प्रबल होती है और रोग बल शनैः-शनैः क्षीण होता जाता है। कभी-कभी तो एक दो बार के अभ्यास से ही पूर्ण लाभ हो जाता है।

अंग विशेष की ओर रुधिर और प्राण का संचार करने के लिये पहले सीधे बैठ जाइये। यदि बैठना सम्भव न हो तो पीठ के बल सीधा लेटने में भी कोई हानि नहीं है। अब सबसे पहले पाँच से दस बार तक इस प्रकार श्वास-निश्वास कीजिये कि श्वास निकालने में जितना समय श्वास को बाहर और अन्दर रोकने में लगाया जावे। मान लीजिए दस बार ॐ कहते हुए श्वास ली है, तो तब तक उसे अन्दर ही रोके रखिये जब तक आप पाँच बार ॐ ॐ कह लें। तत्पश्चात् दस बार ॐ कहते हुए साँस छोड़ना चाहिये और पाँच बार ॐ कहने तक की दूसरी साँस नहीं लेना चाहिये। साँस भरने और साँस छोड़ने

पर अन्दर या बाहर रोकने की मात्रा, करने और छोड़ने की मात्रा की आधी होनी चाहिये।

जब यह क्रिया पाँच दस बार कर चुकें, तब साँस भरते हुए ऐसी भावना करनी चाहिए कि रुधिर संचार के साथ ही मेरा सूर्य चक्र स्थिर प्राण-प्रवाह रोग पीड़ित स्थान की ओर दौड़ रहा है। साँस को अन्दर रोके-रोके फिर भावना द्वारा प्राण को पीड़ित अङ्ग की ओर प्रवाहित होने का मानस चित्र खींचिए। ऐसा तब तक करना चाहिए, जब तक साँस को आसानी से रोक सकते हों। तत्पश्चात् धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालिए और भावना कीजिए कि निःश्वास के साथ सब दोष, विकार और सूजन या दर्द भाप बनकर उड़े जा रहे हैं साँस को बाहर ही रोककर पुनः मन ही मन कहिये कि प्राण शक्ति पाकर मेरा वह अङ्ग स्वस्थ और सबल हो गया है।

इस क्रिया को पन्द्रह मिनट से आधा घण्टा तक करना चाहिये। आप इस अवधि में प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे कि आपकी पीड़ा का परिणाम वेग पूर्वक घट रहा है। इस क्रिया को ६—६ घण्टे के अन्तर से दिन में तीन बार किया जा सकता है। हल्के कष्ट एक दो बार के करने से ही मिट जाते हैं, किन्तु जीर्ण रोग की शान्ति में कुछ दिन या कुछ सप्ताह लग सकते हैं अतः धैर्य पूवक बिना घबड़ाये भाव-रहित हृदय से यह प्राणायाम करना ही चाहिए। अवश्य लाभ होगा।

पीड़ा-शमन के इस उपचार के समय दुःखित अङ्ग को अपने ही हाथों का मृदु स्पर्श देकर प्राण विद्युत के प्रवाह को द्रुत करने में बड़ी मदद मिलती है। ऐसा करने पर भावना

सबल होती है क्योंकि स्पर्श से रक्त और प्राण उस ओर दौड़ते हुए प्रत्यक्ष देखे जाते हैं।

यह ध्यान रहे यदि सिर में उर्ध्वागों में पीड़ा हो, तो प्राण-संसार को नीचे की ओर ही प्रेरित किया जावे। क्योंकि उर्ध्वागों में रक्त दबाव बढ़ने से ही प्रायः पीड़ा होती है। ऐसी दशा में मस्तिष्क की ओर यदि रक्त के बहाव का ध्यान करेंगे, तो मस्तिष्क में रक्त दबाव बढ़ जावेगा। फलतः लाभ होने के स्थान पर हानि होने की सम्भावना है।

पीड़ित प्रदेश पर अँगुलियों को मोड़कर मन ही मन 'निकल जाओ' 'निकल जाओ' 'विकार भाग' 'विकार भाग' ऐसा कहते हुए मार्जन भी किया जा सकता है। यह क्रिया उसी ढंग से करनी चाहिए जिस प्रकार तमाशा दिखाने वाले किसी माध्यम को बेहोश (समोहित) करने के लिए करते हैं। डा० किलनर के ओरो स्कोप नामक यन्त्र के द्वारा यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि अँगुलियों के सिरों में चुम्बकीय किरणें (जिन्हें अध्याय शास्त्र में प्राण कहा जाता है) बराबर निकलती है। अतः मार्जन के द्वारा विद्युत प्रवाह विकृत अङ्ग पर डालने से प्राकृतिक रोग निवारिणी शक्ति को बल मिलता है और रोग के शमन कार्य में त्वरितता आती है।

प्राणायाम के विविध प्रयोगों से अनेकों रोगों को नष्ट किया जा सकता है। रोग निवृत्ति की कुछ विधियाँ यहाँ दे रहे हैं—

कब्ज निवारण के लिए-

कब्ज निवृत्ति के लिए प्लवनी कुम्भक का प्रभाव श्रेष्ठ रहता है। पुराने से पुराने कब्ज में भी आशातीत लाभ होते देखा गया है। विधि इस प्रकार है–

स्थिरासन में बैठें। दोनों नासिकाओं से समान रूप से धीरे-धीरे पेट में इतना श्वास भींतर खींचे कि वह मशक की तरह फूलकर बिल्कुल तन जाये। जब ऐसा अनुभव होने लगे कि पेट वायु से पूरा भर गया है तो श्वास को यथाशक्ति रोकें। फिर दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वांस को बाहर निकालें, यह एक प्राणायाम हुआ। सुविधा से जितनी बार किया जा सके, इसे करना चाहिए।

दक्षिण रेचक प्राणायाम से भी यह कब्ज दूर होता है।

उदर रोगों के विनाश के लिये।

पेट के समस्त दोषों के निवारण के लिए मध्य रेचक-प्राणायाम को श्रेष्ठ माना गया है। विधि इस प्रकार है–

स्वस्तिक आसन से बैठें। उत्कट आसन से भी इसे किया जा सकता है। इसमें श्वांस भरने की बजाय पेट में विद्यमान स्वाभाविक वायु को बाहर निकालना होता है। उस रेचक क्रिया के साथ उड्डियान बन्ध लगाना चाहिये और आंतों को इस तरह से उठाये कि वह बेलन अथवा दन्ड की तरह आकार धारण कर लें। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रहें। उदर के दोनों भागों को दबाते हुए बाह्य कुम्भक करें अर्थात् जहाँ पेट की वायु को बाहर निकाला गया था, उसे वहीं रोक ले। इसे यथाशक्ति करके प्राणवायु को धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए। इसका अभ्यास

शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिए।

इस प्राणायाम से आँते निश्चय रूप से प्रभावित होती हैं अतः उनके विकारों का दूर होना स्वाभाविक है। आँतें पुष्ट होने से कब्ज का निवारण होता है। तिल्ली व जिगर के दोष नष्ट होते हैं।

खट्टे डकारों के लिए-

खट्टे डकारों को दूर करने के लिए चन्द्र–भेदन–प्राणायाम करना चाहिए। बायें नासिका में चन्द्र नाड़ी का स्थान है। इस ओर से पूरक करने से इसका यह नाम पड़ा। विधि इस प्रकार है–

दायें नासिका को दायें हाथ के अँगूठे से बन्द करें। उच्च शब्द करते हुए बायें नासिका से श्वाँस भीतर खींचें। यथाशक्ति उसे रोकें। और फिर दायें नासिका से धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ। सुविधापूर्वक इसका अभ्यास करते रहें।

उदर स्थूल तथा शरीर को पतला करने के लिये-

भस्त्रिका प्राणायाम के विधिवत् अभ्यास से शरीर की स्थूलता कम हो जाती है और पेट पतला हो जाता है, परन्तु इसके अभ्यास में कुछ सावधान रहने की आवश्यकता है। अन्यथा हानि होने की सम्भावना रहती है। जिन साधकों ने असावधानी बरती है, उन्हें थूक में खून आते देखा गया है। दमा और खाँसी की भी शिकायत हो सकती है। साधक को दूध व घी की व्यवस्था करनी चाहिए। यह प्राणायाम अनुभवी गुरु की देख-रेख

में ही करना चाहिए। कमजोर व्यक्ति को इसका अधिक वेग से अभ्यास नहीं करना चाहिये अन्यथा सिर में चक्कर आने की सम्भावना रहती है। इसकी विधि इस प्रकार है–

आसन पर बैठकर बायें हाथ को बायें घुटने पर रखें और दायें हाथ की अनामिका व मध्यमा अँगुलियों से बायें नासिका को बन्द करें कोहनी को सीधा करें और इतना उठा लें कि कन्धे के समान हो जाये। अब दायें नासिका से वेग पूर्वक साँस बाहर फेंकें और भीतर खींचे। इसमें न साँस को रोकना है, न कुछ विराम लेना है, लगातार कम से कम ८–१० बार साँस खीचें और बाहर फैंकें। इसके बाद साँस भीतर खींचकर भीतर रोकें। सुविधा से जितना रोका जा सके, रोकना चाहिए। अब दायें हाथ के अँगूठे से दायें नासिका को बन्द करके बायें नासिका से रोकी हुई सांस बाहर निकाल दें। इसी तरह अनामिका व मध्यमा से दायें नासिका से वेग पूर्वक सांस भीतर खींचना व बाहर फेंकना चाहिए। यह भी कम से कम १० बार होना चाहिए फिर अन्त में साँस भीतर यथाशक्ति रोकें और दायें हाथ के अँगूठे से बायी नासिका को बन्द करके दायें नासिका से साँस निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार से तीन प्राणायाम नित्य करने चाहिये। धीरे-धीरे ही इसे बढ़ाना चाहिए और आहार के सम्बन्ध में विशेष सावधान रहना चाहिये।

अग्नि प्रसारण प्राणायाम, वामरेचक प्राणायाम और कमनीय–कुम्भक प्राणायाम से भी शरीर की स्थूलता कम की जा सकती है।

रक्त चाप (हाइ ब्लडप्रेशर) के शमन के लिए

रक्त चाप के शमन के लिए शीतली-कुम्भक प्राणायाम श्रे माना गया है। कफ प्रकृति वाले व्यक्तियों को इसे नही कर चाहिए इसका अभ्यास गर्मी के मौसम में करना चाहिए। वि इस प्रकार है–

सुखासन पर बैठें ! दोनों हाथों को घुटनों पर रखें। जिह्व को इस तरह मोड़े कि उसके दोनों किनारे उठे हुए से हो योग ग्रन्थों की भाषा में इसे कौए की चोंच की तरह बना दोनों किनारे ऊपर उठने से बीच का स्थान पोली नल आकृति धारण कर लेता है। इसी मार्ग से श्वास को धीरे-ध भीतर खींचना चाहिए। सुविधानुसार पूरी वायु भर कर उ यथाशक्ति भीतर रोकें। अभ्यास काल में यदि घबराहट अनु हो तो दोनों नासिकाओं से श्वास बाहर निकाल देनी चाहि इसी तरह से इसकी पुनरावृत्ति करें। इसका अभ्यास धीरे-ध ही हो पाएगा। यह उत्तम कोटि का प्राणायाम है। घेरण्ड संहि में अनेकों लाभ वर्णन किये हैं जिनमें पित्त विकार, कफ र और अजीर्ण प्रमुख हैं।

हृदय की धड़कन के लिए-

हृदय की बढ़ी हुई धड़कन वक्षस्थल रेचक प्राणायाम कम होती है। इसकी विधि इस प्रकार है–

सुखासन से बैठें। दोनों नासिकाओं से श्वास भीतर खीं फिर उसे धीरे-धीरे बाहर निकालें। श्वास को पूरा बाहर निकल पर उसे वहीं रोक लें। योग की भाषा में इसे बाह्य कुम्भ कहते हैं। अब दोनों हाथों को कन्धों पर इस तरह रखें

कोहनियाँ ऊँची उठी हुई दृष्टिगोचर हों। उसके बाद छाती को थोड़ा-थोड़ा ढीला करने का प्रयत्न करें ताकि वह संकुचित हो जाय और कन्धों को आगे की ओर बढ़ायें। श्वास को सुविधा पूर्वक जितना रोका जा सके, उतना रोकें, फिर धीरे-धीरे छोड़ दें। यह एक वक्षस्थल रेचक प्राणायाम हुआ। अभ्यास बढ़ाकर अधिक बार करने का प्रयत्न करना चाहिये।

कफ दोषों के निवारण के लिए-

फेफड़ों की शुद्धि और कफ दोनों के निवारण के लिए कपाल भाँति प्राणायाम की प्रेरणा योग शास्त्रों में दी गई है। इसकी दो प्रकार की विधियों का वर्णन मिलता है

१. घेरण्ड संहिता (उप० १।५७) विधि इस प्रकार है—

बायें नासिका से धीरे-धीरे श्वांस खींचे और दायें नासिका से उसे धीरे-धीरे निकालें फिर दायें नासिका से श्वांस खींचकर बायें से निकालें।

२. हठयोग प्रदीपिका (२—३५) में इस प्राणायाम की विधि का वर्णन इस प्रकार किया है—

सिद्धासन से बैठे। दोनों नासिकाओं से श्वास छोड़ने और भरने का क्रम इतनी तीव्र गति से चलना चाहिए जिस प्रकार लोहार की धौंकनी चलती है। इसका अभ्यास यथाशक्ति बढ़ाना चाहिए।

इन दोनों विधियों का परिणाम एक-सा ही होता है। कोई-सा किया जा सकता है।

जुकाम के नाश व सुरक्षा के लिए-

जुकाम के लिए अनुलोम-विलोम प्राणायाम करने का वि है। विधि इस प्रकार है–

पद्मासन से बैठें। समकाय दायें नासिका को बन्द क बायें नासिका से तीव्र गति से प्रश्वांस को बाहर निकालें। रे करें, फिर उसी गति से श्वांस को भीतर खींचे अब नासिका को बन्द करके दायें से तीव्र गति से प्रश्वांस बा निकालें और फिर इधर से ही श्वांस भीतर खींचें। इस तरह दायें-बायें बदल कर कम से कम २० प्राणायाम नित्य क चाहिए तभी पूरा लाभ प्राप्त हो सकता है। एकदम २० करने चाहिए। यह अभ्यास धीरे ही बढ़ाना चाहिये।

कण्ठ रोगों को दूर करने के लिए-

कण्ठ की नाड़ियों को शक्तिशाली बनाने व कण्ठ और के रोगों के विनाश के लिये चतुर्मुखी प्राणायाम की प्रेरणा शास्त्रों ने दी हैं। चतुर्मुखी प्राणायाम का अभिप्राय है बायें, नीचे और ऊपर की ओर मुख करके बिना कुम्भक किये पू रेचक, करना। १५ बार तो नित्य इसे करना ही चाहि अभ्यास बढ़ जाने पर इसे और अधिक करना चाहिये। वि इस प्रकार हे–

सुखासन पर बैठें। पहले मुख को बायें कन्धे की मोड़ें। दोनों नासिकाओं से जल्दी-जल्दी ऊँचे-ऊँचे शब्द हुए श्वास खींचें और दौड़ें। श्वास भीतर खींचकर रोके न प्रश्वास छोड़ते समय अभ्यास इस प्रकार से करना चाहिए

अंगूठे से दबाये बिना ही बायें नासिका से प्रश्वास को बाहर निकाला जाय। मुख को दायीं ओर मोड़कर यही क्रम चलना चाहिये। केवल अन्तर यह है कि बिना अँगूठा लगाये प्रश्वांस बायें नासिका से बाहर निकालना चाहिये। इसी तरह से क्रमशः मुख को पृथ्वी और आकाश की ओर करके उच्च शब्द करते हुए पूरक-रेचक करना चाहिये। यह एक प्राणायाम हुआ। यथा शक्ति इसका अभ्यास बढ़ाते रहें।

प्राणायाम के असाधारण प्रयोग

प्राणायाम फेफड़ों का ही व्यायाम नहीं है, इसके द्वारा श्वसन संस्थान ही निरोगी और सबल नहीं बनता प्रत्युत इसके द्वारा अपने मन को भी सरलता से वश में किया जा सकता है। अपनी मानसिक उलझनों को, मानसिक निर्बलताओं को भी सहज में दूर किया जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा संतापकारी दुर्व्यसनों को, बुरी आदतों को, जिन्हें सामान्यता छोड़ना बड़ा दुष्कर प्रतीत होता है, आसानी से अपेक्षाकृत कम समय में दूर किया जा सकता है, सद्‌गुणों की वृद्धि की जा सकती है, आत्मबल बढ़ाया जा सकता है, एकाग्रता को दृढ़ किया जा सकता है।

प्राणायाम की सहायता से अपने में अधिकाधिक शुद्ध प्राण का भंडार इकट्ठा करके उससे दूसरों का बहुविधि उपकार किया जा सकता है। दूसरों के मन में बैठी हुई भ्रान्तियों और दुर्भावनाओं को मिलाया जा सकता है। उसके अन्दर सद्‌भावना और सदाचार की भावनाओं का प्रत्यारोपण किया जा सकता

है। प्राणायाम के द्वारा दूरस्थ व्यक्ति को सन्देश भी भेजे जा सकते हैं। ब्रह्मचर्य-रक्षण का तो यह सर्वोत्तम साधन है।

प्राणायाम के द्वारा अपने बच्चे को, जो दुस्संग, दुरभ्यास या दुसंस्कार के कारण अत्यन्त उच्छृंखल हो गया है, आपका कहना नहीं मानता, माता और छोटे भाई बहिनों को खूब परेशान करता, सिगरेट, बीड़ी आदि दुर्व्यसनों का शिकार हो गया है, अल्पसमय में सुधारा जा सकता है।

प्राणायाम के द्वारा स्त्री अपने पति को सदाचारी और सौम्य प्रकृति वाला बना सकती है। उसी प्रकार पति भी अपनी स्त्री को बिना मारे-पीटे उनके मानसिक संस्थान में अभीष्ट परिवर्तन करके उसे सुशीला और विदुषी बना सकता है। डा० दुर्गाशंकर नागर ने एक स्त्री को प्राणायाम का एक ऐसा ही योग सिखाया था, जिसके द्वारा उसने अपने शराबी, जुआरी, चोर और वैश्यागामी पति को साधु-व्यवहारी और परोपकारी बनाकर अपने गृहस्थ जीवन को आनन्दमय बना दिया था।

प्राणायाम के द्वारा मानसिक थकान, अवसादभाव को दूर तो कर ही सकते हैं, मस्तिष्क को तरोताजा भी बना सकते हैं। विविध प्रकार की समस्याओं के निराकरण हेतु सुबोध हल ढूंढ़ने की दिशा में भी प्राणायाम के योगों से अप्रत्याशित सहायता ली जा सकती है। बुद्धि को सबल और सूक्ष्मग्राही बनाने के लिये, हृदय की सुबुद्धि करने के लिए प्राणायाम का उपयोग किया जा सकता है। आज 'हार्टफेल' के वृत्तों (खबरों) की संख्या नित्य प्रति बढ़ रही है, पागलपन, हिस्टीरिया, मिर्गी, स्नायु दौर्बल्य, मनोविभ्रम प्रभृति मानसिक रोग भी बढ़ते जा रहे हैं, प्राणायाम

के समुचित प्रयोग से इन रोगों को बिल्कुल समाप्त नहीं, तो बड़ी मात्रा में सीमित अवश्य किया जा सकता है, ऐसा भुक्तभोगियों का अपना अनुभव रहा है।

उपरोक्त समस्याओं के समाधान के लिए प्राणायाम के प्रयोग हम यत्र-तत्र दे ही चुके हैं। यहाँ तो हम कुछ ऐसे प्रयोग देना चाहते हैं जिन्हें चमत्कार की संज्ञा दी जा सकती है। जो साधक इन प्रयोगों की सफल साधना कर लेते हैं, उन्हें सिद्ध पुरुष कहने लगते हैं क्योंकि इनके परिणाम साधारण व्यक्तियों की पहुँच के बाहर हैं। सूर्य चक्र का जागरण, अतुल शारीरिक सामर्थ्य प्राप्त करके लागों को आश्चर्य चकित करना, भूख, प्यास पर विजय प्राप्त करके अनिश्चित समय के लिए बिना खाये-पिये निर्जन-पर्वतीय गुफाओं में रहकर साधना करना, शीत ऋतु में भी पर्वतों पर बिना वस्त्र पहने रहकर साधना रत रहना, सन्देश प्रेषण और परकाया प्रवेश जैसे असाधारण प्रयोग हम इस अध्याय में दे रहे हैं।

१. प्राणायाम से सूर्य चक्र का जागरण

प्राणायाम का प्रभाव सूर्य चक्र पर भी पड़ता है। योग शास्त्रों में वर्णित षट् चक्रों में सूर्य का विशिष्ट मूल्यांकन किया जाता है। इसकी महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का अवलोकन करने वालों ने इसे "पेट का मस्तिष्क" नाम ही दे डाला जो इसके गुणों के आधार पर अत्यन्त सार्थक है क्योंकि इस क्षेत्र की सूक्ष्म गतिविधियों का यह केन्द्र बिन्दु है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इस चमत्कारिक ग्रंथि को सूक्ष्म व शक्तिशाली नाड़ियों का केन्द्र

स्वीकार किया है और ठोस तथ्यों के आधार पर यह घोषि
किया कि शरीर की समस्त गतिविधियाँ इसी केन्द्र से संचालि
व नियन्त्रित होती हैं। आन्तरिक क्रियाओं पर इस चक्र का पू
अधिकार है। वास्तविकता यह है कि आन्तरिक अङ्गों क
विकास और उत्पन्न होना इसी पर निर्भर करता है। योग शास्
के अनुसार यह प्राण कोष है। इससे निकलने वाली विद्युत
समस्त नाड़ियों में प्रवाहित होती है। चूँकि यह स्थान ओ
शक्ति का भण्डार है। इसलिए मानव की ओजस्विता का विका
इसकी स्वास्थता पर निर्भर करता है। योगाचार्यों का विश्वास
कि इस चक्र के सम्बन्ध में मानव की जानकारी अभी अधूरी है
इसमें ऊँची और खोज की आवश्यकता है। आचार्यों के अनुसा
इसमें असाधारण शक्ति है। यह इतना नाजुक स्थान है कि इ
पर हल्की सी चोट लगने पर भी मनुष्य की मृत्यु तक
सकती है।

'सूर्य चक्र' को अँग्रेजी में 'सोलर-प्लेक्सस' कहते है
योगाचार्यों के अनुसार इसका स्थान आमाशय के ऊपर हृद
की धुकधुकी के पीछे मेरुदण्ड के दोनों ओर है।

साधारण रीति से सूर्य चक्र निष्क्रिय सुप्त अवस्था में रहत
है परन्तु जब प्राणायाम किया जाता है तो फेफड़े फैलते हैं औ
फेफड़ों का फैलाव सूर्य चक्र की परिधि तक पहुँचता है। उसे
छूता है। बार-बार के स्पर्श से सूर्य चक्र की हल्की सी मालि
सी हो जाती है। शरीर की साधारण मालिश का सहज परिणा
अंगों में गर्मी, स्फूर्ति, सक्रियता व उत्तेजना होती है। इसी
प्रकार से प्राणायाम द्वारा सूर्य चक्र की स्पर्शात्मक मालिश से

इसकी सुप्त शक्तियों का जागरण होने लगता है। यह जागरण चक्र से सम्बन्धित समस्त सूक्ष्म जन्तुओं में शक्ति प्रदान करता है। यह शक्ति शारीरिक व मानसिक उत्थान के रूप में दृष्टिगोचर होती है। यूँ कहना चाहिये कि इनके विकास का एक नया दौर आरम्भ होता है।

सूर्य चक्र शक्ति का भण्डार है जब तक वह क्रियाशील बना रहता है उससे शक्ति का स्फुरणा होती रहती है और साधक चमत्कारों का केन्द्र बन जाता है, वह असाधारण कार्यों के सम्पादन की सामर्थ्य वाला हो जाता है। तभी उसे सिद्ध कहने लगते हैं। यदि वह इस विकसित शक्तिकोष को अपने आत्मिक उत्कर्ष में लगाये तो वह अल्पकाल में ही उच्चतम स्थिति को पहुँच सकता है। उसकी उन्नति के सभी मार्ग खुल जाते हैं। यदि यह सिद्धियों के प्रदर्शन में अपनी शक्ति व्यय करेगा तो उसका पतन हो जायेगा, और आत्मिक विकास रुक जायेगा।

सूर्य चक्र में उक्त शक्तिशाली केन्द्र है। इसकी सक्रियता से मानव असाधारण शक्तियों का स्वामी बन जाता है जिन्हें योग की भाषा में सिद्ध की संज्ञा दी जाती है। इसकी शक्तियों से विकास का एक और रहस्य भी है—अण्ड और पिण्ड का सिद्धान्त। जिस तरह से शरीर में सूर्य की शक्ति का निवास रहता है उस तरह से ब्रह्माण्ड में भी सूर्य का तेजस्वी पिण्ड दृष्टिगोचर होता है। उसकी विशालता, तेजस्विता शक्तियों की कोई सीमा नहीं है। कोई भी वैज्ञानिक व गणितज्ञ उसका अनुमान लगाने में असमर्थ रहेगा। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिस बुद्धिमान व्यक्ति ने भी उस महा भण्डार में

से कुछ प्राप्त करने की विधि खोज ली है, वह निश्चय रूप से लाभान्वित हुआ है। अण्ड और पिण्ड के सूर्यों में आकार का अन्तर है परन्तु गुणों में अनुकूलता है। इस अनुकूलता के आधार पर महा-सूर्य की शक्तियों को आकर्षित किया जा सकता है। योग दर्शन भी इन सम्बन्धों को स्वीकार करता है। उसमें ग्रहों से लाभ उठाने के लिए वैज्ञानिक उपायों का निर्देशन किया है। योग दर्शनकार ने अपने अनुभव के आधार पर घोषित किया है कि 'सूर्य में संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान होता है।' (३/६) सूर्य की "ज्योति में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है (६/३२)। "इसका अभिप्राय असाधारण शक्तियों के विकास से ही है इस प्रक्रिया से असम्भव कार्यों को भी सम्भव बनाया जा सकता है।

आज के वैज्ञानिक युग में सूर्य की असीम शक्तियों से कौन व्यक्ति परिचित नहीं है। विज्ञान उसमें भौतिक शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए नई विधियों की खोज में है। प्राचीन योगाचार्यों का मत था कि सूर्य की शक्तियों को आकर्षित करने और शरीर में ओत-प्रोत करने के लिए आवश्यक है कि अपने अन्तर के सूर्य को जगाया और चमकाया जाए। उसके जागरण से उसका सूक्ष्म सम्बन्ध महा सूर्य से सहज में ही हो जाता है। यह सूक्ष्म सम्बन्ध ही शक्तियों के द्वार खोलने का कारण बनती है। सूर्य चक्र का भेदन प्राणायाम से होता है। अतः सूर्य की शक्तियों को आकर्षित करने का श्रेय भी प्राणायाम को ही है। यही कारण है कि प्राणायाम से कभी-कभी ऐसे चमत्कारी लाभ होते देखे गये हैं कि जिन पर सहज विश्वास नहीं होता परन्तु

वास्तव में उनके मूल में वैज्ञानिक रहस्य छिपे रहते हैं। प्राणायाम भी एक ऐसा चमत्कारी प्रयोग है। जिसके सहयोग से मानव सूर्य चक्र जागरण करके चहुमुखी उन्नति के द्वार खोल देता है।

जिस प्रकार सेल के रूप में विद्युत को छोटी सी पेटिका में एकत्र किया जाता है और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करके अन्धेरे में उससे रास्ता देखा जाता है अथवा रेडियो बजाकर दूर-दूर के समाचार उससे सुने जाते हैं, उसी प्रकार अपने नाभि प्रदेश-स्थित सूर्य चक्र में उसे इकट्ठा करके अपनी आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करके अपना अथवा दूरस्थ अपने सम्बन्धी का हम बड़ा उपचार कर सकते हैं। नीचे हम प्राण तत्व को, जो चैतन्य विद्युत है, अत्यन्त सूक्ष्म और अगोचर है, वायु के महासागर की नाई हमारे आस-पास अन्दर-बाहर चारों ओर लहलहा रहा है, अपने अन्दर संचित करने की अत्यन्त सरल विधि दे रहे हैं—

रमणीय एकान्त स्थान में अथवा खुली छत पर नरम बिछौना बिछाकर पीठ के बल लेट जायें। मुँह ऊपर को रहे। पैर कमर छाती सिर सब सीध में रहें। दोनों हाथ नाभि के पास उस स्थान पर रक्खें जहाँ पसलियाँ और पेट परस्पर मिलते हैं। यही सूर्य चक्र है, जिसमें प्राण एकत्र किया जाता है। लेटे-लेटे यह भावना करो कि मेरा अंग-अंग शिथिल हो रहा है। अब धीरे-धीरे नाक द्वारा साँस खींचना आरम्भ करें और दृढ़ शक्ति के साथ भावना करें कि मैं विश्वव्यापी प्राण भण्डार में से स्वच्छ प्राण साँस के साथ खींच रहा हूँ और वह प्राण रक्त प्रवाह के

साथ समस्त नाड़ी तन्तुओं में प्रचलित होता हुआ सूर्य चक्र में इकट्ठा हो रहा है इस भावना को कल्पनात्मक चित्र के द्वारा इतनी दृढ़ता के साथ मनः चक्षु के सामने उतारें कि प्राण शक्ति की बिजली जैसी तेज किरणें नासिका के द्वारा देह में घुसती हुई स्पष्ट प्रतीत होने लगे। रुधिर का फुदक-फुदक कर नस-नस में दौड़ना और उसमें प्राण प्रवाह का बहना स्पष्ट नजर आने लगे। भावना की जितनी प्रबलता होगी, उतनी ही अधिक मात्रा में हम प्राण अपने में खींच सकेंगे।

इस प्रकार भावनाओं के प्रवेग के साथ अधिक से अधिक जितनी प्राणवायु अपने फेफड़ों में भर सकते हैं, उतनी भर लेने के बाद उसे दस सेकन्ड अन्दर ही रोकें। साँस रोके रहने के समय अपने अन्दर प्रचुर परिणाम में प्राण भरा हुआ अनुभव करना चाहिये।

इसके बाद मुँह खोलकर धीरे-धीरे वायु को बाहर निकालें। साथ ही ऐसा अनुभव करें कि शरीर के सारे दोष और विष पदार्थ, विजातीय तत्व निःश्वास के द्वारा मैं बाहर निकाल रहा हूँ। इस प्रकार उदरस्थ समस्त वायु को निकाल कर पाँच सेकेन्ड तक बिना साँस लिए रहें। फिर पूर्ववत् यही प्राणायाम करें।

यह प्राणायाम के भाव भरे हृदय से कम से कम दस मिनट तक करना चाहिये। धीरे-धीरे आधे घन्टे तक बढ़ाया जा सकता है। यदि ठीक प्रकार से इस क्रिया को करेंगे, तो सूर्य चक्र के स्थान पर एक छोटा सा प्रकाश बिन्दु मानस नेत्रों के समक्ष स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता

जायेगा, त्यों-त्यों यह प्रकाश-बिन्दु अधिकाधिक उज्ज्वल और स्पष्ट ही नहीं होता जावेगा, प्रत्युत क्रम-क्रम से सधन होता हुआ भी प्रतीत होगा।

१. तनाव नाशक योग

जब अभ्यास समाप्त करें तो पाँच सात बार बैठकर यह प्राणायाम अवश्य करें।

पालथी मारकर बैठ जाएँ लम्बी साँस लें। हवा को पाँच सात सेकेण्ड रोककर सीटी बजाने के समान होठों को सिकोड़ कर बिना गालों को फूलने देकर धीरे-धीरे दो तीन बार में अन्दर की वायु को मुँह से निकालें। जब होठों के रास्ते सब हवा निकल जाये तो पुनः-पुनः पूरी साँस भर-भर कर यही क्रिया करें। ऐसा करने से श्वसन अवयवों की थकान दूर हो जावेगी तभी ताजगी आ जावेगी।

२. अतुल शारीरिक सामर्थ्य

प्राणायाम से अतुल शारीरिक सामर्थ्य की वृद्धि होती है। योग शास्त्र का प्रमाण है–

प्राणायामात पुष्टगात्रस्य बुद्धितेजों यशोबलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मत् प्राणायाममाचरेत्।।

''प्राणायाम से शरीर पुष्ट होता है। बुद्धि, तेज, यश व फल बढ़ते हैं। अतः साधक को चाहिए कि इन लाभों की प्राप्ति के लिए प्राणायाम का, उपयोग करें।

प्राणायाम से शरीर के आन्तरिक अवयवों में वायु भर जाती है जिससे छाती विशाल और कठोर हो जाती है। मोटर व

वाइसिकिल के पहियो में जब हवा भर दी जाती है तो उनमें कई व्यक्तियों को उठाने की सामर्थ्य हो जाती है। इसी तरह प्राणायाम से वक्षस्थल में अद्‌भुत शक्तियों का विकास होता है। अभ्यास करने पर उसकी छाती पर हाथी जैसा विशालकाय और भारी भरकम जीव चढ़ जाये तो उसे कोई विशेष भार का अनुभव नहीं होता। प्रो० राममूर्ति इस तथ्य के उज्ज्वल प्रमाण थे। वे इस प्रकार अनेकों प्रदर्शन किया करते थे। लोहे के जंजीरों को देखते-देखते तोड़ देना, वक्षस्थल पर भारी पत्थर रखवा कर उन्हें हथौड़ों से तुड़वाना मोटर की गति को रोकना, छाती पर तख्ते रखकर उस पर से हाथी पर चढ़कर निकल जाना आदि उनके लिए सहज व सरल क्रियायें थीं। वे उसका श्रेय ब्रह्मचर्य का पालन व प्राणायाम के अभ्यास को ही देते थे। आभ्यान्तर कुम्भक से उन्होंने यह सिद्धि प्राप्त की थी।

निम्न प्रकार के प्राणायामों से शारीरिक सामर्थ्य को विकसित किया जा सकता है–

(क) एकांग-स्तम्भ-प्राणायाम

इसका अभ्यास करने से शरीर का प्रत्येक अंग-पुष्ट, शक्तिशाली व सुडौल बनता जाता है। इससे शक्ति का यहाँ तक विकास हो जाता है कि यदि वह योगी मोटर, घोड़ा बैल आदि की गति को रोक ले तो वह अपने स्थान से हिल तक नहीं सकते। शरीर में अपार स्फूर्ति व तेज की वृद्धि होती है। इस प्राणायाम के सिद्ध होने पर बाहों व टांगों में इतनी शक्ति आ जाती है कि कई शक्तिशाली पुरुष मिलकर भी उन्हें मोड़ने की क्षमता नहीं रखते। शक्ति की चमत्कार रूप में वृद्धि ही इस

प्राणायाम की विशेषता है।

इसे खड़े होकर या लेट कर, किसी भी तरह से किया जा सकता है। दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वास को भीतर भरें। प्रयत्न यह हो कि उसे शरीर के प्रत्येक अंग में भरे। हाथ, पैर, बाहु, जाँघ, गले सभी में श्वास भरने का अभ्यास करना चाहिये। वायु भरने के साथ यह सुदृढ़ भावना करनी चाहिये कि वह वायु जहाँ-जहाँ प्रविष्ट होती जा रही है, वहाँ अशक्ति का अभाव होकर शक्ति का जागरण हो रहा है। वायु का भरना तब तक चलता रहना चाहिए जब तक उन अंगों में इतनी सामर्थ्य न आ जाए कि कई व्यक्ति मिलकर भी उन अंगों को मोड़ न सकें। इस प्राणायाम की सिद्धि अभ्यास पर निर्भर करती है जो एक अनुभवी गुरु की देख रेख में करना चाहिए।

(ख) नाड़ी-अवरोध प्राणायाम

इसके लम्बे अभ्यास से प्राणों पर इतना अधिकार हो जाता है कि प्राणों को इच्छानुसार किसी भी अंग में प्रवाहित किया जा सकता है। इससे वह अंग इतना शक्ति सम्पन्न हो जाता है कि उसी से अद्भुत कार्य किये जा सकते हैं उन्हें साधारण व्यक्ति चमत्कार की संज्ञा देते हैं।

इसे खड़े होकर अथवा बैठकर दोनों तरह किया जा सकता है। बैठकर करना हो तो पद्मासन में स्थित होकर दायें नासिका को बन्द करें और बाँये नासिका से प्राण वायु को भीतर खीचें यहाँ तक कि वह मूलाधार तक पहुँच जाए। दोनों हाथों की मुट्ठियों को बाँध लें और दोनों घुटनों पर रख लें।

साधक की संकल्प शक्ति इस प्रकार विकसित होनी चाहिये कि यह भीतर भरी प्राण वायु को किसी ओर भी सुविधा से प्रवाहित कर सके। यह अभ्यास होने पर ही इस प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त करना सम्भव है।

मूलाधार तक प्राण वायु को भरने के बाद उसे छाती की ओर और फिर दायें वाजू की ओर प्रवाहित करने का प्रयत्न करें। यह अभ्यास तब तक चलता रहना चाहिये जब तक कि वायु फूल न जाए, उसमें कड़ापन न आजाए और नाड़ी में स्तब्धता न आने लगे। इसके बाद भीतर खींची हुई प्राण वायु को रोको और नाड़ी को पूरी तरह से स्तब्ध करने की चेष्टा करें। जब तक पूर्ण सफलता प्राप्त न हो जाए, यह अभ्यास का क्रम चलता रहना चाहिये। इसमें दीर्घकालीन प्रयत्न की अपेक्षा है। शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिये। इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि साधक प्राण वायु को पूरी तरह से बाहु में भरने की विधि व्यवस्था जान गया या नहीं। इस विधि का क्रम जब सुविधा से होने लगता है तो रक्त-संचार पक जाता है जिसमें कई बार बाहु काला अथवा नीला हो जाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर नाड़ी की स्तब्धता भरने लगती है। यही इस प्राणायाम की अन्तिम सीढ़ी है। यहाँ पहुँचने पर इसके सभी लाभों से लाभान्वित हुआ जा सकता है।

शारीरिक सामर्थ्य बढ़ाने के यहाँ दो प्रयोग ही दिए हैं। यही लाभ सहित कुम्भक, सर्वांग–स्तम्भ प्राणायाम, वायवीय–कुम्भक–प्राणायाम, हृदय-स्तम्भ–प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम तभी प्राप्त किये जा सकते हैं।

४. भूख प्यास पर विजय प्राप्त करने के लिए

प्राचीन काल में ऋषि-मुनि वनों में रहकर भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करने के लिए कण्ठ-दात-उदर परक-प्राणायाम द्वारा वायु पान किया करते थे जिससे अन्न-जल ग्रहण की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी और शारीरिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हुए वह दीर्घकालीन साधनाओं में संलग्न रहते थे। बिना अनुभवी पथप्रदर्शक के इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। हानि की सम्भावना हो सकती है। विधि इस प्रकार है–

सिंहासन पर बैठें। दोनों हाथ घुटनों पर रहें। इस क्रिया में मुख तो बन्द रहता है परन्तु कण्ठ और मुख से उच्च शब्द करते हुये वायु को उत्पन्न करके उसी का घूँट-घूँट भर पान करना होता है। नासिका तो बन्द की जाती है परन्तु वायु की उत्पत्ति कण्ठ और मुख से ही होनी चाहिये। यह क्रिया की पुनरावृत्ति से पेट में वायु बढ़ती रहती है। प्रारम्भ में तो पेट में पूरी वायु भरना सम्भव न होगा। कुछ दिनों के सफल अभ्यास से इसकी आशा की जा सकती है। अभ्यास धीरे-धीरे ही बढ़ाना चाहिये। जब पेट में पूरी वायु भर जाय तो वह इतना फूल जाता है मानो साधक को अफरा रोग हो गया। योगियों का कहना है कि आधे घण्टे के सफल अभ्यास से यह स्थिति आ जाती है। इसकी निवृत्ति के लिए. 'मयूरासन' और शीर्षासन' करना होगा 'मयूरासन' व 'सर्वांगासन' से भी यही लाभ प्राप्त होगा। जिन योगियों ने इसका अभ्यास किया है, उनका कहना है कि पहले जैसी स्थिति लाने के लिए कम से कम एक घण्टे

का समय चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम को स्वयं नहीं करना चाहिए। अनुभवी गुरु की देख-रेख में ही करें।

५. शीत निवारण व संरक्षण के लिए:

शीत निवारण व संरक्षण के लिए अग्नि-प्रदीप्त-प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राचीन काल के योगी इस प्राणायाम के अभ्यास से पर्वतीय स्थानों में भी बिना वस्त्र रहकर साधना करने की क्षमता प्राप्त करते थे। इसकी विधि इस प्रकार है-

पद्मासन में बैठें। दायें नासिका को दायें हाथ के अँगूठे से बन्द करके बायें नासिका से श्वाँस भीतर खींचे और तब तक भरते रहें जब तक पूरी वायु भर न जाये। जब यह अनुभव हो जाय कि अब और वायु भरा जाना सम्भव नहीं है तभी वायु भरने की क्रिया छोड़ी जाए। अब भरे हुए श्वांस को रोकें। अन्य प्राणायामों में तो यह विधान दिया जाता है कि श्वास को यथाशक्ति ही रोकना चाहिए परन्तु इस प्राणायाम में श्वास को बलपूर्वक रोकने का आदेश है। इसे इतना रोका जाय कि वक्षःस्थल और मुँह लाल हो जाये। यह क्रिया करते हुए जब कभी घबराहट की अनुभूति हो तो श्वांस को दूसरी नासिका से धीरे-धीरे निकाल देना चाहिए। श्वांस रोकने को कुम्भक क्रिया अभ्यास को धीरे-धीरे ही बढ़ाना चाहिए अन्यथा हानि होने की सम्भावना हो सकती है।

इस प्राणायाम से शरीर में इतनी गर्मी आ जाती है कि शीत ऋतु में भी पसीना आ जाता है। यही इसकी सफलता का चिन्ह है।

६. संदेश प्रेषण :

आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के पर-मनोविज्ञान के स्नातकों को सन्देश-प्रेषण का प्रयोग (एक्सपेरीमेन्ट) कराया जाता है, जिसमें मन को एकाग्र कर सरल वाक्यों की आवृत्ति एक छात्र करता है और कुछ दूरी पर स्थित दूसरा छात्र एकाग्र-चित्त होकर उसको ग्रहण करने का उपक्रम करता है। दोनों एक समय पर एक दूसरे के अभिमुख होकर पर्याप्त दूरी पर बैठते हैं। सन्देश ग्रहण को उत्सुक छात्र तत्काल में अपने मन क्षेत्र पर जिस स्फुरण का उदय देखता है, उसे कागज पर लिख लेता है। बाद को दोनों मिलकर अपने प्रयोग की सफलता का मिलान करते हैं। इन प्रयोगों में वही छात्र अधिक सफलता पाते हैं, जो अपने ध्यान को सुगमता से केन्द्रित कर लेते हैं और जिनका मानसिक संस्थान अधिक संवेदनशील या सूक्ष्म होता है। जिसकी भावना जितनी अधिक तीव्र या नाशवान् होती है, वे उतनी ही सामर्थता से संप्रेषण करते हैं। उतनी ही सफलता के साथ संदेश ग्रहण करते हैं। यह प्रयोग वहाँ इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए किया जाताहै कि शब्द-तरङ्ग, रूप-तरङ्ग के समान भावों की सूक्ष्म-लहरें भी होती हैं, जो ईश्वर के माध्यम की अदृश्य में भ्रमण करती हैं। इस विद्या को अँग्रेजी में टेलीपैथी कहते हैं।

टेलीपैथी का प्रथम आविष्कार-भारत :

सन्देश-प्रेषण या टेलीपैथी का आविष्कार सर्वप्रथम भा में हुआ था। रामायण के पाठक यह जानते हैं कि इसी वि के बल से लंकापति रावण ने पाताल स्थित अपने भाई अहिराव को सन्देश भेज कर लंका बुलाया था। इस विद्या की उपयोगि उन दिनों कितनी गहनीय रही होगी, जिन दिनों टेलीफो टेलीग्राम अथवा डाक-व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं थ सब ओर घोर जंगल ही जंगल थे। यातायात के साधन अत्यन्त अल्प थे। दुर्गम घाटी, दुर्गम पहाड़ बीहड़ नदि हिंसक पशुओं की बहुतायत और लोगों का दूर-दूर छितरे हु बसना। इन विषम स्थितियों में सामाजिक-आवश्यकताओं नाते परस्पर संलाप हेतु इस विद्या का आविष्कार क भारतीय ऋषियों ने एक बड़ी कमी को पूरा किया था। आज भारतीय योगी अपने शिष्यों को अपेक्षित सन्देश इसी के माध्य से प्रेषित करते हैं। शक्ति पात का यही साधन है।

आज भी इसकी अतीव उपयोगिता है:

आवागमन और संचार-साधनों की विपुलता के आधुनि युग में भी इस विद्या की अपनी उपयोगिता है। इसके द्व अपने विचारों को दूसरों के मन तक पहुँचाकर अपने प्रति ब उसकी धारणा को, पूर्वाग्रह (पक्षपात पूर्ण भावना को) प्रभावि और परिवर्तित किया जा सकता है। दूसरों की सहानुभू सहयोग और प्रेम को प्राप्त करके अपने सुखों की वृद्धि के लि भी आज के युग में इसका बड़ा महत्त्व है। इसके द्वारा

म्बन्धों को जोड़ा जा सकता है। मन में पड़ी हुई गाँठ को, टिल-भावना ग्रन्थियों (कामप्लेक्सेज) को मिटाना भी इससे हज सम्भव है। परस्पर आत्मीयता को बढ़ाने में तो यह नुपम है। प्रभाव की दृष्टि से यह अल्प समय साध्य है। कुछ किण्डों में ही इससे वांछित लाभ उठाया जा सकता है। व्यय कुछ नहीं करना पड़ता। अपना मानसिक संस्थान प्रबल, खर और सूक्ष्मग्राही जो इसके द्वारा बनता है, सो अलग रहा। च पूछे तो इस विद्या की सबसे बड़ी खूबी यही है कि अपने तो प्राणवान, स्वस्थ और सद्भावी (उच्चाशय) बनाता ही है हण कर्त्ता या माध्यम के प्रसुप्त कोषों को भी चैतन्य करके नके प्रमस्तिष्क को सबल करता है। सन्देश भेजने वाले और हण करने वाले दोनों को ही इसमें अपरिमित लाभ होते हैं।

रतीय आविष्कार की श्रेष्ठता :

ऊपर वर्णित आक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी के तथाकथित प्रयोग लीपैथी (विचार-संचरण) की सत्यता को प्रतिपादित भर करते । उनका कार्य-क्षेत्र और उपयोगिता अत्यन्त सीमित है, क्योंकि सके प्रयोग की सफलता के लिए सन्देश भेजने वाले और हण करने वाले दोनों का ही अभिमुख होना परस्पर सहमत ना और संवेदनशीलता भी समान होना जरूरी है प्रेषक और हक परस्पर दोनों का सहयोग करना आवश्यक है, किन्तु रतीय विचार-संचालन विद्या या टेलीपैथी दूसरे की अपेक्षा हीं रखती, क्योंकि हम लोग विचार-प्रेषण का कार्य सिर्फ काग्रता या ध्यान के बल पर ही नहीं करते। हम अपने प्रखर चारों के साथ प्राण शक्ति का संगुम्फत भी करते हैं। हम प्राण

प्रक्रिया के द्वारा विचार भेजते हैं। इसके लिए ग्राहक का तत्
या अधिमुख होना जरूरी नहीं है। उसकी उपेक्षा और असहयो
मिलने पर भी हम अपनी प्रबलतर प्राणशक्ति के द्वारा उ
अपनी भावनाओं से प्रभावित कर सकते हैं, उसके चित्र
बरबस अपनी ओर आकृष्ट करके उसे अपने समान ही उद
दृष्टिकोण वाला सुहृदय और सुहद बना सकते हैं। इस त
भारतीय विचार-संचालन विद्या पाश्चात्य विज्ञान-विशारदों
टैलीपैथी से बढ़कर है। प्रभाव क्षेत्र और उपयोगिता दोनों
दृष्टि से हमारी क्रिया-पद्धति आज के युग की महत्वाकांक्षाओं
अनुकूल है।

इस विद्या का सदुपयोग आवश्यक है :

तन्त्र ग्रन्थों में इस विज्ञान का वर्णन वशीकरण-विद्या
नाम से किया गया है। मध्यकाल में इसका बडा दुरुपयोग हु
था। फलतः व्यक्ति के साथ ही साथ समाज को भी अपार हा
उठानी पड़ी थी। इस विद्या का प्रयोग जब हीन प्रयोजनों
लिए किया जाता है, तो व्यक्ति की प्राणशक्ति विपुल वेग से क्ष
होती है। प्रयोक्ता मानसिक संस्थान विकृत हो जाता है, अ
सुमति के अभाव में उसका दैनिक जीवन पहले की अपेक्षा क
अधिक समस्या संकुल हो जाता है। प्राण-शक्ति का अपव्
प्रकृति कभी सहन नहीं करती। जो भी जाने-अनजाने दुरुपयो
करता है, उसको अपने पाप का उसी अनुपात में रोग, क
कष्ट, अपमान, असहयोग और अशक्ति के रूप में दण्ड भो
पड़ता है। अतः किसी को हानि पहुँचाने या अपना स्वार्थ-सा
करने के लिए किसी दूसरे को अपने सन्देशों से प्रभावित क

की इच्छा न करें। इस प्रकार के सन्देश जब दूसरों पर प्रयुक्त किये जाते हैं, तो दुगने बल से प्रत्यावर्तित होकर प्रयोक्ता के मस्तिष्क पर आक्रमण करते हैं और उनके तन-तन्तुओं की बड़ी क्षति करते हैं। मस्तिष्क के घृति-स्मृति कोषों के क्षीण होने पर मनुष्य मोह-विरुद्ध, विचार-विमूढ़ बन जाता है। विवेक-बुद्धि मारी जाती है क्योंकि मानस केन्द्र के अनेक कोष और स्नायु हमेशा के लिए प्रत्यावर्तित (उल्टी) विद्युत-धारा से जलकर नष्ट हो जाते हैं। अतः सन्देश भेजने की क्रिया स्वार्थ के लिए न होकर परमार्थ के लिए ही की जानी चाहिए। सद्‌भावना और उदार दृष्टिकोण, सच्चरित्रता और मंगल कामना रखते हुए भले उद्‌देश्यों के लिए हो इस विद्या का उपयोग करने से अपना और दूसरे का बड़ा हित होता है।

सन्देश भेजने की क्रिया पद्धति :

सन्देश भेजने के लिए शान्त एकानत स्थान में पालथी मारकर सुखासन पर बैठना चाहिये। सर्वसुहृद, सर्वहितकारी सर्वेश्वर का कुछ समय तक स्मरण ध्यान करके तालबद्ध प्राणायाम करना चाहिए। तालबद्ध प्राणायाम उस प्राणायाम को कहते हैं जिसमें श्वांस प्रश्वांस एक ताल के साथ खींची और छोड़ी जाती हैं। जितना समय श्वाँस खींचने में लगता है, उतना ही समय श्वांस छोड़ने में लगाया जाता है। साँस भरने, और साँस खाली हो जाने पर पुनः साँस को भरने और खाली करने की अपेक्षा आधे समय तक अन्दर या बाहर रोका जाता है।

पहला अभ्यास :

अतः तालयुक्त प्राणायाम करने के लिये मेरुदण्ड को सी करके बैठिये। हृदय पर हाथ रखिये। धीरे-धीरे उतने समय पूरी साँस खींचिये, जितने समय में छः बार हृदय धड़कता है हाथ हृदय पर ही रक्खे रहिये। तीन धड़कनों तक वायु अन्द ही रोके रहिये। फिर छः धड़कनों तक गिनते हुए श्वास क धीरे-धीरे बाहर निकालिये। अब तीन धड़कनों तक श्वांस क बाहर ही रोके रखिये अर्थात् कोई साँस न लीजिये।

नित्य नियम पूर्वक एक दो महीने तक इस क्रिया को क बार करने से यह प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। थोड़े ही अभ्या के बाद श्वास खीचंने और छोड़ने का समय सोलह धड़क की अवधि तक बढ़ाया जा सकता है। जब सोलह धड़कनों त बिना किसी कष्ट के श्वास खींचना और छोड़ना तथा आ धड़कनों तक अन्दर और बाहर साँस रोकने का अभ्यास स जावे, तो समझना चाहिए कि तालबद्ध प्राणायाम सिद्ध हो ग है। याद रहे, श्वांस की मात्राओं (धड़कनों की अवधि) को बढ़ा में जल्दबाजी न की जाय। ताल प्राप्त करने में जहाँ तक सके, पूरा प्रयत्न किया जाय। साँस लेने, अन्दर रोकने, छोड़ और बाहर रोकने की क्रिया तबले की ताल के अनुसार ए लय के साथ चलनी चाहिए। सम-तालता या समस्वरता इ प्राणायाम का प्रभावकारी तत्व है। जब तक आपकी ताल यु गति न मिल जाय अथवा जब तक तालमय कम्पनों का अनु अपने शरीर में स्वयं न होने लगे, तब तक इसे सिद्ध हु समझना भूल है।

दूसरा अभ्यास :

जब ताल-बद्धमा सिद्ध हो जाय, तो इस प्राणायाम के साथ सद्भावना पूर्ण सन्देश भेजने का कार्य आसानी से सम्पादित किया जा सकता है। अभी तक आप हृदय पर हाथ रखकर श्वास-प्रश्वास की अवधि का निर्धारण किया करते थे, किन्तु प्राणायाम के सिद्ध होने पर आप अनुभव करेंगे कि आप इस क्रिया को बिना धड़कन गिने ही ताल को अभीष्ट समता के साथ सरलता पूर्वक करने लगे हैं। ज़ब यह स्थिति आ जाये तब ही इस लय के साथ मन ही मन अपने सन्देश की निर्विघ्न आवृत्ति करना सहज हो जाता है। ताल टूटने नहीं पाती और भावना की आवृत्ति भी श्वास-प्रश्वास के साथ अवाध गति से चलती रहती है। तालयुक्त सन्देश के सप्रमाण प्रबाह की फ्रीक्वेन्सी अति उच्च होती है। उसे दूर-दूर तक भेजा और सुना जा सकता है। ऐसा अनुभवी लोगों का कहना है।

सन्देश प्रसारण का क्रम :

सन्देश प्रसारण करते समय प्रयोक्ता को चाहिये कि वह ग्राहक महोदय का मनः पटल पर ध्यान द्वारा स्पष्ट चित्र खींचे और मन ही मन उनसे कहे कि मैं आपसे अत्यन्त स्नेह करता हूँ मेरे हृदय में आपके प्रति सद्भावनायें ही सद्भावनायें हैं। मुझे आपकी उदारता और विशाल हृदयता पर पूरा-पूरा विश्वास है। मैं अपने प्राण प्रवाह के साथ आपको सूचित करता हूँ कि वस्तु-स्थिति वस्तुतः ऐसी है। (वस्तु स्थिति का मन ही मन चित्रण कीजिये) मुझे विश्वास है, आप इसे भली भाँति समझ गये हैं। आपकी भ्रान्तियाँ दूर हो गई हैं आपके हमारे प्रति

स्वाभाविक प्रेम फिर ज्वार भाटे के समान उमड़ पड़ा है। मैं धन्य हो गया हूँ, धन्य हो गया हूँ। हम दोनों में पुनः मधुर सम्बन्ध स्थापित हो गये। आप हमारी भलाई चाहते हैं, हम आपकी भलाई चाहते हैं। दोनों एक दूसरे के हितैषी हैं।

अब इसी भावना के साथ जो कूछ सूचना (मैसेज) आप उन्हें देना चाहते हैं, उसे उनके मन पर उतारिये। उन्हें वे गुप्त रहस्य या बातें बता दीजिये जिन्हें लज्जा, भय दूरी या अन्य किसी कारण से आप सम्मुख होकर नहीं बता सकते हैं। सूचना या वर्णन प्रसाद शैली में किया जाना चाहिये। वीभत्स या भयावह सूचना (खबर का प्रसारण) अपने लिये ही अधिक हानिकारक होती है। अतः सन्देश शुभ ही हो। इसका ध्यान रहे।

यदि आप अपने को अधिक प्राणवान बना सके तो ग्रहणकर्त्ता से अपनी इच्छाओं के सही-सही उत्तर भी इसी विधि से प्राप्त कर सकते हैं।

७. प्राण शरीर का परकाया प्रवेशः

मृत्यु के बाद की जीव की स्थिति के सम्बन्ध में पाश्चात्य परलोक विद्या विशारदों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। गीता भी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि जीव को इस संसार में जिस प्रकार का स्थूल शरीर प्राप्त होता है, उसी आकार का उसका एक वियत् शरीर भी होता है। इस वियत शरीर के ७ कोश होते हैं। मृत्यु के बाद मनुष्य के वियत शरीर के ३ कोश और एक स्थूल शरीर कुल चार शरीर यहाँ रह जाते हैं। जीव के पास ८ उप शरीर और एक प्राणमय शरीर रह जाता है।

इसके सहयोग से वह अपने स्तर के अनुकूल पितृलोक में विचरण करता है। कुछ समय बाद वियत शरीर के चार कोषों का भी नाश हो जाता है प्राणमय शरीर ही शेष रह जाता है जिसकी सहायता से वह विभिन्न लोकों में आ जा सकता है। इन लोकों का निवास जीव के कर्मों के अनुसार ही होता है शुभ कर्मों से युक्त जीव उच्चलोकों में निवास का अधिकारी होता है।

स्थूल शरीर और प्राण शरीर अलग-अलग होते हैं। इसका प्रमाण यह है कि स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी प्राणों की गति का बना रहना देखा गया है विख्यात तिब्बती योगी लामा श्री० लावसांग रम्पा ने—आप अमर हैं" नाम पुस्तक में एक घटना का वर्णन इस प्रकार किया है कि फ्राँस की क्राँति में एक देशद्रोही का सिर धड़ से अलग कर दिया गया था। इस स्थिति में भी उसके मुख से बुदबुदाहट जारी रही। ऐसा लगता था कि वह कुछ बोलने का प्रयत्न कर रहा है। इस घटना का वर्णन फ्रांसीसी शासन के रिकार्ड में अभी तक सुरक्षित है।

विख्यात अमेरिकी अणु वैज्ञानिक श्रीमती जे०सी० ट्रस्ट ने प्राण शरीर के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये थे। कर्नल टाउनशेंड भी इन प्रयोगों में अग्रणी रहे हैं। प्राणायाम के अभ्यास से उन्हें शरीर का पूरा नियन्त्रण प्राप्त था। एक बार ३ डाक्टरों के समक्ष उन्होंने अपना प्राण शरीर स्थूल शरीर से अलग कर दिया। डाक्टरों ने पूर्ण परीक्षा के बाद उसकी मृत्यु घोषित कर दी क्योंकि हृदय की गति बन्द हो गई थी, नाड़ियों व रक्त की गति भी अनुभव नहीं हो रही थी। मृत शरीर की तरह नसों में तनाव व शरीर में ठण्डापन स्पष्ट होने लगा था।

इस स्थिति के बाद भी कर्नन टाउन शेंड अपने प्राण-शरीर को स्थूल में वापिस ले आये और जीवित मनुष्य की तरह उठकर बैठ गए।

एक बार कर्नल टाउनशेंड ने वैज्ञानिकों और साहित्यकारों की साक्षी में इस प्रकार का ही प्रदर्शन किया था। एक ब्लैक बोर्ड के साथ खड़िया बाँधी। ब्लैक बोर्ड के पास ही बैठ गये और प्राण शरीर स्थूल शरीर से अलग कर लिया। प्राण शरीर से वह ब्लैक बोर्ड पर लिखते रहे। और प्रदर्शकों के प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में बोर्ड पर देते रहे। इस प्रदर्शन में कई बार वह स्थूल शरीर में भी आ गये और जीवित मनुष्य की तरह बोलते रहे। फिर वह अपनी इच्छानुसार प्राण शरीर अलग कर लेते थे। वह यह सहज स्वभाव से ही कर लेते थे।

कर्ण प्रयाग में स्वामी भास्करानन्द ने समाधि ग्रहण की। समाधि का बड़ी श्रद्धा से पूजन किया गया। उसी समय स्वामी जो कर्ण प्रयाग से कोल्हापुर लौट आये थे। इस घटना को भी अनेकों व्यक्तियों ने देखा था।

इन घटनाओं से परिलक्षित होता है कि स्थूल शरीर की तरह ही एक अदृश्य शरीर भी होता है जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण होता है।

मिश्र और चीन में मरने के बाद मृतक को जलाते नहीं वरन् कुछ निश्चित रसायनिक प्रयोग में सुरक्षित रखते हैं जो लम्बे समय तक ज्यों का त्यों बना रहता है और सड़ता नहीं है। इस तरह से रखे गये मृतक शरीरों को वहाँ की भाषा में "मम" कहते हैं। उन लोगों की यह मान्यता है कि जीव अपने

स्थूल शरीर को देखने के लिए कभी-कभी आया करता है। यह वास्तविकता भी है। यह गतिविधियाँ प्राणमय शरीर की हैं।

स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी प्राण-शरीर की गतिविधियाँ संचालित होती रहती हैं। एक साधारण उदाहरण से इसे स्पष्ट करते हैं। बिजली का प्रकाश, बल्ब द्वारा हमें चारों ओर प्रसारित होता दिखाई देता है। प्रकाश काँच में नहीं होता है। उसका तो केवल सहयोग मात्र रहता है। कांच के बल्व को हटा दिया जाये तो प्रकाश भी समाप्त हुआ दृष्टिगोचर होता है परन्तु वास्तविकता तो यह है कि विद्युत की गति बराबर बनी रहती है उसके प्राण-परमाणु भी क्रियांशील रहते हैं। केवल काँच के हटने पर प्रकाश का प्रसारण बन्द हो जाता है। इसी प्रकार स्थूल शरीर के सहयोग से प्राण-शरीर की गतिविधियाँ प्रदर्शित हो रही थी। मृत्यु होने पर इनका दिखाई देना बन्द हो गया परन्तु उसकी क्रियाशीलता ज्यों की त्यों बनी रहती है। स्थूल शरीर के साथ प्राण शरीर का नाश नहीं होता। उसकी सत्ता स्थूल शरीर से बिल्कुल भिन्न है।

प्रशान्त महासागर में समाओ द्वीप के पास "पैलोलो" नाम का एक जीव मिलता है। इसकी जीवन प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से है कि वह समुद्र की जल मग्न चट्टानों में अपने निवास के स्थान बनाता है पूरा वर्ष तो वह जल में ही रहने का अभ्यस्त है परन्तु जब चन्द्रमा आधा होता है और ज्वार कम होता है तो अक्तूबर व नवम्वर के इन दिनों में यह बाहर निकलता है और जल की सतह पर अण्डे देकर अपने मूल स्थान को लौट जात है। "पैलोलो" अपने पूरे शरीर के साथ जल की सतह पर नहीं

आता वरन् शरीर का कुछ भाग घर पर छोड़ आता है। वह शरीर का उतना भाग ही अपने साथ लाता है जितना कि उसके लिए जल पर तैरने और अण्डे देने के लिए आवश्यक होता है। घर पर छोड़ा हुआ शरीर मृतक की तरह पड़ा रहता है। जिस तरह से कोई मिस्त्री किसी मशीन के दो पुर्जों को मिलाकर एक कर देता है उस तरह "पैलोलो" घर लौटने पर सुरक्षित शरीर मृत-प्रायः भाग से अपने जीवित शरीर को जोड़ लेता है। मृतक शरीर भी जीवित सा हो जाता है। अब उसका पहले जैसा एक पूर्ण शरीर हो जाता है जिसमें रक्त संचार व प्राण संचार की सभी क्रियायें संचालित होने लगती है।

मैसूर के नन्दि दुर्ग पर्वत पर १/२ इन्च के आकार का एक "टाडिग्राफ" नामक जीव रहता है। जल के अभाव में उसका स्थूल शरीर इस प्रकार से सूख जाता है जिस तरह से वह मिट्टी का ढेला हो और उसमें प्राण संचालन की कोई क्रिया न हो। इस मृतक प्रतीत होने वाले जीव के काटकर कई टुकड़े कर दिये जायें तो भी यह देखा गया है कि उसकी प्राणशक्ति का नाश नहीं होता। इन टुकड़ों को एक शून्य अंश उष्णता वाले एक पात्र में रखकर हेलियम नाम का एक द्रव्य मिलाया जाये तो उसकी सुप्त प्राण शक्ति जाग्रत हो जाती है और चेतना लौट आती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राण शरीर की सत्ता स्थूल शरीर से अलग है। प्राण शरीर मानव के आध्यात्मिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। स्थूल शरीर तो कुछ वर्षों तक ही उसके साथ रहता है। प्राण शरीर मोक्ष-प्राप्ति की लम्बी

यात्रा के अन्तिम क्षणों तक साथ देता है।

प्राण शरीर को प्रत्यक्ष देखा जाना सम्भव नहीं है। स्थूल शरीर से वह सूक्ष्म है। स्थूल से सूक्ष्म हर वस्तु शक्तिशाली होती है। उसमें एक अद्भुत गति व क्रियाशीलता होती है जिसके कारण उसकी शक्ति का अनुमान लगाना भी सहज नहीं होता।

सूक्ष्म होने के कारण प्राण शरीर दूसरे स्थूल शरीर में प्रविष्ट होने की क्षमता रखता है योगियों में परकाया प्रवेश की अनेकों घटनायें प्राप्त होती हैं श्रीमद् आद्य शंकराचार्य का उदाहरण तो लोक प्रसिद्ध है। उन्होंने अपना प्राण शरीर मृतक राजा सुन्धवा के शरीर में प्रविष्ट करवाया था और अपने स्थूल शरीर की सुरक्षा की जिम्मेदारी अपने शिष्यों पर छोड़ दी थी। राज सुन्धवा में कुछ विशिष्ट महानताओं की अनुभूत करके उसके दरबारी चकित रह गये थे। उनके कुल गुरु तो उनके शरीर में किसी महान आत्मा का निश्चय से प्रवेश मान रहे थे। इसलिए उन्होंने आदेश दे दिया था कि जहाँ कहीं भी कोई सुरक्षित मृतक शरीर प्राप्त हो जाये, उसे जला दिया जाए ताकि वह आत्मा राजा के शरीर में ही बनी रहे। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण देखे और सुने गये हैं। ऐसे योगी व सिद्ध पुरुषों की घटनाऐं भी उपलब्ध होती हैं जो एक समय में ही दो स्थानों पर देखे गये थे। कुछ सिद्ध पुरुषों की ऐसी भी घटनायें सामने आई हैं जब उन्होंने अपने विपत्तिग्रस्त शिष्यों को अन्नमय शरीर से अलग होकर प्राणमयशरीर से हजारों मील की दूरी पर भी उन्हें बचाया था। चीन के लाबाओं में यह विधि प्रचलित थी। उनके ग्रन्थों में लिखा है कि किस प्रकार प्राणायाम के

सहयोग से अन्नमय कोश से प्राण-मय कोश को प्रथक किया जा सकता है। श्री मुलगेन ने "प्राणामय शरीर का उद्गमन" (Projection of a hal body) नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है। कर्नल टाउन शेंड ने तो प्राणायाम के अभ्यास से प्राणमय शरीर पर नियन्त्रण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी और इस प्रकार के अनेकों सफल प्रदर्शन भी किये थे।

इससे सिद्ध है कि प्राणायाम एक ऐसा वैज्ञानिक व चमत्कारी विधान है जिससे प्राण शरीर को स्थूल शरीर से अलग किया जा सकता है और किसी भी दूसरे शरीर में प्रविष्ट किया जा सकता है, प्राण शरीर से हजारों मील दूर आकर भी दूसरों की सहायता की जा सकती है और प्राण शरीर को अधिक क्रियाशील व शक्तिशाली बनाया जा सकता है। यदि ऐसा किया जाना सम्भव हो जाये तो जीवन की एक महान सफलता होगी।

८. आकाश गमन :

वृहद्योग सोपान' के अनुसार–

प्राणायामत्खेचरत्व प्राणायामदरोगिता।
प्राणायामाच्छक्तिवोध प्राणाय मन्मनोन्मनी।।
आनन्दो जायते धित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

प्राणायाम से साधक आकाश में उड़ने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। ऐसा लगता है कि पक्षियों की भाँति आकाश गमन कर रहा हो। प्राणायाम से उन्मनी शक्ति जाग्रत होती है। साधक का चित्र सच्चे आनन्द से ओत-प्रोत हो जाता है और वह मानसिक सुख शान्ति की अनुभूति करता है।

प्राणायाम से उलझी समस्याओं का सहज समाधान

आज का जीवन समस्या-संकुल है। प्रत्येक प्राणी पग-पग पर अनेक प्रकार की उलझनों से अपने को घिरा पाता है आर्थिक ही नहीं वह पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं से भी संत्रस्त है। योग्य सूझ के अभाव में वे उलझी ही रहती हैं। ज्यों-त्यों वह सुलझाने की कोशिश करता है, त्यों-त्यों अधिकाधिक उलझता ही जाता है। कविवर बिहारी ने ऐसे ही मनुष्य की दशा का चित्रण करते हुए कहा है–

को छुट्यौ यहि जाल परि, कत कुरंग अकुलाइ।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यौं चहैं त्यों २ उरझत आइ।।

अपनी परिस्थितियों से ऊब कर कितने ही व्यक्ति आत्म-हत्या कर लेते हैं। कोई उन्हें माया भव जाल कहता है, तो कोई उन्हें दुर्भाग्य कह-कह कर रात दिन रोता झींकता रहता है। साधारण मनुष्य ही नहीं तथाकथित खूब पढ़े और लिखे सुशिक्षित लोग भी परिस्थितियों से हार मानकर अपने जीवन का निष्कर्ष इन शब्दों में व्यञ्जित करते हैं–"मनुष्य परिस्थितियों का गुलाम है। वह कर्म स्वतन्त्र नहीं है। वह भाग्याधीन है।" इत्यादि इत्यादि।

परिस्थितियों की परिवर्तनशीलता अनिवार्य-

वास्तव में उद्‌गार मोह और कुण्ठ के परिणाम हैं। सूझ-समझ की कमी और यथार्थ दर्शन के अभाव ने ही उसकी विचार शैली को हतप्रभ कर रक्खा है। वह भूल गया है कि संसार घटनाओं

का अनादि प्रवाह है। जिस प्रकार दिन के बाद रात आना स्वाभाविक है, क्रम-क्रम से गरमी वर्षा और जाड़े की ऋतुओं का चाक्रकि क्रम से आना जाना नैसर्गिक है। यदि जन्म हुआ है, तो मृत्यु भी अनिवार्य है। बाल्यावस्था के बाद युवावस्था और युवावस्था के बाद वृद्धावस्था जिस प्रकार आते है उसी प्रकार विविध प्रकार की परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुआ करते हैं। जो व्यक्ति इन परिवर्तनों के अनुकूल अपने को डालने-साधने में जितना असमर्थ होता है, वह उतना ही अपने को विवश पराधीन और दुःखी अनुभव करता है।

पारिवारिक जीवन को ही देखिये। परिवार के सदस्यों की ज्यों-ज्यों संख्या बढ़ेगी त्यों-त्यों उसी क्रम से परिवार की आवश्यकतायें भी बढ़ेंगी। हर व्यक्ति, शारीरिक गठन, रुचि, प्रकृति, बुद्धि, शिक्षा, दीक्षा में एक दूसरे से प्रकृति के नियमानुसार सर्वथा भिन्न होगा। वे यान्त्रिक न होकर चेतन हैं, अतः उनके पारस्परिक व्यवहारों में भिन्नता होना स्वाभाविक ही है। विवाह संस्कार के द्वारा दूसरे अपरिचित परिवार से कन्या ली जाती है। उसकी आदतें, उसके संस्कार और दृष्टिकोण अन्य प्रकार के होना नितान्त प्राकृतिक ही है। अब जो व्यक्ति परिवार की परिवर्तित परिस्थितियों की नैसर्गिक माँग को नहीं समझ पा रहा है, अथवा उनके अनुकूल अपने स्वभाव में, व्यवहार में, अपनी चिन्तन में, आकांक्षा में अपेक्षित परिवर्तन या सोच नहीं ला पा रहा है, बढ़े हुए उत्तरदायित्व के निर्वाण के लिए जिसने समय रहते अपनी क्षमताओं को विकसित नहीं किया है, उसका खिन्न, विपन्न और व्यक्तित्व छिन्न होना अनिवार्य ही है।

समस्या का मनोविज्ञान-

हर समस्या अपने में एक चुनौती है। हर बाधा किसी कमी की पूर्व-सूचिका है। हर किसी उपेक्षा का परिणाम है। हर वियोग प्रकृति का सहज विधान है। उनके अन्तराल में जो प्रवेश कर सकता है, उनसे समाधान के लिये जो उत्साह और धैर्य जुटा सकता है, वह तथाकथित प्रतिकूलताओं में भी सानन्द और सकुशल रह सकता है। आवश्यकता है, समुचित समझ की। आवश्यकता है, समुचित क्रियाशीलता की।

सभी प्रकार की उलझनों को गणित के प्रश्न के समान ही सुलझाया जा सकता है। जो व्यक्ति गणित के प्रश्न की भाषा को नहीं समझता है, जो नहीं जानता कि प्रश्न में क्या-क्या दिया हुआ है, क्या पता चलाना है। कैसे पता चलाना है, प्रश्न को कैसे पकड़ना है, कैसे हल करना है, उसके लिये वह दुर्बोध, दुस्साध्य या गलत लगे तो आश्चर्य की क्या बात है? इसी प्रकार मानव की जीवन्त समस्याओं और उनकी आशा-आकांक्षा के प्रति जो उदासीन या अनभिज्ञ है, वह यदि उन्हें माया, भवजाल, प्रकृति की निष्ठुरता या अभाग्य कहे और उन्हीं भावनाओं में रात दिन डूबता-उतरता, कुढ़ता, कुढ़ाता रहे रोता बिलबिलाता रहे, उसके लिए ईश्वर या किसी और को किसी दोषी ठहराया जा सकता है। उपर्युक्त दृष्टि, सम्यक् विचार सम्यक् चिन्तन तथा समुचित पुरुषार्थ या प्रयास के बिना किसी भी समस्या या अभद्र स्थिति से सुख, शान्ति स्फूर्ति और उत्कर्ष नहीं प्राप्त किया जा सकता है।

प्राणायाम और समस्या का हल-

प्राणायाम की विशिष्ट साधना के द्वारा प्रत्येक प्रकार
समस्या उलझन, विपरीत परिस्थिति और निर्बलता के निर्मू
के लिये सूझ सुबुद्धि और परमात्म बल अर्जित करना स
सम्भव है। जिस प्रकार आज का वैज्ञानिक प्रचण्ड आत्म-सा
यानी पुरुषार्थ के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में प्रकृति को विजय क
रहा है, उसी प्रकार प्राणायाम की विशिष्ट साधना के द्वारा
अपनी प्रकृति को जीत सकता है। परिस्थितियों को अ
अनुकूल बना सकता है। परिस्थितियों पर विजय प्राप्त
सकता है। उन्हें बदल भी सकता है। विषयम से वि
परिसथितियों में खुशहाल रह सकता है। नीचे हम उसी प्र
साधना का विधि विधान लिख रहे हैं–

साधना का विधान-

सिद्धासन या पद्मासन पर बैठ जाइये। बाँये हाथ
अँगुली से दाहिने नासापुट को बन्द कीजिये और 'जय
बुद्धि ! जय महाशक्ति' कहते हुए बांये नथुने से धीरे-धीरे स
लीजिए। यथाशक्ति सुविधा के अनुसार कुछ देर साँस
अन्दर ही रोके रहिये तथा मन ही मन ध्यान कीजिये
आपके चारों ओर परमात्मा का विमल प्रकाश छाया हुआ
आप उस प्रकाश की गोद में सुरक्षित बैठे हुए हैं। प्रकाश
चुम्बकीय किरणें समस्त ब्रह्माण्ड में सब ओर फैल रही
इन्हीं शक्ति तरङ्गों के द्वारा जगन्नियन्ता सारे संसार
सुव्यवस्थित सुसन्तुलित बना रहा है। ज्योति को इन्हीं लहरि

है सम्पूर्ण विश्व को विवेकमयी गणितीय व्यवस्था में बाँध दिया है। परमपिता सर्वसुहृद है, सबका हितैषी है। उसका प्रत्येक विधान दूरदर्शिता से युक्त है। बालक के जन्म लेने से पहले ही माता के स्तनों में दूध भर देता है। वायु-प्रदूषण की विनाशकारी प्रक्रिया के अवरोध के लिए वह इन्हीं रश्मि प्रकर्षों के द्वारा विषैली कार्बन गैस को प्राणदायी आक्सीजन गैस में अहर्निशि परिवर्तित किया करता है। वही ज्वर, काम, अतिसार आदि के रूप में शरीरस्थ विजातीय तत्वों का जरण-क्षरण क्रिया करता है। उसका प्रत्येक विधान मङ्गलमय है वह ही कर रहा है। जिससे मैं उत्कृष्ट स्वस्थ, सुखी और सबल बनूँ। मैं उसकी शुभाकाँक्षा को समझ गया हूँ। वर्तमान विषमता या विघ्न-बाधा मुझे अधिक सजग अधिक सन्तुलित और अधिक कर्मण्य बनने की प्रेरणा देती है। मैं प्रभु के इस प्रबोध को कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता हूँ।

ऐसा मन ही मन चिन्तन करते हुए बाँये हाथ के अंगूठे से बाँया नथुना दबाकर दाहिने नासापुट से 'जय महाबुद्धि ! जय महाशक्ति।' मन ही मन कहते हुए धीरे-धीरे साँस छोड़िए। चार बार 'जय महाबुद्धि ! जय महाशक्ति।' कहने तक सांस को बाहर ही रोके रखिये। फिर दाहिने नथुने से 'जय महा बुद्धि, जय महाशक्ति। कहते हुए सांस भरिये। यथा शक्ति अपनी सुविधानुसार सांस को उपर्युक्त भावना करते हुए अन्दर ही रोकिये। फिर अँगुली से दाहिना नथुना बन्द करके बाँये नथुने से साँस छोड़िये।

इस क्रिया को एक बार से तीस बार तक किया जाना

चाहिए। प्राणायाम की मात्रा क्रम-क्रम से बढ़ानी चाहिये। ए
दम जल्दी-जल्दी प्राणायामों की संख्या बढ़ाना उचित नहीं है
प्रति सप्ताह दो तीन प्राणायाम बढ़ाकर तीस तक का अभ्या
साध लेना चाहिए। इस प्राणायाम को नीचे लिखी कविता के
साथ भी किया जा सकता है। कविता का पाठ मन ही मन
अर्थों पर ध्यान देते हुए भावपूर्ण हो इसका विशेष प्रयत्न करें
में ही परिस्थिति-परिवर्तन हेतु यथेष्ट शक्ति और सूझ उ
महाप्राण से प्राप्त की जा सकती है।

कविता मय आत्म संकेत-

१. साँस भरते समय कहें–

जय महा बुद्धि ! जय महा शक्ति!
जय महा बुद्धि ! जय महा शक्ति!!

(२) साँस को अन्दर रोकने की अवधि में मन ही मन इस
कविता की भावूपर्ण आवृत्ति करें–

हे महा बुद्धि ! हे भर्गो ज्योति!
तू ही ज्ञान–निधान महान।
जननी कुच में प्रसव पूर्व ही।
करता तू ही सब दुग्ध प्रदान।।
महा विशाल सौर मण्डल यह,
अनेक बड़े बड़े ब्रह्मांड।
गणित नियम सो पुण्य व्यवस्था,
विभिन्न प्रकर्षों में गतिमान।।
प्रखर बुद्धि को, दृष्टि को,

समझ सका न तेरी सृष्टि को।
इसलिये हूँ कुष्ठा–ग्रस्त,
सूझ-शक्ति को महा वृष्टि हो।।

अथवा

यदि इतने समय अन्दर साँस रोकने की क्षमता का विकास न हुआ हो, तो जब तक वैसा न कर सकें। तब तक अधोलिखित चार पंक्तियों की किसी एक कविता की मन ही मन आवृत्ति की जा सकती है। पाठ अर्थों पर ध्यान देते हुए कहना अपेक्षित है–

हे महाशुद्ध ! हे शोधन प्रिय ! जिधर भी जाती मेरी दृष्टि।
परिशोधन का नियम ही पाता। सत्य, शिव सुन्दर की दृष्टि।।
ज्वर अतिसारकाम में देखा, विजातीयता का जागरण-क्षरण।
अपान से वायु का वर्तन हो महाशक्ति हो तुम स्पष्ट।।

या

ओत प्रोत हो रहा है विभु से, रोम-रोम मेरा प्रति रोम।
नयनों में भी छाये हुये हो, मधुमय मेरे प्रियतम सोम।।
पूत-पूत प्रेरणायें लेकर, मेरे मन में करते वास।
मेरे मन-बुद्धि प्राणों में भर रहे तुम्हीं उत्साह उल्लास।।

(३) फिर श्वास छोड़ते समय इसे मन ही मन कहिये–

जय महा बुद्धि ! जय महा शक्ति!
जय महा बुद्धि ! जय महा शक्ति!!

(४) सांस को बाहर ही रोके-रोके "जय महाबुद्धि जय महा

शक्ति" चार से छः बार तक कहना चाहिये।

इस प्राणायाम से ईश्वर के स्वरूप की स्पष्टी तो होती ही है, बुद्धि भी सूक्ष्मग्राही बनती है। धैर्य, सहसा उत्साह का प्राणायाम प्रस्फुरण व्यक्ति को क्रियाशील बनाता है। जिससे परिस्थिति अनुकूलन और रुचि प्रकृति का शोधन होकर सुख-समृद्धि होती है।

प्राणायाम की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ

दोषों और दुर्गुणों का निवारण-

प्राणायाम शुद्ध सात्विक यौगिक क्रिया है। इसके द्वारा शुद्ध सात्विक जीवन यापन की दिशा में बड़ी सहायता मिलती है। दुस्संस्कारों की प्रखरता के कारण प्रायः देखा जाता है कि इच्छा रहते हुए भी साधन निर्धारित नियमों का दीर्घकाल तक निर्वाध रूप से पालन नहीं कर पाता है। प्रायः तीन-चार दिन अथवा दो चार सप्ताह से अधिक वह इच्छित साधना नहीं चला पाता। कभी-कभी वह बार-बार की अपनी असफलता को देखकर दोषों-दुर्गुणों की प्रबलता को देखकर इतना घबरा जाता है कि चाहते हुए भी वह उस ओर कोई प्रयास करने से डरने लगता है। हमने कितनों को ही देखा है जो सिगरेट, बीड़ी, शराब, माँस, आदि छोड़ना चाहते हैं किन्तु कुण्ठा के अतिरेक के कारण कुछ डरते हैं। यही बात क्रोध, कामुकता, लोलुपता, वैमनस्य, चिन्ता भय आदि मनोविकारों के विनाश के सम्बन्ध में

देखी गई है। दुस्सङ्ग, जुआ, वेश्यागमन को लोग बुरा समझते हैं, किन्तु उसे छोड़ नहीं पाते हैं, ऐसी दयनीय स्थिति का उपचार यौगिक प्राणायाम की सहायता से सुविधा पूर्वक किया जा सकता है। एकाग्रता, समय-परायणता, स्वच्छता प्रभृति सद्गुणों के विकास में भी वह सहायक है। अतः संक्षेप में हम उसे नीचे दे रहे हैं।

कामवासनाओं के लिए-

मान लीजिये, आप कामवासना के नियन्त्रण में अपने को अशक्त पा रहे हैं। ब्रह्मचर्य व्रत साधारण के लिए अपेक्षित इच्छाशक्ति या आत्मबल की आपमें कमी है, तो आत्मबल की वृद्धि और वीर्य-रक्षण के लिए आपको यह प्राणायाम इस प्रकार करना चाहिए।

'सर्व प्रथम पीठ के बल लेट जाइये। सिर, गर्दन, छाती, सब एक सीध में हों। शरीर को बिल्कुल ढीला कर दीजिये। सब ओर से मन को हटा लीजिये। अब मुँह को बन्द करके साँस अन्दर को खींचिये सरलतापूर्वक जितनी सांस अन्दर भरी जा सके, भरिये। योग की भाषा में इसे पूरक (हवा अन्दर भरना) कहते हैं।

अब अन्दर खींची हुई सांस को जितनी देर तक आसानी से रोक सकते हों उतनी देर तक उसे रोकिये। फिर धीरे-धीरे रुके हुए सांस को बाहर निकालना चाहिए। साँस रोकने की क्रिया को कुम्भक और निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। नियमानुसार जितनी देर साँस अन्दर खींची जाय उतनी देर उसे बाहर निकालने में लगाना आवश्यक है। किन्तु फुफ्फुस से

अन्दर साँस रोकने की अवधि साँस भरने की अवधि (समय) से आधी होनी चाहिए। यही बात साँस को निकालने के बाद दूसरी बार साँस भरने या छोड़ने में जितना समय लगाया है, उससे आधे समय तक ही साँस रोकनी चाहिए।

साँस अन्दर खींचते समय यह भावना करनी चाहिए कि काम शक्ति का प्रवाह जननेन्द्रिय की ओर से मस्तिष्क की ओर हो रहा है। अपने मानसिक नेत्रों के द्वारा यह देखना चाहिए कि हमारा वीर्य स्पष्ट रूप से वीर्य वाहिनी नाड़ियों द्वारा ऊपर चढ़ रहा है। नीचे की नाड़ियों में शीतलता और शांति का प्रसार हो गया है। जब तक साँस रोके रहें ध्यान में जितनी चित्तमयता होगी, उतनी ही तीव्रता वीर्य के ऊर्ध्वगमन में होगी।

जब साँस को बाहर निकालें, तब यह भावना करनी चाहिए कि निःश्वास के साथ काम विकार बाहर निकालते जा रहे हैं, जननेन्द्रिय स्थान पर हल्कापन आ गया है। सभी क्षोभकारी विकार दूर हो गये हैं। वह निर्मल और पवित्र हो गया है।

इस क्रिया को करते समय यदि मूलबन्द लगाया जाये तो वीर्य के ऊर्ध्वगमन की गति तीव्र हो जाती है। मूलबन्ध के लिए सांस अन्दर खींचते समय गुदा का अन्दर की ओर दृढ़ता से संकोच करना चाहिए, जिससे अपान वायु का प्रवेश ऊपर की ओर हो और वह वीर्य की तेजी को (अर्थात् वीर्य-निहित प्राण ऊर्जा) बलपूर्वक ऊपर जाने के लिये प्रेरित करे।

इस प्रक्रिया को केवल एक बार ही अभ्यास करना पर्याप्त नहीं है। कम से कम १०–१५ वार नित्य इस क्रिया को दोहराना चाहिये। यह क्रिया प्रातः काल की अपेक्षा शाम को करना

अधिक लाभकर है। दोनों समय की जाय तो सोने में सुहागा डालना जैसा लाभ होगा।

वीर्य दोषों की निवृत्ति के लिए-

वीर्य दोषों की निवृत्ति के लिए उज्जायी प्राणायाम करना चाहिये। विधि इस प्रकार है–

सुखासन से बैठें। दोनों नासिकाओं से श्वाँस को धीरे-धीरे भीतर खींचे। यह ध्यान रहे कि यह श्वास कण्ठ से हृदय तक ही जा पाये। इस क्रिया के साथ जालन्धर बन्ध लगाना चाहिये। जितना सम्भव हो सके, भीतर खींची हुई वायु को रोकना चाहिए। अब दायें नासिका को बन्द करके बाँये नासिका से प्रश्वास को बाहर निकालें। श्वास रोकते समय यह सावधानी बरतनी चाहिए कि श्वास हृदय से नीचे नहीं जानी चाहिये वरन् क्रम से उसे हृदय से गले में और गले से मुँह में लावे और शनैःशनैः प्रश्वास को बाहर निकालना चाहिये। आरम्भ में ३ प्राणायाम से अधिक नहीं करना चाहिये। अभ्यास बढ़ने पर ही इनकी संख्या बढ़नी चाहिए।

हठयोग के ग्रन्थों में इसके अन्य लाभ भी बताये गये हैं। यथा–

उज्जायी कुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणिसाधयेत्।
न भवेत्कफरोग च चक्रू खायुरजीर्णकम्।।

उज्जायी कुम्भक की क्रिया से सब कार्यों का साधन करना चाहिए। जो साधक इसे करता रहता है। उसे कफ रोग, वायु दोष व अजीर्ण प्रभावित नहीं कर सकते।

पूर्ण इन्द्रिय संयम के लिए-

श्रवण त्वचा, नेत्र, घ्राण और जिह्वा–वह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वाक्, हाथ्, पैर, गुदा और उपस्थ–यह पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। यह दस इन्द्रियाँ मनुष्य के उपयोग के लिए बनी हैं। यह मानव शरीर के आवश्यक अङ्ग हैं। इनमें से किसी एक की कमी हो जाए या उनमें रोग उत्पन्न हो जाए, तो शरीर के स्वाभाविक कार्यों में बाधा उपस्थित होती है परन्तु यदि उन्हें स्वछन्द छोड़ दिया जाय और वह अपने-अपने विषयों पर विचरती रहें तो वह स्वामी की शत्रु बनकर उसका नाशकर देती हैं। इसीलिए अध्यात्म शास्त्र का आदेश है कि कल्याण की इच्छा वाले साधक को इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

शास्त्रों का आदेश है कि हम हाथों से किसी को कष्ट न दें चोरी आदि कोई बुरा कार्य न करें, साधु सन्तों व गुरुजनों की सेवा करें पैर सत्सङ्ग और देव मन्दिर की ओर अग्रसर हो सेवा कार्यों में प्रवृत्त हों, वाणी से मधुर शब्द ही बोलें ऐसे वाक्य न कहें जिससे किसी को बुरा लगे, सत्शास्त्रों और उपदेशों का ही श्रवण करें भगवान के निग्रह और साधु सन्तों के ही वर्णन करें, स्वाद के लिए नहीं, शरीर धारण करने के लिए विवेकपूर्वक खायें।

आज वातावरण बहुत दूषित हो चुका है। उपन्यास पत्रिकायें फिल्मे काम-वासनाओं को भड़काने का आसुरी काम कर रही हैं। नेत्र स्त्री के पवित्र रूप को नहीं, कामी रूप से ही देखते हैं, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का निरीक्षण करते हैं। भजन, कथा

कीर्तन सुनना तो पिछड़े युग की बात हो गई, सिनेमा के गाने ही तथाकथित सभ्य युग की देन है। बीड़ी, सिगरेट, माँस, शराब आदि तामसिक पदार्थों का सेवन आधुनिक सभ्यता का एक अङ्ग बन गए हैं। यह आहार तमोगुणी प्रवृत्तियों को उत्तेजित करते हैं। आहार का कामवासना से घनिष्ठ सम्बन्ध है श्री विजय कृष्ण गोस्वामी का मत है कि शरीर में प्रधान यन्त्र है– जीभ ! जीभ वश में हो जाने से सब कुछ वश में हो जाता है। गांधी जी का कहना है–"ब्रह्मचर्य के साथ अस्वाद का बहुत निकट सम्बन्ध है, मेरे अनुभव के अनुसार इस व्रत का पालन करने में समर्थ होने पर ब्रह्मचर्य अर्थात् जनेन्द्रिय संयम बिल्कुल सहज हो जाता है। इन इन्द्रियों को काबू में रखना ही शक्ति और सिद्धि का साधन है।

हमारे शास्त्रों ने इन्द्रिय निग्रह के लिए उसी उद्देश्य से प्रेरित किया है। गीता ४।२६ में कहा है "जब श्रद्धावान मनुष्य इन्द्रिय निग्रह द्वारा ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करने लगता है तब उसे ब्रह्मार्त्मक्य रूप ज्ञान का अनुभव होता है और फिर उस ज्ञान से उसे शीघ्र ही पूर्ण शान्ति मिलती है। "बुद्धि की स्थिरता के लिए इन्द्रियों को विषयों से खींचना आवश्यक बताया गया है। १।५८ और कछुए का उदाहरण देते हुए कहा गया है कि जिस तरह वह अपने हाथ पैर आदि का अवयव सब ओर से सिकोड़ लेता है, उसी तरह इन्द्रियों के शब्द, स्पर्शादि विषयों से अपनी इन्द्रियों को खींच लेना चाहिए। गीता २।६०।६१ में इन्द्रियों को बलात्कार से मनमानी और साधक को खींच ले जाने वाली शक्ति कहा गया है। जो उनके प्रवाह में बह जाता

है, उसका आत्मिक पतन हो जाता है। जो उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाता है, उसका उत्थान होता है। गीता ३।६।७ में इन्द्रियों के प्रति कड़ा रुख अपनाने को अहितकर बताया है और जो हाथ पैरादि पर रोक लगाकर मन से विषयों का चिन्तन करता है, उसे दाम्भिक कहा है। भगवान ने परामर्श दिया है कि उसकी योग्यता विशेष है जो मन से इन्द्रियों का आकलन करके केवल कर्मेन्द्रियों द्वारा अनासक्त बुद्धि से कर्मयोग का आरम्भ करता है। इसी को दृष्टि में रखते हुए वसिष्ठ ने इन्द्रिय निग्रह को मानस तीर्थ कहा है जो इसमें स्नान करता है वह पवित्र हो जाता है। महाभारत उद्योग पर्व में स्पष्ट कहा है कि इन्द्रियों को काबू में रखना ही ज्ञान है और वही मार्ग है जिससे कि बुद्धिमान लोग उस परम पद की ओर बढ़ते हैं। कोई अजितेन्द्रिय पुरुष श्री हृषीकेश भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता। तुकाराम ने भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए व्यंग से कहा है ईश्वर के पास कुछ मोक्ष की गठरी नहीं धरी है कि वह किसी के हाथ में दे दें। यहाँ तो इन्द्रियों को जीतना और मन को निर्विषय करना ही मुख्य उपाय है।

मनुस्मृति (६।६१।७२) में प्राणायाम के अभ्यास के इन्द्रियों के पवित्र दोष रहित होने का आश्वासन दिया है............

ब्रह्मन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मला।
तथान्द्रियाणां ब्रह्मन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात्।।७१
प्राणायामैदहेदोषान्धारणाभिश्च किलिवषम्।
प्रत्याहारेण ससर्गान्धया नेनानीश्वरान्युशात्।।७२

(मनु० अ० ६।७१।७२)

"प्राण निरोध से इन्द्रियों के दोष वैसे ही चलते हैं जैसे अग्नि में धौंकने से धातुओं के मल नष्ट होते हैं। प्राणायाम साधना से रोगादि दोषों को, धारणा से पापों को, इन्द्रिय निरोध से विषय वासनाओं की ओर ध्यान सिद्धि से मोहादि गुणों को नष्ट कर दे।"

हठयोग प्रदीपिका (२।५) में कहा है कि मल शुद्धि के लिए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

तदेव जायते योगी प्राणसंग्रणे क्षमः।।५

वृहद्यागियाज्ञवल्क्य स्मृति (८–४०) में घोषणा है 'जो व्यक्ति नित्यसूर्योदय के समय सौ प्राणायाम करता है, वह निर्मल होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है।"योग वसिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ जी भगवान् राम को उपदेश देते हैं–"अभ्यास के द्वारा प्राणों की गति रुक जाने पर मन शान्त हो जाता है और केवल निर्माण ही शेष रह जाता है (५, ८७।४६)। जैसे पंखा बन्द कर देने से हवा की गति रुक जाती है, वैसे ही प्राण के निरोध होने से निश्चित ही मन शान्त हो जाता है (६६।६।४१) हे राम ! प्राणशक्ति का निरोध होने से मन का निरोध हो जाता है। जैसे अन्य पदार्थों की अपनी छाया होती है वैसे ही प्राण की छाया मन है (५।१३।८२)। हे राम ! प्राणों को वश में कर लेने से मनुष्य राज्य प्राप्ति से लेकर, मोक्ष प्राप्ति तक की समस्त सिद्धि सम्पदायें प्राप्त कर सकता है (६।८०।३५)। 'स्नायु चिकित्सा के ख्याति प्राप्त विशेषज्ञ डा० वाल्गोसी ने अपनी पुस्तक में, स्नायु रोगों से ग्रस्त लोगों को एक सन्देह में यह माना है कि प्राणायाम साधना से मनोविकारों का दमन व मानसिक स्थिरता

सफलता पूर्वक प्राप्त की जा सकती है।

योग दर्शन (२।५२) में भी मलों का नाश होकर ज्ञान के प्रकाश की पुष्टि की है–

ततः क्षीयते प्रकाशावरणाम्

"प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान के आवरण का (विवेक ज्ञान का पर्दा) नाश हो जाता है।"

प्राणायाम का अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे मनुष्य के सचित कर्मों के संस्कार,अविधा जनित क्लेश जो कि ज्ञान के आवरण रूप हैं दुर्बल होते जाते हैं। इसी आवरण से ज्ञान ढका रहने के कारण सांसारिक विषय वासनाओं से पीड़ित मनुष्य दुःखों को भोगता रहता है। अतः यह संचित कर्मों का पर्दा प्राणायाम के अभ्यास से शनैः शनैः क्षीण हो जाता है, तब विवेक ज्ञान रूपी प्रकाश का उदय हो जाता है। जैसे तपाये हुए सोने के सभी मल नष्ट हो जाते हैं।

तपो न परं प्राणायामात्ततौ विशुद्धिर्मलाना दीप्तश्च ज्ञानस्य।।१६

"प्राणायाम से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है इसकी साधना से मलों की शुद्धि होती है और ज्ञान का प्रकाश होता है।"

इन्द्रियों की स्थिरता, पवित्रता व मलों की शुद्धि के लिए उदस्थल शुद्धि-प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। विधि इस प्रकार है–

पद्मासन से बैठे। रीढ़ की हड्डी को सीधा रखें। दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वाँस भीतर खींचे। जब पूरा श्वांस

खिंच जाये तो दायें नासिका को दाँयें हाथ के अँगूठे से बन्द करके प्रश्वांस को धक्का देकर बाँयें नासिका से बाहर निकालना चाहिए। फिर दोनों नासिकाओं से श्वांस भीतर खींचकर बायें नासिका को बन्द कर दायें नासिका से प्रश्वास धक्का देकर बाहर निकालें। इसी प्रकार से अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाते रहें।

अन्य दोषों के निवारण के लिए-

जिस प्रकार के दोषों को दूर करना है उसके अनुकूल कल्पना करना आवश्यक है। प्राण-प्रवाह की आज्ञा चक्र की और बहाने के लिए नासा द्वारा ये साँस खींचकर वैसा संकेत दें मानव चित्र में वैसा ही ध्यान करते रहें। साथ ही यह भावना भी करते रहें कि इस ऊर्ध्वगमन से मेरा आत्मबल बढ़ रहा है। मेरा प्राण प्रबल हो रहा है। मेरी सङ्कल्प शक्ति सबल हो रही है। मुझमें आत्म-विश्वास, निर्भरता, धैर्य और स्थैर्य की भरमार हो रही है। मेरी नस-नस उसी से फड़क रही है।

सांस छोड़ते समय ऐसा चिन्तन कीजिये कि मनोबल विकार निःश्वांस के साथ निकल रहे हैं। मेरा अन्तःकरण अब शुद्ध और सबल हो गया है।

याद रहे, यह आत्म-कथन कोरा शब्दात्मक न होकर "भावप्रणव" होना चाहिए। अनुभूति मय (मानसिक चित्रमय) होना चाहिए। जो शब्द आप मन ही मन कहें, उसी का ध्यान भी करें। उसी के चित्र कल्पना के द्वारा अपने मनस्तल पर अंकित करें। तभी उन संकेतों के द्वारा प्राणशक्ति अभीष्ट दिशा में प्रवाहित हो सकेगी और आपके मनोरथों को पूर्ण करेगी।

भाव, संकेत, कल्पना या चिन्तन के द्वारा प्राणशक्ति का संग्रह संचय किया जाता है।

आत्म संकेतों की प्रबलता से ही प्राणशक्ति प्रखर होती है। आत्म संकेतों के द्वारा ईश्वर-व्यापी महा-प्राण को आत्मस्थ किया जाना सम्भव है। उसके आभूषण का वही सहज उपाय है।

आत्म-संकेतों के द्वारा ही आत्म-सम्मोहन होता है और दोषों, दुर्गुणों तथा दुष्प्रवृत्तियों का नाश होकर सद्‌गुण, सद्‌भाव और सत्प्रवृत्तियों का विकास होता है। जीवन-प्रवाह निम्न धरातल से ऊपर उठकर मनोविकास, बुद्धि-विकास के साथ ही साथ जीवन स्तर को भी उच्च-स्तरीय बना देता हैं उत्कृष्ट दृष्टिकोण के आने से, रहन-सहन में आहार-बिहार में आचार-व्यवहार में उत्कृष्टता का समावेश होने लगता है। मनः शान्ति और अद्‌भुत मस्ती आती है। तब हमारा सोचने-समझने और विचार करने का ढंग एकदम बदल जाता है। शक्ति, स्फूर्ति उत्साह और उज्जवलता सभी समस्याओं और अभावों को यथा शीघ्र नष्ट करते हैं। अतः भाव की प्रगाढ़ता के द्वारा हमें अपने आत्म-संकेतों को प्राणवान् बनाना चाहिए। प्राणवान् संकेत ही परिपक्व होकर प्रबल आत्मविश्वास, प्रखर इच्छा शक्ति और सफल-संकल्प बनते हैं। संकेतों की परिपक्वास्था ही मनो निग्रह है, सहज ध्यान है।

यदि आप अपने में आत्म-बल की न्यूनता (कमी) अनुभव करते हैं, यदि आप जल्दी-जल्दी घबड़ा जाते हैं, भय कुण्ठा के कारण बेचैन रहते हैं, कुत्सित चित्र, कुत्सित आकृतियाँ आपको हर ओर दिखाई देती हैं, हरदम संत्रस्त करती है, यदि आपको

नींद नहीं आती, हर समय अवसाद, थकान और आलस्य लगता रहता है, किसी काम में जी नहीं लगता, हर ओर अपने शत्रु ही शत्रु दिखाई देते हैं, तो निश्चय जानिए कि आपका मानसिक संस्थान विकृत है, रोग ग्रस्त है। ऊपर बताई हुई विधि से तीन महीने प्राणायाम कीजिये। आप अपने में अनेक आह्लादकारी परिवर्तन पायेंगे। मानसिक प्रवृत्तियों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए, मस्तिष्क को शान्त, शीतल और चैतन्य बनाने के लिए, मानसिक गुणों की अभिवृद्धि के लिए भी भावना पूर्वक उपर्युक्त प्राणायाम करना चाहिए। इसके अद्‌भुत लाभ देखकर विदेशों में भी इसका दिन-दिन प्रचार-प्रसार बढ़ता जा रहा है। अब तो मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों ने भी इसकी श्रेष्ठता को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। वे भी अपनी चिकित्सा पद्धति में इस विधि को स्थान देने लगे हैं अन्तर्राष्ट्रीय मेडीकल ऐसोसियेशन के लोकउर्डस किया अस्पताल में असाध्य मानसिक-शारीरिक विकारों की चिकित्सा में भी इस 'मानसिक साँस' को प्रमुख स्थान दिया गया है।

ज्ञान का विकास और विवेक की जागृतिः

योग दर्शन (२।१५) में महर्षि पतन्जलि ने लिखा है–

ततः क्षीयते प्रकाशवरणम्।

"प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान के आवरण का नाश होता है, अज्ञानान्धकार से निवृत्त होकर ज्ञान का विकास होता है और विवेक की जागृति होती है।"

ज्ञान की रूपरेखा शास्त्रों ने इस प्रकार से वर्णित की हैः–

श्वेताश्वेतरोपनिषद् के ऋषि ने अपनी अनुभूति को सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है 'वही अग्नि है, वह वायु है तथा वही चन्दमा है, वह अन्यान्य प्रकाशयुक्त नक्षत्र आदि है, वह जल है वह प्रजापति है, वही ब्रह्मा है'' (४।२) तू स्त्री है, तू पुरुष है तू ही कुमार है, अथवा कुमारी है, तू बूढ़ा होकर लाठी के सहारे चलता है तथा तू ही विराट रूप से प्रकट होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है।'' (४।३) तू ही नीलवर्ण पतंग है, हरे रंग का और लाल आँखों वाला पक्षी एवं मेघ बसन्त आदि ऋतुयें तथा सप्त समुद्र रूप है, क्योंकि तुझसे ही सम्पूर्ण लोक उत्पन्न हुए हैं, तू ही अनादि (आकृतियों) का स्वामी है और व्यापक रूप से सब में विद्यमान है।

जो व्यक्ति इस ज्ञान को व्यवहारिक रूप में ग्रहण करता है उसी का जीवन सफल हो पाता है। गीता में भगवान ने इसे भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाया है। उन्होंने कहा है–''जो आत्मा मुझ में है, वही सब प्राणियों में है।'' ''मैं सब प्राणियों में हूँ और सब प्राणी मुझ में है (६।६६) ''जो कुछ है, वह वासुदेव मय है'' (१७–१४)। ऐसी बुद्धि रखने वाले को ही भगवान ने पण्डित कहा है–''पण्डितों अर्थात् ज्ञानियों की दृष्टि विद्याविनय युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी ऐसे ही कुत्ता और चाण्डाल सभी के विषय में समान रहती है।'' (५।१८)। ऐसे व्यवहारिक ज्ञान रखने वाले पंडित और ज्ञानी को ही भगवान अपना परम पद प्रदान करते हैं। गीता में भगवान आश्वासन देते हुए कहते हैं।

''जिनकी ज्ञान दृष्टि में समस्त प्राणियों की भिन्नता का नाश हो चुका और जिसे वह सब एकस्थ अर्थात् परमेश्वर

वरूप दीखने लगते हैं ब्रह्म में मिल जाता है"(१।३।३०)

जो मुझे (परमेश्वर) को सब स्थानों में और सबको मुझमें खता है उससे मैं कभी नहीं बिछुड़ता और न वह ही मुझसे भी दूर होता है" (६।३०) "जो एकत्व बुद्धि अर्थात् सर्व तार्मस्य बुद्धि को मन में रखकर प्राणियों में रहने वाले मुझको परमेश्वर को) भजता है वह कर्मयोगी सब प्रकार से बतता आ भी मुझ में रहता है"(६) "यह अनुभव हो जाने से कि "जो छ है वह सब वासुदेव ही है ज्ञानमय मुझे पर लेता है।" ।१६)।

जिस ज्ञान से यह मालूम होता है कि वह भक्त अर्थात् भिन्न-भिन्न सब प्राणियों में एक ही अविभक्त और अव्यय भाव थवा तत्व है उसे सात्विक ज्ञान जानो" (१८।२०)। जिसे मस्त प्राणीमात्र में समदृष्टि हो, वह मेरी परम भक्ति को प्राप्त र लेता है।" (१८।५४)। कैवल्योपनिषद् में भी कहा है "जो त्मा को सब भूतों में और सब भूतों को आत्मा में देखता है, ह परब्रह्म को प्राप्त करता है, दूसरे किसी उपाय से नहीं।" शावास्योपनिषद् का कथन है "बुद्धिमान पुरुष-प्राणी में परब्रह्म रुषोत्तम को समझकर लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।

ज्ञान का अभिप्राय शास्त्रों का गहन अध्ययन करना अथवा नकी अधिक से अधिक जानकारी मात्र बढ़ा लेना नहीं है। न् प्राणी मात्र में ईश्वर को व्यापक समझ कर उसके अनुरूप ससे व्यवहार करना ही वास्तविक ज्ञान है। जब हर प्राणी में वर की चलती-फिरती प्रतिमा अनुभव होने लगती है तो वह से हानि पहुँचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कल्पना भी

नहीं कर सकता, कोई भी अपना शत्रु प्रतीत नहीं होता, किससे ईर्ष्या द्वेष करे, किस पर क्रोध करे शिष्ट व्यवहार ही उसके स्वभाव का एक अंग बन जाता है। ज्ञानी साधक घृणा करना भूल जाता है, वह भी प्रेम के अमृत का रसास्वादन करता है। किसी से अन्याय व अत्याचार करना वह ईश्वर के साथ ही ऐसा व्यवहार करना मानता है। प्राणी मात्र का स्वार्थ ही अ उसका अपना स्वार्थ हो जाता है तो झूठ, छल, कपट, घृ स्वार्थ व अविवेक पूर्ण कृत्य उससे कैसे हो सकते हैं, ऐसा साधक ज्ञान व विवेक कीं साक्षात् प्रतिमा बन जाता है। उसका जीवन धन्य हो जाता है।

योगाचार्य पतंजलि ने अपने अनुभव के आधार पर दृ आश्वासन दिया है कि प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से अज्ञान दूर होता है और ज्ञान व विवेक का विकास होता है।

मानसिक एकाग्रता

मन का चंचल स्वभाव प्रसिद्ध है। उसे नियन्त्रण में रखना अत्यन्त कठिन है। यही शिकायत अर्जुन ने भगवान कृष्ण की थी–

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलब्द् दृढ़म्।
तस्याहूँ निग्रहं मन्ये वायोरिव मुदुष्करम्।।

''यह मन अत्यन्त चंचल, अस्थिर, शक्तिशाली, मथने वाला व दृढ़ है। इसे नियन्त्रण में लेना व स्थिर रखना उतना ही कठिन है जितना वायु की गति को रोकना।

मन की गति अत्यन्त तीव्र है। वह हजारों मील की यात्रा

क्षण भर में तय करता है। क्षण भर में बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, न्यूयार्क आदि में घूमने की क्षमता रखता है। वह अपनी इच्छानुसार शरीर को नचाता है, जहाँ चाहे घुमाता है। इन्द्रियों और विषयों को अपने नियन्त्रण में रखता है, मनुष्य का सुख-दुःख उन्नति अवनति और बन्धन मोक्ष इसी पर निर्भर है क्योंकि जैसा मन होता है, वैसे ही कार्यां में मनुष्य प्रवृत्त होता है। उपनिषद् का कथन है ''मनुष्य के (कर्म से) बन्धन या मोक्ष का मन ही कारण है। मनके विषयासक्त होने में बन्धन और निष्काम या निर्विषय अर्थात् निसङ्ग होने से मोक्ष होता है।'' (मैत्रयु ६।३४, अमृत बिन्दु, ब्रह्म बिन्दु २।३) वेद शास्त्र भी मन की असाधारण शक्ति का समर्थन करते हैं। यथा–

यजुर्वेद १७।२५ में मनन शक्ति से संसार की उत्पत्ति बताई गयी है। कहा है 'सूर्य उत्पादक सर्वधारक ईश्वर ने मनन शक्ति से निश्चित ही जब जल को तथा इन दोनों से बने द्युलोक तथा पृथ्वी लोक को उत्पन्न किया तब ही इन दोनों के अन्तः प्रदेश को भी दृढ़ किया। अनन्तर उत्कृष्ट द्यावा पृथ्वी विस्तार को प्राप्त हुई।' 'यजुर्वेद के तृतीय अध्याय के ५४ वें मन्त्र में प्रार्थना है कि ''पुनः यह मनन शक्ति हमको सत्कर्म के लिए, बल के लिए भली भाँति प्राप्त हो। आगे ५५ वें मन्त्र में प्रार्थना है कि ''हे विद्या दान से पालन करने वाले महानुभावों आप जो देवत्व गुण युक्त श्रेष्ठ विद्वान् हैं, हमें पुनः मनन शक्ति प्रदान करें जिससे हम सत्य भाषण आदि व्रतों से युक्त जीवन बना सकें। यदि हम अपनी मनन शक्ति को जीवन म सत्य व्रतों को धारण करने में लगा दें तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर,

चिन्ता, कलह, क्लेश, दु:ख, ईर्ष्या, द्वेष, राग आदि हमारे शत्रु हमें दिन रात जलाते रहते हैं, अपने प्रतिकूल वातावरण देखकर अनुकूल वातावरण में जाने के लिए उत्सुक रहेंगे और उनके छोड़ने पर हमारे ऊपर निरन्तर सुख शाँति एवं आनन्द की वर्षा होती रहेगी। यही सुनिश्चित है और वह दिन दूर नहीं जब यह मैला मन घुलने पर ज्योतिर्मय प्रभु के दर्शन हों।

गीता १०।२२ में भगवान ने कहा है "इन्द्रियों में मन मैं हूँ। प्रश्नोपनिषद् (२।२) में भी मन को देवता कहा है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार जी ने नारद जी को उपदेश देते हुए कहा "मन ही आत्मा है, मन ही लोक है और मन ही ब्रह्मा है। तुम मन की उपासना करो। वह जो कि मन की 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, उसकी जहाँ तन मन की गति है वहाँ तक स्वेच्छागति हो जाती है। मुक्तिकोपिनिषद् में कहा है 'सहस्रों अंकुर त्वचा, पत्ते, शाखा एवं फल फूल से युक्त इस संसार वृक्ष का मन ही मूल हैं यह निश्चित हुआ और वह मन संकल्प रूप है। संकल्प को निवृत्त करके उस मनस्तत्व को सुखा डालो जिससे यह संसार वृक्ष भी निराश होकर सूख जाये। "तैत्तरीयापनिषद् में भी मन को ब्रह्म कहा है और कहा है कि "सचमुच मन से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर मन से ही जीते हैं। तथा इस लोक से प्रयाण करते हुए (अन्त में) मन में ही नये प्रकार से प्रविष्ट हो जाते हैं।"

स्वामी विवेकानन्द का वचन है "मन की दुर्बलता सब प्रकार के बन्धनों की जड़ है। जब तक हमारा मन अशक्त नहीं हुआ है, तब तक दु:खों की क्या मजाल है जो वह हमारी ओर

आंख उठाकर भी देखें शक्ति ही हमारा जीवन और दुर्बलता ही मृत्यु है। मनोबल ही सुख सर्वत्र, चिरन्तन जीवन और अमृत्व तथा दुर्बलता ही रोग समूह दुःख और मृत्यु है।

मैत्रेयोउपनिषद् (५।७) में कहा है "परशाँत धन वाला पुरुष जब आत्मा में स्थिति लाभ करता है, तब वह अक्षय आनन्द की प्राप्ति करता है।" महोपनिषद् "अमृत के पान करने से तथा लक्ष्मी के आलिंगन से वैसा सुख प्राप्त नहीं होता जैसा सुख मनुष्य मनं की शांति से प्राप्त करता है। "कबीर "जग में वैरी कोई नहीं जो मन शीतल होय" मनु० (४।१६०) जो दूसरों की "(बाह्य वस्तुओं की) अधीनता में वह है सब दुःख है और जो अपने (मन के) अधिकार में है, वह है। यही सुख दुःख का संक्षिप्त लक्षण है। "महाभारत "मन से दुःखों का चिंतन न करना ही दुःख निवारण की अचूक औषधि है। "भृर्तहरि "मन के प्रसन्न होने पर क्या दरिद्रता और क्या अमीरी दोनों समान हैं।" प्रसिद्ध यूनानी तत्ववेत्ता प्लूटो का कहना है कि "शारीरिक अर्थात् बाह्य आधिभौतिक सुख की अपेक्षा मन को सुख श्रेष्ठ है।"

अतः निश्चित हुआ कि मन पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही विश्व विजय का अधिकारी होता है। वह जीवन के हरक्षेत्र में असाधारण विकास व सफलता प्राप्त करता है। आत्मविकास भी बिना मनोजय के हो ही नहीं सकता।

मनोजय के हमारे शास्त्रों में अनेकों उपाय वर्णित किये गए हैं, उनमें एक प्राण शक्ति का उपयोग है। यह प्राण साधारण शक्ति नहीं है। अथर्ववेद के ११ वें काण्ड में उसे विराट प्रेरक,

सूर्य, चन्द्रमा प्रजापति की संज्ञायें दी हैं और यह कहा है कि इसी कारण से सभी लोग इसकी साधना करते हैं।

प्राणो विराट् प्राणो देस्ट्री प्राण सर्व उपासते।
प्राणा हि सूर्यश्चन्द्रमा प्राणयाहु प्रजापतिम्।।

जिस प्राण के वश में सारा संसार है, जो सभी प्राणियों का ईश्वर है जिसमें सारा संसार प्रतिष्ठित है, उसे साधक नमस्कार करता है–

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वेस्येश्वनी यस्मिन सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

(अथर्व० का० ११)

प्राण के आधार पर ही यह ब्रह्मांड स्थित है, जो प्राण को वश में कर लेता है, यह सारे संसार को नियंत्रण में करने की क्षमता रखता है। वह असाधारण शक्तियों का स्वामी हो जाता है जिसे लोग चमत्कार की संज्ञा देते हैं।

प्राण मन से शक्तिशाली है। अतः इसे नियन्त्रित करने की क्षमता रखता है। शास्त्र का प्रमाण है–

चित्त प्राणेन सम्वद्धं सर्वजीवेषु संस्थितम्।
रज्जवा यद्वत्सु सबद्धः पक्षी तब विदं मनः।।
नानाविधैविचारैस्तु न बाध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एवं हि नान्यथा।।

"प्राण मन को अपने अधीन रखता है। समस्त प्राणियों का चित्त प्राण के साथ उसी तरह बंधा रहता है जैसे रज्जु से पक्षी बँधा रहता है। विचार द्वारा मन को वश में करने का प्रयत्न

किया जाय तो मन इसके लिए बाध्य नहीं है। अतः मनोजय का एकमात्र उपाय प्राणशक्ति को सक्रिय रखने की शक्ति प्राणायाम है।"

भागवत में उद्धव के पूछने पर भगवान कृष्ण ने उनका समाधान करके कहा है कि ओंकार जप के साथ रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करने से प्राण निरोध में सहायता मिलती है और मानसिक शांति प्राप्त होती है।

प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः सवेशयेत्वरम्।।

हठयोग प्रदीपिका (२।४२) में भी इसकी पृष्टि करते हुए कहा गया है कि जब प्राण का सुषुम्ना में संचार होने लगता है तो मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है।

मारुते मध्य संचारे मनः स्थैर्य प्रजापते।।

ऋग्वेदादि–भाष्य भूमिका में स्वामी दयानन्द ने प्राणों की स्थिरता से मन की स्थिरता का अनुमोदन करते हुए कहा है–

"जैसे भोजन के पीछे किसी प्रकार से वमन हो जाता है, वैसे ही भीतर की वायु को बाहर निकाल के सुखपूर्वक जितना बन सके उतना बाहर ही रोक दें। पुनः धीरे-धीरे भीतर लेके पुनरपि ऐसे ही करें। इसी प्रकार बारम्बार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से मन, मन के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है।"

योग दर्शन (२।५३) में कहा है–

'धारणासु च योग्यता मनसः।

प्राणायाम के निरन्तर जप से मन की चञ्चलता नष्ट है

जाती है और उसमें धारण की शक्ति आ जाती है। शङ्कराचार्य की प्रबल स्मरण शक्ति का एक ऐसा ही उदाहरण है। उनके एक शिष्य पद्मपाद ने वेदान्त पर एक भाष्य लिखा था जो आग लगने से भस्म हो गया। इसे एक बार पद्मपाद ने शंकराचार्य को सुनाया था। शंकर ने शिष्य को निश्चित करते हुए कहा कि तुमने उसे मुझे एक बार सुनाया था अतः वह मुझे स्मरण है। मैं बोलता हूँ, तुम उसे लिखते जाओ। इस तरह से वह वेदान्त भाष्य तैयार हो गया। स्वामी विवेकानन्द की स्मरण शक्ति का अनुभव जर्मन दार्शनिक पाल ड्यूसन ने देखा था। एक बार स्वामी जी एक कविता की पुस्तक के अध्ययन में इतने लीन हो गए कि प्रो० पाल चाय की प्रतीक्षा में काफी देर तक खड़े रहे और उन्हें इसका भान तक न हुआ। फिर पहली बार की पढ़ी लम्बी कविता तुरन्त ज्यों का त्यों सुना दी। प्रो० पाल चकित रह गए और इसका कारण पूछा तो स्वामीजी ने बताया कि ब्रह्मचर्य के पालन और प्राणायाम के अभ्यास से चित्त की एकाग्रता को प्राप्त होने पर सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है।

मन को एकाग्र करने के लिए प्राणायाम की विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है जो इस प्रकार है--

१. भ्रामरी प्राणायाम :

इस प्राणायाम में रेचक की विशेषता है जो भंवरी के शब्दों से ही मिलता जुलता है। इसलिये इसका नाम भ्रामरी हुआ है। पूरक भौंरे की तरह तेजी के साथ किया जाता है।

वीरासन में बैठे भ्रूमध्य में ध्यान करें, दोनों नासिकाओं से

स्वर में इस तरह पूरक करें कि ध्वनि भौंरे की तरह हो। कुम्भक जितना सुविधापूर्वक हो सके करें। तत्पश्चात रेचक इस प्रकार करें जिससे भौंरे की तरह मन्द-मन्द ध्वनि सुनाई दे। ध्वनि में मिठास और सुरीलापन हो। इस प्राणायाम में उड्डीयन तथा मूलबन्ध भी लगने चाहिए। घेरण्ड संहिता में अँगुलियों से कानों को बन्द करके उपरोक्त ध्वनियाँ सुनने का विधान मिलता है।

अनुलोम विलोम भ्रामरी प्राणायाम की विधि इस प्रकार से है कि बायें नासिका से श्वांस खींचे, तथा शक्ति से उसे रोकें, फिर दाँये नासिका से निकाल दें। इसके बाद दायें नासिका से श्वास खींचे और यथाशक्ति रोककर दायें से बाहर निकाल दें। यह एक प्राणायाम की विधि हुई। इससे मन की एकाग्रता बढ़ती है।

२. मूर्छा प्राणायाम

पद्मासन में बैठें, दायें हाथ के अँगूठे से दायें नासिका को दबायें और पूरक करें। यथा शक्ति कुम्भक करें। इस क्रिया के साथ जालन्धर बन्ध भी लगाना चाहिए और दृष्टि भ्रूमध्य कर सुविधानुसार कुम्भक करके दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालना चाहिए। श्वास रोकने की स्थिति में मन को इस प्रकार विलीन करने की चेष्टा करें जिससे वह मूर्छित सा हुआ प्रतीत हो। यही क्रमं दूसरी नासिका से भी करना चाहिए। अभ्यास बढ़ाने से मानसिक शान्ति मिलती है, मन की चंचलता कम होती है और एकाग्रता की स्थिति आने लगती है।

३. षण्मुखी रेचक प्राणायाम :

इसका पूरक-रेचक भ्रामरी प्राणायाम की तरह ही है। अन्तर यह है कि इसमें दोनों कानों को, दोनों हाथों के अँगूठे से दोनों नेत्रों को दो तर्जनियों से, दोनों नासिकाओं को मध्यमाओं से और मुख को अनामिका व कनिष्ठका से बन्द किया जाता है। इसमें जालन्धर बन्ध लगाना चाहिए, यथा शक्ति वाह्य कुम्भक करते हुए ध्यान भ्रूमध्य पर जमा रहे। इसके बाद जब पूरक करने की आवश्यकता प्रतीत हो तो बाँये हाथ की मध्यमा को उठायें और श्वांस लें फिर श्वांस को रोके बिना ही इसी ओर से श्वांस निकाल दें और श्वाँस को बाहर रोकने का प्रयत्न करे। इसी तरह दांये-बाँये क्रम से करना चाहिए। इससे मन की चपला समाप्त होने के दिव्य चक्षु खुलने का महान लाभ भी प्राप्त होता है।

४. सूक्ष्म-श्वास प्रश्वास प्राणायाम

इस प्राणायाम में बाहर का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। आहार की मात्रा साधारण क्रम से कम हो तो अच्छा है। इसके अभ्यास में श्वास निकालने की दूरी को क्रमशः कम करना पड़ता है। सुखासन में बैठ कर प्रथमतः एक फुट पर तिपाई पर रुई रक्खें। यह देखना चाहिए कि श्वाँस छोड़ने पर रुई उडती तो नहीं। दूरी उतनी हो जिस पर रुई को उड़ना नहीं चाहिए। केवल हिलना चाहिए। इस अभ्यास को एक सप्ताह तक करें। अब रुई की दूरी को २ इन्च कम करें और श्वांस को इस प्रकार छोड़ें कि अब भी रुई उड़ न पावे केवल हिले। इस स्थिति में भी एक सप्ताह तक अभ्यास करे। धीरे-धीरे

अभ्यास को उतना बढ़ा लें कि रुई बिल्कुल निकट आ जाये परन्तु श्वांस छोड़ने पर भी वह न उड़े, न हिले। इसके अभ्यास में मन लगा रहकर एकाग्र स्थिति में आ जाता है।

(५) सप्त व्याहृति-प्राणायाम

सप्त व्याहृतियाँ हैं—ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम। प्राणायाम के साथ उसका मानसिक जप सप्त व्याहृति प्राणायाम कहलाता है। वीरासन में बैठना चाहिए। श्वांस खींचने में इतना समय लगाना चाहिए कि एक बार सप्त व्याह्वतियों का जप हो जाय। श्वांस रोकने में चार बार और छोड़ने में दो बार उसका मानसिक जप होना चाहिए। यह एक प्राणायाम हुआ। इसका यथाशक्ति अभ्यास करें। मन की चपलता का अभाव होने से शान्ति और एकाग्रता का अनुभव होता है।

उपरोक्त प्राणायाम में से कोई भी अपनी सुविधानुसार करके अभीष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अमरता की प्राप्ति

इस जगत की तीन स्थितियाँ हैं—उत्पत्ति, स्थिति व नाश हर वस्तु यहाँ उत्पन्न होती है, उसका पालन, पोषण तथा विकास होता है। और निश्चित अवधि समाप्त होने पर वह नष्ट हो जाती है। इसका नियमन एक ऐसी शक्ति करती है जिस पर किसी का अधिकार नहीं है। यह कार्य अपने स्वाभाविक रूप व गति से चलते रहते हैं। प्रथम दो गतियों में तो सभी को सन्तोष व प्रसन्नता होती है, परन्तु तीसरी गति-विनाश की कल्पना से ही भय लगता है। मानव की इच्छा यही रहती है कि उसकी

मृत्यु न हो, वह सदैव स्थिर ही रहे। वास्तविकता यह है कि विनाश इसकी स्वाभाविक गति है। इसे नष्ट होकर नवीन उज्ज़वल रूप धारण करना ही है परन्तु अज्ञान के कारण मानव अनिश्चित भविष्य की कल्पना करके भयभीत हो जाता है।

आधुनिक विज्ञान ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। वैज्ञानिक मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसके मूल सिद्धान्तों को लम्बे समय से खोज हो रही है। अभी तक पूर्ण रूप से उसमें सफलता नहीं मिल पा रही है।

फ्रांस के डाक्टरों ने कुछ नवीन औषधियों का आविष्कार किया है जिनके सेवन से बाल काले ही रहते हैं सफेद नहीं होते। दांत सुदृढ़ रहते हैं, गिरते नहीं। नेत्रों की ज्योति अन्त तक पूर्ववत् बनी रहती है। शरीर पर वृद्धावस्था की निशानी झुर्रियाँ नहीं पड़ती। शारीरिक सौन्दर्य युवावस्था की तरह बना रहता है। स्मरण शक्ति क्षीण नहीं होती वरन् यह यौवन की तरह स्थिर रहती है। कहते हैं उन्होंने इसका अनुभव अनेकों व्यक्तियों पर किया है और वह इसमें सफल हुए हैं।

रूस के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक को चार बार मरने से बचा लेने की घटना इस प्रकार है–

रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर सेफ लैंडाओ जिसने १९६२ का नोबल प्राइज प्राप्त किया था, चार बार मरा परन्तु चारों बार उसे जीवित कर लिया गया। वह सात सप्ताह तक एक पम्प की सहायता से श्वांस लेता रहा। इसके पश्चात् प्राकृतिक ढंग से उसका श्वांस चलने लगा।

इस वैज्ञानिक की कार से टक्कर हुई। परिणाम स्वरूप उसके सर पर चोट आई। खोपड़ी दब गई। मस्तिष्क पर आघात पहुँचा। उसकी नौ पसलियाँ टूँट गयीं। ब्लैडर फट गया। बाँयी बाँह काम करने से रह गई। श्वांस रुक गयी। रक्त चलना बन्द हो गया। रूस के सभी बड़े-बड़े डाक्टरों का सम्मेलन हुआ एक महान वैज्ञानिक के मूल्यवान शरीर को बचाने का उन्होंने प्रयत्न किया। खोपड़ी की फूलन और दबाब कम करने के लिए उसमें औषधियाँ भर दी गई और उन्हें बराबर आक्सीजन मिलती रही। बिजली के यन्त्रों द्वारा उसकी बलगम निकाली जाती रही। दूध आदि तरल पदार्थ उन्हें नाक के द्वारा दिये जाते रहे। उसका ताप १६० डिग्री तक पहुँच गया था। वह १०४ डिग्री तक आ गया। चार दिनों के पश्चात् उनके दिल की धड़कन बन्द हो गई जिसका स्पष्ट अर्थ था कि उसकी मृत्यु हो गई। अब उनकी बांई बांह में रक्त दिया गया और शक्ति बर्द्धक इन्जेक्शन लगाये गये जिससे उनकी दिल की धड़कन पुनः होने लगी। तीन बार उसकी फिर मृत्यु हुई। परन्तु उन्हें ऐसे ही जीवित कर लिया गया। परन्तु उनका शरीर वैसे ही नकारा बना रहा। अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवी चिकित्सकों को बुलाबा गया परन्तु आपरेशन करने की सलाह नहीं दी गई। एक डाक्टर ने उसे कहा—डा० लैंडाओ ! यदि तुम मुझे पहचान रहे हो तो नेत्र बन्द कर लो।' डा० लैंडाओं ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। इस पर उनके मष्तिष्क का आपरेशन नहीं किया गया। उनकी सोचने की शक्ति धीरे धीरे बढ़ रही है। परन्तु स्मरण शक्ति पूरी तरह लौटी नहीं है। चिकित्सकों को आशा है

कि वह पहले की तरह स्वस्थ हो जायेंगे।

इस प्रकार के समाचार पहले भी रूसी वैज्ञानिक द्वारा प्रसारित किए जा चुके हैं कि कुछ समय के लिए अमुक व्यक्ति को बचा लिया गया। जोशीली दवाओं के आधार पर व्यक्ति को कुछ समय के लिए रोका जा सकता है परन्तु मृत्यु को टाला जाना भी सम्भव नहीं। यदि ऐसा ही है तो वह कम से कम अपने नेताओं को ही कुछ सौ वर्ष तक जीवित रखने का प्रयत्न करें ताकि उन्हें स्वस्थ नेतृत्व प्राप्त होता रहे। वास्तव में यह असम्भव है। उनकी कल्पना करना या इसके लिए प्रयत्न करना अपनी बुद्धि को धोखा देना है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने जीवन को लम्बा या स्थिर रखने के लिए सिद्धान्तों की खोज की है, उनका विश्लेषण इस प्रकार है–

हमारा शरीर विभिन्न प्रकार के अणुओं से बना जिसकी संज्ञा सैल्स (cales) है। जब तक शरीर की स्थिरता बनी रहती है यह निरन्तर गतिशील रहते हैं। इनका विनाश व निर्माण इतनी तीव्र गति से होता रहता है जिसका आभास किसी प्राणी को नहीं हो पाता जब तक निर्माण अपनी स्वाभाविक गति से होता रहता है, जीवन स्थिर रहता है। जब निर्माण में कमी आने लगती है तो रोग नये-नये रूपों में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इन सैल्स के निर्माण का बन्द होना ही प्राणी की मृत्यु कहलाती है। यदि किसी उपाय से इन सैल्स का निर्माण निरन्तर होता रहे तो मानव अमर रह सकता है।

प्रो० केरल ने इस दिशा में विशेष प्रयत्न किए हैं। सैल्स की गतिविधियाँ लम्बे समय तक स्वाभाविक रूप से संचालित होती रहें, उसके लिए उन्होंने दो सुझाव दिये हैं। एक तो यह कि उनको आवश्यक आहार प्राप्त होता रहे और उनसे निकलने वाला हानिकाकर विषाक्त मल एकत्रित न हो सके, उसकी निवृत्ति के उपाय अपनाये जाते रहें। दूसरा उपाय यह है कि सैल्स की गतिविधियों को एक दम रोक दिया जाय ताकि नवनिर्माण के लिए आहार की आवश्यकता प्रतीत न हो।

प्रो० केरल ने अपने इन सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए कुछ परीक्षण किए हैं। जिनमें उनको कुछ आंशिक सफलता भी मिली है। रासायनिक द्रव्यों की सहायता से उन्होंने अपनी मुर्गी के हृदय का एक टुकड़ा ३० वर्षो से जीवित रखा हुआ है। इस प्रकार के अनेकों अनुभव उन्होंने किए हैं, परन्तु शरीर को स्थायी रूप से स्थिर रखने में वह अभी सफल नहीं हुए हैं और न होने की सम्भावना है।

प्रो० केरल के सिद्धान्त पाश्चात्यों के लिये नवीन हो सकते हैं परन्तु भारतीयों के लिए कुछ भी नवीनता नहीं है क्योंकि यह खोज और उसका व्यवहार यहाँ लाखों वर्षों से होता आ रहा है। व्याख्या का नया रूप होने से उसे नवीन खोज की संज्ञा नहीं दी जा सकती। महर्षि पतंजलि के अष्टाङ्ग योग की एक क्रिया प्राणायाम है। दूसरी क्रिया पद्धति का यदि नवीन रूप में प्रतिपादन क़िया जाय तो कहा जा सकता है कि प्राणायाम के सुनियोजित अभ्यास से सैल्स की गतिविधियों को दिया जाता है। प्राचीन काल में तो ऋषि इस अभ्यास को घन्टों दिनों,

महीनों और वर्षों तक समाधि के रूप में बढ़ाने की स्थिति में होते थे। जब सैल्स की गतिविधियाँ रुकी रहती हैं, व उनके पोषण के लिये आहार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रो० केरल भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि सैल्स की क्रियाओं को कितने समय के लिये रोका जाना सम्भव हो, समझना चाहिए कि मनुष्य की उतनी आयु बढ़ गई है। प्रो० केरल ने वर्षों के अनवरत परिश्रम से अमर रहने का सिद्धान्त तो खोज निकाला परन्तु उसे क्रियान्वित कैसे किया जाय, उसका कोई समाधान कैसे किया जाए, इसका कोई समाधान वे अभी तक नहीं कर पाए। यह पद्धति तो हममें ऋषि परम्परा से प्राप्त है परन्तु खेद है कि हम इसकी ओर ध्यान नहीं देते। प्राणायाम निश्चित रूप से वह उपाय है जिससे सैल्स की गतिविधियों को रोका जाना सम्भव है।

अमर बनाने का यह शारीरिक पक्ष है। उसका आध्यात्मिक पक्ष भी है। भारतीय तत्व ज्ञान के अनुसार शरीर विनाशशील है और आत्मा अमर है, अविनाशी है। जो व्यक्ति अपने को शरीर मानता है, वह उसके विनाश से दु:खी होता है परन्तु जो साधक शरीर भावना से ऊँचा उठकर आत्म-भावना में स्थिर हो जाता है, उसे शरीर के नाश होने पर दु:ख चिन्ता भय, निराशा का कोई कारण दिखाई नहीं देता। यह भी वंह समझता है कि आत्मा समय-समय पर नए-नए शरीर धारण करती रहती है। यह उसका स्वभाव ही है। अभी तक हर व्यक्ति हजारों प्रकार के शरीर धारण कर चुका है। हर बार वह नूतन शक्ति प्राप्त करता है और निरन्तर प्रगति करता हुआ ऊपर उठता रहता

है—

भारतीय तत्वज्ञानियों ने अपनी खोजों को यहीं तक सीमित नहीं रखा कि जीवात्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा उपयुक्त शरीर धारण कर लेता है। अतः मृत्यु पुराने वस्त्रों को बदल कर नए ग्रहण करने की क्रिया मात्र है। यही उनकी एक असाधारण खोज थी, जिससे मनुष्य निष्कंटक जीवन व्यतीत करता है और उसके जीवन के प्रत्येक कार्य में नया उंत्साह, नई स्फूर्ति और नई आशायें सदैव ओत-प्रोत रहती है और जीवन के संघर्ष में वह बाजी मार ले जाता है।

भारतीय वैज्ञानिक इससे भी आगे बढ़े और साहस के साथ घोषित किया कि "यह शरीर का स्वामी आत्मा नित्य अविनाशी और अचित्य है" (गीता २।१८) "यह किसी से मारे जाने वाला नहीं है" (२।१६) "इसको शस्त्रों से काटा नहीं जा सकता, इसे अग्नि से जलाया नहीं जा सकता, इसे पानी से भिगोया नहीं जा सकता या गलाया नहीं जा सकता और वायु से सुखाया नहीं जा सकता" (२।२३) इसकी रक्षा ऐसे यन्त्र करते हैं जिन पर इस जगत की किसी वस्तु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता यह ऐसा अदृश्य तत्व है जो सदैव एक-सा बना रहता है, जिसकी वृद्धावस्था और नाश कभी नहीं होता। "इससे सम्बन्धित शरीर का वध भी हो जाये तो यह मारा नहीं जाता" (गीता २।२०) यह अज, नित्य शाश्वत और पुरातन है।

भारतीयों की इस महान वैज्ञानिक खोज ने मनुष्य के लिए अमर जीवन के द्वार खोल दिये। उसे आश्वासन दिलाया कि तुम अमर आत्मा हो, तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। अतः तुम्हारी

कभी मृत्यु भी नहीं होगी', (गीता २।२०) तुम्हारा जीवन स्वतन्त्र और शाश्वत है तुम्हें केवल अनुभूति मात्र करना है। तुम अज्ञान की जंजीरों में जकड़े हुए हो। केवल इन बन्धनों को खोलना ही है। इन बन्धनों से मुक्त होकर तुम अपने वास्तविक स्वच्छ और पवित्र रूप देखोगे। उस रूप के दर्शन होने पर तुम सदैव शाश्वत आनन्द की मस्ती में झूमते रहोगे। अतः अपने को शरीर मानना छोड़ दो। "शरीर नाशवान और अनित्य है" (गीता २।१८), उसकी प्रकृति में उत्पत्ति, स्थिति और लय ओतप्रोत है, उसका नाश अवश्यम्भावी है। यदि उससे घनिष्ट सम्बन्ध जोड़े रहोगे। तो भय, दुःखों और चिन्ताओं का आना भी निश्चित है। उसे केवल आत्मा का औजार मात्र मानोगे तो सदैव सुखी रहोगे और इसके वियोग का भय भी नष्ट हो जायेगा।

आत्म भावना को जीवित, जाग्रत व स्थिर रखने के अनेकों उपाय भारतीय शास्त्रों में वर्णित किये गये हैं। उनमें से एक प्रभावशाली शासन प्राणायाम है जिसकी पुष्टि ऋषियों ने अपने अनुभव से की है। योगदर्शन (२।५२) में कहा है–

प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान का आवरण नष्ट होता है। अपने को शरीर भावना तक सीमित रखना ही अज्ञान है। इसकी सीमा से ऊँचे उठकर आत्मभावना में स्थित होना ही ज्ञान है, विवेक की जाग्रति है।

ततः क्षीयते ब्रकाशावरणम्।'

पंच शिखाचार्य ने अपने साध्य सूत्र में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है–

तपो न पर प्राणायामत तो विमुद्धिर्मलाकां दीप्तिश्च ज्ञानस्य।१६
तमणमात्रमात्मानमनुविद्या स्तीत्पेवं तावत् संप्रजानीते।।२०

प्राणायाम से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। प्राणायाम से आन्तरिक मल शुद्ध व पवित्र होते हैं। मलों की निवृत्ति होने पर अज्ञान नष्ट होता है और ज्ञान का प्रकाश होता है। परिणाम स्वरूप वह अणुमात्र आत्मा को खोजकर भली प्रकार से जान लेता है और उसकी अत्यन्त अनुभूति करता है।"

प्राणायाम से आत्मानुभूति होने की घोषणा की गई है। आत्मविकास आत्मकल्याण व आत्मिक प्रगति ही अमर बनने की अच्छी विद्या है क्योंकि ऐसे साधक का कभी नाश नहीं होता।

पाश्चात्य वैज्ञानिक मानव देह को अमर बनाने के प्रयत्नों में संलग्न है परन्तु भारतीय वैज्ञानिकों ने तो इन खोजों को लाखों वर्ष पूर्व पूर्ण कर लिया था जिसकी पुष्टि उपरोक्त तथ्यों से होती है।

प्राणायाम से कुण्डलिनी जागरण और शक्ति विस्फोट की महान साधना

समस्त संसार अण्डाकार है, या वस्तु लाकार है। इसी से उसे ब्रह्माण्ड कहते हैं। अण्डाकार ब्रह्म (विश्व) का संचालक अण्डाकार 'शक्ति प्रवाह' करता है। इसे 'अव्यक्त' 'कुण्डलिनी' कहते हैं। अप्रकट और अगोचर होने के कारण उसे 'अव्यक्त' तथा कुण्डल सदृश गोलाकार या वलय रूप होने से उस शक्ति धारा को 'कुण्डलिनी' संज्ञा देना सर्वथा समीचीन है। 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे' के न्याय से समष्टि कुण्डलिनी 'व्यक्ति में' व्यक्ति कुण्डलिनी के रूप में स्थित है।

कुण्डलिनी पद की व्युत्पत्ति-

योग कुण्डल्युपनिषद् में कुण्डलिनी की व्याख्या इस प्रकार की गई है–'कुण्डले अस्या' स्तः इतिः कुण्डलिनी दो कुण्डलों वाली होने के कारण पिण्डस्थ' उस शक्ति प्रवाह को कुण्डलिनी कहते हैं। दो कुण्डल अर्थात् इड़ा और पिंगला। बाँयी ओर से बहने वाली नाड़ी को 'इड़ा' और दाहिनी ओर से बहने वाली नाड़ी को 'पिंगला' कहते हैं इन दोनों नाड़ियों के बीच में जिसका प्रवाह है वह है सुषुम्ना नाड़ी। इस सुषुम्ना नाड़ी के अन्तर्गत और भी नाड़ियाँ हैं। जिसमें एक चित्रणी नाम की नाड़ी भी है। इसी चित्रणी नाड़ी में से होकर कुण्डलिनी शक्ति

का रास्ता है, इसलिए सुषुम्ना नाड़ी की दोनों ओर से बहने वाली उपर्युक्त दो नाड़ियाँ ही उस शक्ति प्रवाह रूप कुण्डलिनी के दो कुण्डल हैं।

कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप :

इसी उपनिषद् में कुण्डलिनी शक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है–

मूलाधारस्य वह्नवयात्म-तेजोमध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकारण तैजसी।।

(कुण्डल उपनिषद्)

कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में स्थित आत्माग्नी तेज के मध्य में अवस्थित है। वह जीव की जीवनी शक्ति है। तैजस् और प्राणाकार है। कुण्डलिनी शक्ति के तैजस स्वरूप का दिग्दर्शन ज्ञानार्णव तन्त्र में इस प्रकार हुआ है–

मूलाधारे मूलविद्‌दया विद्‌युत्कोटि-मप्रभासम्।
सूर्य-कटि-प्रतीकाशां चन्द्रकोटि द्रवां प्रिये।।
विस-तन्तु-स्वरूपां तां बिन्दु त्रिबलयां प्रिये।

(ज्ञानार्णव तन्त्र)

शिवजी पार्वती से कहते हैं–हे प्रिये ! मूलाधार चक्र में विद्युत प्रकाश की करोड़ों आभा वाली, करोड़ों सूर्यों और चन्द्रमाओं के प्रकाश के तुल्य कमलनाल के समान अविच्छिन्न त्रियलय (तीन घेरे डाले हुए) मूल विद्या रूपिणी कुण्डलिनी स्थित है। वह कुण्डलिनी परम प्रकाशमयी है। अविच्छिन्न शक्तिधारा है, तेजोधारा है।

घेरण्ड संहिता में उसे ही आत्मशक्ति परम देवता कहा गया है–

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता।
शमिता भुजगाकारा, सार्धत्रिबलयान्विता।।

मूलाधार में परमा देवी आत्माशक्ति (आत्मा की प्रचण्ड शक्ति रूप) कुण्डलिनी तीन बलय वाली सर्पिणी के समान कुण्डल मारकर सो रही है।

महाकुण्डलिनी प्रोक्तः परब्रह्म स्वरूपिणी।
शब्दब्रह्ममयी देवी एकाऽनेकाक्षराकृतिः।।

कुण्डलिनी शक्ति परम ब्रह्म स्वरूपिणी, महादेवी, शब्द ब्रह्ममयी (प्रणव स्वरूपिणी और एक तथा अनेक अक्षरों के मन्त्रों की आकृति में व्यक्त होने वाली) बतायी जाती है।

कन्दोर्ध्व कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढ़ानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।।

'कन्द के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति अवस्थित है। वह सोई हुई (निद्रावस्था) में है। वही योगिजनों को मोक्ष दिलाने वाली है। सुख के बन्धन का कारण भी वही है। जो इस तत्त्व को स्वाध्याय से जानता है, वही सच्चा योगवित् या योगी है।

कुण्डलिनी की सुप्तावस्था :

लिङ्ग स्थान अथवा जननेन्द्रिय के मूल में नाड़ियों का एक गुच्छा है। योग शास्त्रों में इसी की संज्ञा कन्द है। इसी पर कुण्डलिनी [illegible]

कुण्डलो कुटिलाकारा सर्पवत् परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन, स युक्तों नात्र संशय।।

कुण्डलिनी सर्प के आकार की कुटिल कही गयी है। जिस प्रकार साँप कुण्डली मारकर सोता है, उसी प्रकार वह 'शक्ति' विशेष, सुप्तान्देह सच्चा योगी है।

यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा।
ज्ञान न जायते तावत् कोटि योगविधेरपि।।

'जब तक कुण्डलिनी शक्ति देह में सोती रहती है, तब तक मनुष्य परिस्थिति का दास बना पशुओं जैसा निकृष्ट-कोटि का आचरण करता है, तब तक वह पशु-प्रवृत्तियों के हाथ का खिलौना बना दीनहीन जीवन यापन करता है। उसके रहन-सहन में, भावों और विचारों में, दिनचर्या में, आहार और विहार में, संलाप में, व्यवहार में कोई उत्कृष्टता नहीं दिखाई देती है। उसमें आत्म विश्वास, धैर्य सूझबूझ उमङ्ग, उत्साह, उल्लास दृढ़ता, स्थिरता, एकाग्रता, कार्य कुशलता, उदारता और विशाल-हृदयता जैसे लाभकारी गुणों का यथोचित विकास नहीं हो पाता! ऐसा व्यक्ति करोड़ों योग-साधन (जप, तप, कीर्तन, आसनादि) करने पर भी ब्रह्मज्ञान विवेक को प्राप्त नहीं करता है।'

मूलाधारे प्रसुप्ता साऽऽमशक्ति उन्निद्रिता विशुद्धे तिष्ठति मुक्तिरूपा पराशक्तिः।

वह प्रबलतम आत्मशक्ति मूलाधार में सो रही है। उसका उच्चस्तरोय कार्यों में उपयोग न होने से वह उपेक्षित सी

शिथिल और गतिहीन (स्टेटिक) बनी हुई। जागी हुई वही चिच्छक्ति महान् उद्देश्यों की सम्पूर्ति में नियोजित वही शक्ति पराशक्ति (विलक्षण सामर्थ्य) के रूप में विराजती है।

कुण्डलिनी जागरण का अभिप्राय :

जब कुण्डलिनी जाग जाती है, तब वह देहगत त्याज्य पदार्थ कफ, पित्तादि दोष नष्ट कर डालती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे दोषो, दुर्गुणों के बीजों (संस्कारों) को क्षार कर देती है। शक्ति के जागने पर तीनों गुणों के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। कुण्डलिनी अपने कुण्डलों (इड़ा पिंगला नाड़ियों) का सहारा छोड़कर सीधी सर्पाकृति (लहरदार तरङ्गों वाली) हो जाती है। शक्ति तरङ्गों का 'कम्प-विशेष के साथ' उठना और सुषुम्ना में होकर कपाल (सहस्रार) में चढ़ना योगियों के प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। उसकी गति लहरदार प्रतीत होने के कारण उसकी उपमा सर्प से दी गई है।

कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु सचालयेत बुधः!
स्पश्थनादाभ्रुवोर्मध्य, शक्तिचालनमुच्चते।।

(योग कुण्डलयुपनिषद)

अतएव बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह उस सोई हुई अपनी आत्म शक्ति को चैतन्य करे, गतिशील करे ! मूलाधार से स्फूर्ति तरङ्ग उठकर भ्रूमध्य में दिव्य नाद की अनुभूति (श्रवण) कराने लगे, तभी समझना चाहिए कि कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत-संचालित हो गयी है।

ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोनिर्भया स्वर्णभः स्वरा।

इस शक्ति को स्वर्ण की सी सुन्दर कान्ति युक्त विष्णु की निर्भया शक्ति ही समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में कुण्डलिनी शक्ति जिसे आत्मशक्ति, जीवशक्ति प्रभृति नामों से अभिहित किया जाता वह सर्वव्याप्त (विष्णु या विभु) का कान्तियुक्त तेज ही है। ईश्वरीय शक्ति और कुण्डलिनी शक्ति में कोई अन्तर नहीं है।

वैज्ञानिकों की दृष्टि में कुण्डलिनी शक्ति :

पाश्चात्य लोग इस कुण्डलिनी शक्ति को 'सर्पेन्ट फायर' यानी सर्पबत् बलयान्विता अग्नि (ऊर्जा) कहते हैं। मैडम ब्लैदेटस्की इसको कास्मिक इलेक्ट्रीसिटी (विश्व व्यापी विद्युत शक्ति) कहा करती थी। 'दी वायस आफ दी साइलेंस' में इसके विषय में लिखा है कि कुण्डलिनी सर्पाकार या वलयान्विता शक्ति कही जाती हुई चलती है। सुषुम्णा के अन्दर ध्वनि तरङ्गों के समान छल्लेदार सर्किल बनाती हुई बहती है। योगाभ्यासी के शरीर में चक्राकार क्रमशः सहस्रार की ओर बढ़ती हुई, उसमें प्रचण्ड शक्ति का संचार करती है। वस्तुतः यह एक विद्युत अग्निम गुप्त शक्ति है। यह प्राकृत शक्ति है, जो केन्द्रिय (आरगेनिक) और निरीन्द्रिय (इन आरगेनिक) सृष्ट पदार्थ मात्र के मूल में है।

मैडम ब्लैवेटस्की के अनुसार कुण्डलिनी की गति प्रकाश की गति की अपेक्षा भी अधिक तीव्र है। प्रकाश एक सेकन्ड में एक हजार पाँच सौ मील की गति से चलता है, जबकि

कुण्डलिनी शक्ति तीन लाख पैंतालीस हजार मील प्रति सेकन्ड की चाल से चलती है।

होडसन महोदय के अनुसार मनुष्य के सूक्ष्म शरीर (ईथरिक वाड़ी) में स्थूल शरीर के विषेष २ प्रत्यङ्गों के सम्बद्ध चक्राकार घूमने वाले छः शक्ति केन्द्र हैं। उन्हीं में गुदा और जननेन्द्रिय के बीच 'वेसिक फोर्स सेन्टर' है। उसे स्वस्थ और चैतन्य बनाये रखना शारीरिक आरोग्य और मानसिक विकास के लिए आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सा और हिषवाय कटि स्नान द्वारा इसकी अतिरिक्त ऊर्जा (सरप्लस इनर्जी) का निर्हरण किया जाता है, जो अप्रयोग के कारण बँधे हुए पानी के समान दूषित, विकृति और नये-नये रोगों को जन्म देने वाली तथा प्राणशक्ति को नष्ट करने वाली बन जाती है। कटि स्थान में शीतल जल का प्रयोग किया जाता है। यह बेसिक फोर्स सेन्टर को जिसे भारतीय मूलाधार शक्ति केन्द्र कहते हैं, अपने गुणों के कारण निरुष्म हीटलेस या शान्त, स्वस्थ अधिकारी और स्वास्थ्य लाभ के लिए सक्रिय बनाता है। इसी बेसिक फोर्स सेन्टर के अन्तराल में सर्पाकार अग्नि रहती है। जब यह कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा के मध्य में होकर ऊपर की ओर जाती है, तो अपने स्पर्श से एक-एक चक्र (फोर्स सेन्टर) को जगाती हुई चलती है, जिससे वे खुल जाते हैं। तब व्यक्ति की अनोखी अनुभूतियाँ होती हैं, अपने अन्दर प्रचण्ड शक्ति, अमित आनन्द का बोध होता है। इस प्रकार शक्ति स्रोतस्थ शक्ति प्रवाह के उदात्तीकरण (सबलीमेशन) का नाम 'कुण्डलिनी शक्ति प्रजागरण' है।

कुण्डलियों के सम्बन्ध में भारतीय अभिमत :

उपरिलिखित प्राच्य-पाश्चात्य मतों की समीक्षा करने से सहज ही ज्ञात होता है कि जिस तरह पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों में सृष्टि की आश्चर्यजनक तथा चमत्कारी शक्तियों का भण्डार पड़ा है, उसी तरह मानव पिण्ड के दो ध्रुवों में भी असाधारण सामर्थ्य भरी पड़ी है। ब्रह्मरन्ध्र में विद्यमान सहस्त्र चक्र को उत्तरी ध्रुव कहते हैं और दक्षिणी ध्रुव का स्थान जननेन्द्रिय और उपस्थ के बीच में मूलाधार चक्र है। इस शरीर रूपी पृथ्वी के ये दो महत्वपूर्ण मर्मस्थल हैं' जिसकी ओर उचित ध्यान प्रायः नहीं दिया जाता है, यहाँ हमें मूलाधार के शक्ति बीज को ही समझना है। इसे ही कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं।

कुण्डलिनी की आकृति तिकोने पर्वत जैसी होती है, जिसे सुमेरु पर्वत की संज्ञा दी जाती है। इसी सुमेरु पर्वत के आस-पास एक सर्प की आकृति का चक्राकार विद्युत प्रवाह है जिसे तन्त्र ग्रन्थों में महासार्पिणी की संज्ञा दी गई है। इस विद्युत प्रवाह को विद्युत-भ्रमर भी कहते हैं। साधारणः सरित् प्रवाह की गति सीधी होती है, किन्तु जहाँ भंवर पड़ते हैं, वहाँ एक गोल गह्वर जैसी हो जाती है। भंवर की प्रचण्ड शक्ति अनानुमेय होती है। इसमें फँसने पर बड़ी-बड़ी नौकायें भी जल समाधि ले लेती हैं। विशेषज्ञों ने जल की साधारण गति की अपेक्षा भंवर की शक्ति आठ गुनी अधिक मानी है। इसी प्रकार शरीर में प्रवाहित होने वाली विद्युत की अपेक्षा मूलाधार स्थित सर्पाकार विद्युत प्रवाह सहस्त्रों गुणा अधिक शक्तिशाली होता है। जो व्यक्ति इस महाशक्ति को उपयोग नहीं कर पाते, उन्हें ही अभागा कहते हैं।

कुण्डालिनी जन्य परमाणु विस्फोट और प्राणायाम की उपयोगिता :

भंवर प्रवाह अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ विद्युत उत्पादक यन्त्र से पहियों पर सुकेन्द्रित होकर सीधी पड़ने लगे, तो लाखों किलोवाट विद्युत का उत्पादन करती हुई दूर-दूर के नगरों को गति देकर विशाल पैमाने पर छोटी बड़ी अनेक वस्तुओं का निर्माण करती हुई अनेक विध जन समाज की हित साधना करती है। उसी प्रकार मूलाधार स्थित शक्ति प्रवाह का भंवर आदि सुषुम्णा नाड़ी पर सुकेन्द्रित होकर शरीरस्थ षट्चक्रों को गतिशील बना दे, तो मनुष्य की कार्य क्षमता, उत्पादन क्षमता, समाज-हित-साधन क्षमता विद्युत उन्नति के बहुविधि लाभों के समान बढ़ती हुई व्यक्ति के समुत्थान के साथ ही साथ समष्टि के सम्यक् विकास के लिये बहुमूल्य सिद्ध होगी।

कुण्डलिनी का जागरण मूलाधार में परमाणु-विस्फोट के समान है। इसके द्वारा अर्जित होने वाली अणुऊर्जा (एटमिक एनर्जी) सफलता पूर्वक विविध निर्माण कार्यों के सम्पादन के लिये परमावश्यक है। यदि किसी प्रकार अपने लपेटों (भंवर) को खोलकर यह सर्पिणी फनफनाकर अपना अधोमुख उठाकर सुषुम्णा नाड़ी में डाल दे यह विद्युत-प्रवाह सुषुम्णा में सुकेन्द्रित हो उठे, तो उस पर चैतन्य प्रक्रिया को कुण्डलिनी का जाग्रत होना कहेंगे।

जिस प्रकार स्वीच (बटन) दबाने मात्र से बिजली के पंखे कूलर हीटर, इंजन, नाना वर्ण के बल्व गतिशील होकर

अपने-अपने लोक-हितकारी कार्यों द्वारा जन-जन का हित साधन करते हैं, ठीक उसी प्रकार कुण्डलिनी रूपी बटन को दबाने से मानवीय विद्युत का प्रवाह सुषुम्णा नाड़ी के तार में पहुँच कर सारे चक्रों, नलिका विहीन ग्रंथियों आन्तरिक शरीरावयवों, मानसिक संस्थानो को चैतन्य ऊर्जा से भर देता है। उनकी क्रिया शक्ति बढ़ा देता है। फलतः जिस-जिस चक्र पर, अंग प्रत्यङ्ग पर, ग्रन्थि पर कर्मबीज या संस्कार पर वह तेजस्वी शक्ति प्रवाहित होती है, उस उसकी निर्बलता को, अधोगति को निर्मूल करती हुई उन्हें ऊर्ध्वमुख बनाती हुई व्यक्तित्व को सहस्रशः सुविकसित, सुप्रभावी, अतिकार्यक्षम और उदात्त कर देती है। जब यह विद्युत प्रवाह आज्ञा चक्र पर पहुँचता है, तब सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है, सहस्रार में इसके गतिशील होने पर असम्प्रज्ञात समाधि साधने की वास्तविक योग्यता सिद्ध होती है।

कुण्डलिनी चक्र का जागरण सीमित शक्ति वाले मनुष्य को तुलसी सा कवि, वेदव्यास सा महाज्ञानी, गौतम बुद्ध सा शाँत, प्रहलाद सा दृढ़ निष्ठा वाला, समर्थ गुरु रामदास तथा रामकृष्ण परमहंस से अद्भुत चमत्कार दिखाने वाला सन्त हरिदास सा भूमि समाधि लगाने वाला जगद्गुरु शंकराचार्य सा परकाया में प्रवेश करने की क्षमता को पैदा करने वाला, संकल्प मात्र दूरस्थ वस्तु और व्यक्ति को डा. एलेक्जेन्डर के समान प्रवाहित करने वाला और सूक्ष्मदर्शी तथा दूरदर्शी बना देता है। कुण्डलिनी का जागरण मनुष्य को निरोग दीर्घ जीवी, सदगुणी और अलमस्त तो बनाता ही है, अनेकों का उद्धार करने वाला सुयोग्य जग नायक के रूप में समाज की विप्रगति को त्वरित

वेग से बदल देने से समर्थ होता है और इस तरह वह युगप्रवर्तक या अवतारी पद से संसार विभूषित होता है। उसी के जागने पर व्यक्ति जनक सा जीवन्मुक्त, अर्जुन सा कर्मयोगी, जड़भरत सा गुणातीत, गोरखनाथ सा हठयोगी और विवेकानन्द सा राजयोगी बन जाता है। भवसागर में स्वयं तो तैरता ही है, सम्पर्क में आने वाले न जाने कितनों की जीवन पद्धति बदल देने में सहज समर्थ होता है। न जाने कितनों को शोक रहित, आनन्दमय और मुक्त बना देता है। जहाँ कहीं किसी मनुष्य में अलौकिक शक्ति, अद्‌भुत सामर्थ्य, असाधारण ज्ञान, विलक्षण प्रतिभा अनोखी विभूति (सिद्धि) और चमत्कार देखने में आवे, तो समझना चाहिये कि किन्हीं उपायों से कुण्डलिनी शक्ति अकस्मात जाग्रत होकर सुषुम्णा के मुख में चली गई।

इस प्रकार कुण्डलिनी जागरण की साधना की उपासना है। कौन अपने को महान, प्रभावी (असरदार), ज्ञानी, स्वस्थ-सबल और आनन्दमय अलमस्त नहीं बनाना चाहता? सभी सुयोग्य, उन्नत, समर्थ और सम्पन्न बनना चाहते हैं। सभी वीर व योद्धा, समाज के अगुआ और यशस्वी बनना चाहते हैं। इसका सीधा सा अर्थ यही है कि सभी अपनी गुप्त शक्तियों को जाग्रत करना चाहते हैं।

यह प्रश्न होता है कि कुण्डलिनी शक्ति जागरण उन्नयन का क्या उपाय है। पतंजलि योग दर्शन के साधनपाद में अनेक उपाय बताये गये हैं। तन्त्र ग्रन्थों में जितने योगों का वर्णन है, वे सभी कुण्डलिनी जागरण के ही साधन हैं। महाबन्ध, महावेध, महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीत करणी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, योनि

द्रा, शक्ति चालिनी मुद्रा इत्यादि कुण्डलिनी जागरण के नेक उपाय हैं। इसमें प्राणायाम कुण्डलिनी शक्ति को चेतन रके सुषुम्ना में लाने का सुखासाध्य उपाय है। इसके द्वारा ल्प समय में ही सफलता प्राप्त होती है।

कुण्डलिनी जागरण के अतिरिक्त भी प्राणायाम से अनेक भ है। योग दर्शनकार के अनुसार प्राणायाम के अभ्यास से काश पर पड़ा आवरण दूर हो जाता है। भ्रान्तियाँ, भय, संशय, ल धारणायें संत्रास और अविद्या-अन्ध विश्वास नष्ट होकर बुद्धि, सूझ-बूझ, प्रत्युत्पन्न मति, प्रतिभा, विद्वता और ज्ञान वेक का विकास होता है। अपनी रुचि के अनुसार मन को हाँ-तहाँ अन्दर बाहर किसी भी स्थान पर ठहराने की शक्ति जाती है। देह, प्राण और मन के सभी विकार मिटते हैं। मन श में हो जाता है। प्राणायाभ से हाथी के समान बल और सिंह समान पराक्रम उत्पन्न होता है। प्राणायाम के द्वारा अर्जित ल के द्वारा ही दिवंगत राममूर्ति ने दो चलती हुई मोटरों को का था। अस्सी मन के हाथी को अपनी छाती के ऊपर खड़ा राया था। प्राणायाम आयुष्य को देने वाला है। रोगों का शमन रने वाला है। वात-पित्त-कफ के प्रकोप को शान्त करता है। ज तेज और प्रभाव को बढ़ाता है। देह में स्फूर्ति लचक, मलता, शांति और सुदृढ़ता लाता है। यह रक्त को शुद्ध रने वाला है, चर्म रोग नाशक है। यह जठराग्नि को बढ़ाने ला और वीर्य दोषों को दूर करने वाला भी है। संक्षेप में सर्द लायन है।

कुण्डलिनी शक्ति जागरण के विविध प्राणायाम :

भस्त्रिका, कपाल, भांति, सूर्यभेदी, निबन्धं, रेचक, वायवीय कुम्भक और प्राणायाम संयुक्त प्राणायाम का बुद्धि पूर्वक अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण सत्वर होता है। नीचे हम इन प्राणायामों के करने की विधि लिख रहे हैं। अच्छा हो इनका अभ्यास योग्य व्यक्ति की देख रेख में कुछ काल किया जावे ताकि वह आपकी आयु, बल, रुचि, प्रकृति, परिस्थिति और ऋतु को दृष्टि रखकर आवश्यक व्यवस्था के साथ इस ढङ्ग से उनका अभ्यास करावें जिससे कोई प्रतिकूल प्रभाव या हानि न होने पावे। प्राणायाम विशारद ही आपको बता सकेगा कि उपयुक्त प्राणायाम को आरम्भ में कितनी बार और फिर शनैः शनैः किस गति से उन्हें बढ़ाना सिद्धि प्राप्ति के लिए आपको उपयोगी होगा।

कुण्डलिनी जागरण प्राणायाम नं० १

(१) पहले सिद्धासन पर बैठ जाइये। बाँये पैर की एड़ी को गुदा और जनेन्द्रियों के बीच स्थित सिवनी से सटाकर इस प्रकार लगावें कि उसका तला सीधे (दाहिने पैर की जंघा को स्पर्श करे) इसी प्रकार दाहिने पैर की एड़ी को उपस्थेन्द्रिय की जड़ के ऊपर भाग में इस प्रकार दृढ़ लगावें कि उसका तला बाँये पैर की जंघा को स्पर्श करे। इसके बाद बाँये पैर के अँगूठे और तर्जनी की बाँयी जंघा और पिन्डली के बीच में लें। इसी दाँये पैर के अँगूठे और तर्जनी को बाँयी जंघा और पिन्डली के बीच में लें। इसी दाँये पैर के अँगूठे और तर्जनी को बाँयी जंघा

और पिन्डली के मध्य में ले लें। सारे शरीर का भार एड़ी और सिवनी के बीच की ही नस पर तुला रहना चाहिये।

(२) अब दांये हाथ के अँगूठे से दाहिने नासापुट (नथुने) को दबाकर नाभि से लेकर कण्ठ तक की समस्त वायु को धीरे-धीरे बाहर निकालें।

(३) सम्पूर्ण वायु रेचन करने के बाद सांस अन्दर लेकर पुनः पुनः शक्ति और सामर्थ्य तथा पथ प्रदर्शक के अनुसार अनेक बार रेचन क्रिया (वायु को बाहर फेंकने) की क्रिया ही करें।

(४) स्मरण रहे इस रेचन प्राणायाम के समय मूलबन्ध, उड़िडबन्ध और जालन्धर बन्धों को दृढ़ता से लगाकर दोनों हथेलियों को घुटनों पर स्थापित करें और दृष्टि नासा के अग्रभाग पर ही स्थिर रखें।

गुदा को दृढ़ता पूर्वक सिकोड़ कर अधोगत अपान वायु को बल के साथ धीरे-धीरे ऊपर की ओर खींचने को मूलबन्ध कहते हैं। इससे कुण्डलिनी सीधा होकर ऊपर की ओर बढ़ती है, क्योंकि इसमें अपान वायु का ऊर्ध्वगमन होकर प्राण के साथ एकता होती है।

उड़िडयान बन्ध में पेट को अन्दर ही अन्दर दृढ़ता के साथ सिकोड़ कर उसे मेरुदण्ड से सटाने का प्रयत्न किया जाता है। जितना पेट को अन्दर की ओर अधिक खींचा जायेगा, उतना ही अधिक गति से प्राण और वीर्य सुषुम्ना की ओर अधिक वेग से दौड़ेगा।

जालन्धर बन्ध में कण्ठ को सिकोड़ कर दृढ़तापूर्वक गले के गड्ढे में स्थापित किया जाता है। ध्यान रहे, जालन्धर बन्ध में सीना आगे की ओर ही तना रहे। यह बन्ध कंठ स्थान के स्नायु जाल को बाँधे रखता है, जिससे पिंगला नाड़ियाँ बन्द सी हो जाती हैं और प्राण सुषुम्णा में प्रवेश करने लगता है।

इस प्रकार पाठक को अनुभव हो गया होगा कि यह प्राणायाम कुण्डलिनी शक्ति को शीघ्र जाग्रत करके सुषुम्णा द्वार को भी खोल देता है। जिस समय प्राण का ऊर्ध्वगमन होने लगता है, उस समय चींटियों के रेंगने के समान सुख का अनुभव होता है। सुषुम्ना में प्राण के प्रवेश पाते ही अतुल आनन्द की अनुभूति होती है।

कुण्डलिनी जागरण प्राणायाम नं० २

१—सर्वप्रथम ऊपर बताई गई विधि से सिद्धासन लगाकर बैठिये।

२—अब दोनों नथुने से नाभि तक यथाशक्ति अधिकाधिक वायु का पूरण कीजिये।

३—इसके बाद जालन्धर बन्ध लगाकर (ठोड़ी को कंठकूप से सटाकर) कुम्भक कीजिये। वायु को अन्दर ही रोके रखिये।

४—साथ ही मूलबन्ध के द्वारा मूलाधार से अपानवायु का उत्थान करके नाभि में प्राण के साथ मिलने की दृढ़ भावना कीजिये अच्छा हो, प्राण अपान को मिलाते समय उदि्डयान बन्ध भी लगा लीजिये। कुम्भक के समय इस प्रकार तीनों बन्ध लगे होने चाहिए।

५—शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार निश्चित अवधि का कुम्भक करके रेचन कीजिए। वायु को बाहर छोड़ दीजिये।

योग्य गुरु के निर्देशानुसार इस क्रिया को बार-बार कीजिए। प्रति सप्ताह अभ्यास बढ़ाते रहिये।

इस प्राणायाम से प्राणोत्थान क्रिया शीघ्र होती है। कुण्डलिनी शक्ति का जागरण भी सत्वर होता है। वीर्य और प्राण के ऊर्ध्वगमन से बुद्धि तन्त्र के बन्द कोश तो खुलते ही हैं बुद्धि की सूक्ष्म ग्राहिता तो बढ़ती ही है, अपूर्व बल, साहस और पुलक का नस-नस में संचार होने से क्रियाशीलता और उत्फुल्लता का विकास होता है।

आत्मसंयम के बिना कुण्डलिनी जागरण असम्भव है

कुण्डलिनी शक्ति जागरण की साधना का ब्रह्मचर्य आहारविहार, संयम से अभिन्न सम्बन्ध हैं। प्राण शक्ति को कामुक प्रवृत्तियों से बचाये रखना नितान्त आवश्यक है। स्मरण है कि मस्तिष्क में कामुक विचार आते ही जनेन्द्रिय में अवांछनीय क्षोभ उत्पन्न होने लगता है। मस्तिष्क यदि कामुक विचारों से भरा रहे, तो स्वप्न में भी वीर्यपात हो जाता है। मैथुन अथवा स्वप्नदोष के स्खलन से वीर्यनिहिता विद्युत शक्ति क्षीग होती है, आकृति में चमक और प्रभावत्मकता इसी से होती है। [illegible] और साहस इसी के चमत्कार है। इच्छा शक्ति और आत्मविश्वास इसी विद्युत की पूँजीभूति तरङ्ग है। वीर्य का क्षरण की आशाओं आकांक्षाओं पर पानी फेरता है। आत्म बल को [illegible] करता है. इस रजस को यदि सुरक्षित रखा जा सके, तो

जीवन के बहुमूल्य कार्यों में इसका उपयोग किया जा सकता है कुण्डलिनी जागरण में इसका विनियोग होने से शीघ्र सहायता मिलती है। इसके विपरीत यदि इस दिशा में लापरवाही की गई तो कुण्डलिनी साधना अधूरी ही नहीं रह जायेगी। वरन् अनेक शारीरिक मानसिक रोगों को जन्म देने का हेतु भी बनेगी।

आज के वैज्ञानिक युग में मनोरंजन के ऐसे समस्त साधन उपलब्ध हो गये हैं, जो मूसलाधार चक्र को ही नहीं, सम्पूर्ण बात संस्थान को ही अश्लील शब्द-रूप तरङ्गों द्वारा अहर्निश क्षुब्ध किये रहते हैं। अतएव कुण्डलिनी साधना के लिये एकान्त, शान्त स्थान का होना परमावश्यक है। छत का ऊपरी भाग या आवादी से दूर का रमणीय स्थान अथवा पर्वत, मन्दिर प्रभृति का सर्व सुविधा युक्त प्रदेश इसके लिए बड़ा उपयोगी है।

ब्रह्मचर्य रक्षण के लिए सात्विक भोजन और सात्विक दिनचर्या का होना बड़ा जरूरी है। सभी कार्य समय से निर्धारित करके नियम पूर्वक करने की आदत डाले बिना कुण्डलिनी साधना का सुचारू रूप से संचालन करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। उदात्त दृष्टिकोण वाले व्यवस्थाप्रिय बनिए। तभी यह साधना सफल होगी।

प्राणायाम और सूर्य नमस्कार की सम्मिलित व्यायाम पद्धति

सूर्य हमारा जीवन प्राण हैं :

हिन्दू संस्कृति में सूर्य को देवता कहा गया है। सन्ध्या वन्दन में उसे अर्घ्य दान दिया जाता है। उसकी पूजा अर्चना की जाती है। साधना करते समय सभी की ओर मुख किया जाता है। हिन्दू धर्म में श्रेष्ठतम मन्त्र गायत्री का देवता सूर्य है। सूर्य उपासना के लिए सूर्य कुण्डलिनी मन्त्र बनाया गया, सूर्य की महिमा-गान के लिए अलग से सूर्य उपनिषद उपस्थित है, पूजा ध्यान के लिए सूर्य से चित्र, मूर्तियाँ और मन्दिर बताये गये जिनके अवशेष अमेरिका और कनाड़ा में भी उपलब्ध हुए हैं। वेद शास्त्रों में सूर्य का गुण-गान किया। ऋग्वेद (१।११५।१) में कहा है 'देवगण का अद्भुत' मुख-रूप तथा मित्र, वरुण (जल) अग्नि का नेत्र रूप सूर्य उदय हो गया। जो सूर्य समस्त स्थावर तथा जङ्गम सृष्टि का प्राण स्वरूप है, उसने आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को सब ओर से प्रकाशित कर दिया। 'महाभारत में सूर्य से रोग निवारण का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान कृष्ण के पुत्र साम्ब का कुष्ठ रोग सूर्य चिकित्सा से ठीक हो गया था।

सूर्य उपासना की तो भारतीय शिक्षित वर्ग की अपेक्षा सहनी पड़ी परन्तु विदेशियों ने इस पर खोजें की और देखा कि सूर्य की धूप में स्वस्थता प्रदान करने और रोगों को नाश करने

को अपार शक्ति है, उसकी प्रातःकालीन किरणें आरोग्यता का वरदान लेकर आती है। उन्होंने सूर्य की धूप से लाभ उठाने के लिए व्यवस्थित पद्धति को जन्म दिया और अनेकों चिकत्सालय पश्चिम में खुल गये।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने सूर्य चिकित्सा के सम्बन्ध में विशाल साहित्य का निर्माण किया है। उसमें से कुछ उदाहरण यहाँ उपस्थित किये जा रहे हैं। 'गार्डन रोनी' ने कहा है ''सूर्य श्रेष्ठ दवा है, इसलिए सूर्य स्नान किया करो। विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि सूर्य से उत्तम स्वास्थ्य की उपलब्धि होती है। इनसे जुकाम, खाँसी, निमोनियाँ और कुष्ठ, जैसे रोग अच्छे हो जाते हैं। 'स्विट्जरलैंड के डा० रौलियर का मत है 'स्कूलों में जितना महत्व खेद कूद को दिया जाता है उतना सूर्य स्नान को भी देना चाहिये क्योंकि जिस तरह पेड़-पौधों की वृद्धि के लिये सूर्य की धूप आवश्यक है, उसी तरह बच्चों के शारीरिक विकास के लिए भी सूर्य का प्रकाश आवश्यक है।' डा० सर राबर्ट मैकरीसन ने लिखा है भोजन की ताजगी और बढ़ियापन में एक ऐसा तत्व होता है जिसको आधुनिक आहार वैज्ञानिकों ने, जिन्होनें प्रोटीन, बसा कार्बोहाईट्रेट्स खनिज, लवण और विटामिनों का पता लगाया है, अभी तक नहीं समझ पाया है। कहना यहीं होगा कि वह तत्व प्राण अथवा जीवन है जो वनस्पतियों में सूर्य के प्रकाश में रहने से ही उत्पन्न होता है। सूर्य चिकित्सकों के प्रवर्त्तक हैस के अनुसार खाने की सभी वस्तुयें सूर्य से ही उत्पन्न होती हैं। यह रोगों की अचूक औषधि है। यदि लोग इसकी महत्ता को जान जायें तो सदैव स्वस्थ रहें।

वैज्ञानिकों ने सूर्य की किरणों का विश्लेषण करके देखा है कि वह मानव देह पर गहराई तक पहुँचने की क्षमता रखती है और वहाँ पहुँचकर समस्त तन्तुओं और कोषों को सशक्त बनाती हैं और रक्त में लाल व सफेद कणों की संख्या बढ़ातीं है। इससे उसमें रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं को नष्ट करने और उनका प्रतिकार करने की शक्ति की वृद्धि हो जाती है और रोगों से बचाव रहता है स्नायु जाल पर सूर्य की किरणों का विशेष प्रभाव पड़ता है, परिणामस्वरूप शरीर में नवस्फूर्ति व नव-जीवन सा उदय होता है। मन सदैव प्रफुल्लित रहता है। मानसिक बल की वृद्धि होती है।

सूर्य की किरणें भोजन में फास्फोरस और कैलशियम निकालने में सहायता देती है। जब वह शरीर पर पड़ती हैं तो रक्त की गति बढ़ जाती है, वह गरम हो जाता है, तब खून में "अर्गोसटेरोल" नाम का पाया जाने वाला पदार्थ सूर्य की किरणों के साथ मिलने से विटामिन 'डी' में परिवर्तित हो जाता है। आँतों में अम्ल और क्षार आवश्यक और उचित मात्रा को व्यवस्थित करने की क्षमता विटामिन 'डी' में ही है। इसी क्रिया से भोजन के पदार्थों में फास्फोरस और कैलशियम की प्राप्ति होती है। सूर्य की किरणें शरीर पर न पड़ने का परिणाम यह होता है कि भोज्य पदार्थों में से हम दांतों और हड्डियों के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्व को खींचने की शक्ति से दूर हो जाते हैं। जो लोग सूर्य के प्रकाश से दूर रहते हैं, उनकी पाचन-शक्ति शिथिल रहती है और शरीर दिन-दिन रोगों का घर बन जाता है। इसका स्पष्ट प्रमाण वर्षा ऋतु में देखने को मिलता है, जब

काफी समय तक धूप नहीं निकलती तब स्वभावतः खुल कर भूख नहीं लगती और पाचन शक्ति निर्बल हो जाती है। पाचन शक्ति को तीव्र करने के लिए सूर्य-किरणें एक अमोघ अस्त्र का कार्य करती है, वह हमारा जीवन प्राण है। सूर्य की किरणें प्राप्त न होना एक अभिशाप है जो अँधेरे घरों में निवास करने वालों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

सूर्य के इन महान् गुणों को देखते हुए ही हमारे ऋषियों ने इससे घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखने के लिये अनेकों उपासनात्मक विधान बनाये। इससे शरीर का सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक व्यायाम पद्धति का आविष्कार किया गया। जिसका नाम सूर्य नमस्कार रखा गया।

सूर्य नमस्कार एक वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति है-

सूर्य नमस्कार एक ऐसी व्यायाम पद्धति है जिससे सूर्य की आरोग्य दायिनी किरणों को शरीर के बाह्य व आन्तरिक अङ्गों में प्रवाहित करने की व्यवस्था की जाती है। जिस तरह जहाँ-जहाँ प्रकाश पड़ता है वहाँ से अन्धकार स्वयमेव हटता जाता है, उसी तरह सूर्य की किरणों से होकर शक्ति और स्वस्थता का उदय होता है।

सूर्य किरणों को शरीर में सक्रियता पूर्वक प्रवाहित करने के लिये योगासनों की सहायता ली गई है योगासन एक ऐसी वैज्ञानिक व्यापार पद्धति है जिससे शरीर के प्रत्येक भाग पर दवाव पड़ता है और शरीर में अव्यवस्थित करोड़ों नसों नाड़ियों का खिचाव होता है। इससे शरीर के समस्त अंगों व यन्त्रों का सुव्यवस्थित संचालन होता है। सूर्य नमस्कार में आसन ऐसे

यन्त्र का कार्य करते हैं, जिससे सूर्य किरणों को शरीर के आन्तरकि क्षेत्रों में पहुँचाने की व्यवस्था हो जाती है। व्यायाम से गति आना स्वाभाविक है और व्यायाम भी ऐसा जिससे करोड़ों स्नायु प्रवाहित होते हैं। सूर्य किरणों के आह्वान को आसनों से सम्बद्ध करने से लाभ अनेकों गुना बढ़ जाते हैं, सूर्य नमस्कार के लाभों को दृष्टि में रखते हुए इंगलैंड के श्री जे. पी. मूलर ने अपनी पुस्तक 'माई सिस्टम' में लिखा है 'युवा और वृद्ध' मोटे और कमजोर सभी को सूर्य नमस्कार करना चाहिए। यदि शरीर को व्यायाम का स्वभाव नहीं है तो आरम्भ में थोड़ा-थोड़ा करना चाहिये और उसे धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। इसे नित्य प्रति करना चाहिये। इसे नियमित रूप से करने से ही लाभ होगा। अतः बाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी के लिये व्यायाम लाभप्रद है।

प्राणायाम के समावेश से लाभों में वृद्धि :

प्राणायाम का प्रवेश होने पर तो सूर्य नमस्कार एक उत्तम योग क्रिया ही सिद्ध होती है। प्राणायाम स्वयं में एक ऐसा व्यायाम है, जिससे प्राणी में बल, शक्ति और स्फूर्ति आती है, ऐसा लगता है जैसे हर अंग पर यौवन का निखार आ रहा हो क्योंकि उसमें सक्रियता ओत-प्रोत रहती है। प्राणायाम प्राणापद वायु-आक्सीजन को फेफड़ों की १८ करोड़ कोठरियों में पहुँचाकर उन्हें स्वस्थ और सुदृढ़ बनाता है और हानिकारक कार्बन डायक्साइड को बाहर निकाल देता है। इस प्रक्रिया के चलते रहने से फेफड़ों में बल का संचार भी होता है और हानिकारक तत्वों की सुरक्षा भी होती रहती है। पाचन-यन्त्रों से इसक

घनिष्ठ सम्बन्ध है जिससे पाचन क्रिया स्वाभाविक हो जाती है और खुलकर भूख लगती है, मल के विसर्जन में सहायता मिलती है और कोष्ठबद्धता दूर होती है। प्राणायाम का केवल स्थूल शरीर से ही सम्बन्ध नहीं रहता वरन् सूक्ष्म शरीर में स्थित सशक्त ग्रन्थियों और चक्रों पर ही इसका प्रभाव पड़ता है। उनके जागरण से असाधारण शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। मन, बुद्धि और आत्मा को पवित्र करने के लिए उन पर चढ़े मल विक्षेपों को दूर करने के लिए प्राणायाम एक उत्तम साधन माना गया है और अन्तःकरण शुद्ध स्फटिक मणि की तरह चमकने लगता है। सूर्य नमस्कार में इसका प्रवेश करके यौगिक बुद्धि कौशल का परिचय दिया गया है। सूर्य किरणों और आसनों के साथ मिलकर इसके लाभ भी बढ़ जाते हैं। या यूँ भी कह सकते हैं कि प्राणायाम के समावेश होने से यह दोनों क्रियायें सक्रिय हो जाती हैं।

मानसिक एकाग्रता की आवश्यकता :

सूर्य नमस्कार में अपने इष्टदेव के ध्यान करने का भी नियम है। अपने सामने दीवार पर या किसी खम्बे पर अपने इष्टदेव या ॐ स्वास्तिक अथवा सूर्य, चन्द्र आदि का चित्र या चिह्न रखना होता है ताकि उस पर अपनी दृष्टि को जमाया जा सके।

अध्ययन मनन, चिन्तन, लेखन, व्यापार, नौकरी, कला, विज्ञान अथवा कोई भी अन्य कार्य हो, जब तक उसमें मन लगाकर परिश्रम न किया जाये तब तक सफलता असम्भव है। सफलता के लिये अपनी समस्त शक्तियों को एकाग्रतापूर्वक

कार्य में लगाना पड़ता है तब कहीं मनोनुकूल फल प्राप्त होता है। यह सिद्धान्त व्यायाम में लागू होता है। यह न समझना चाहिये कि शारीरिक व्यायाम में स्थूल शरीर ही गतिशील रहता है, इसलिये चंचल मन की स्वछन्द शक्तियों को छोड़ देने से कुछ हानि नहीं है। यह स्मरण रखना चाहिए कि स्थूल शरीर की प्रत्येक क्रिया मन पर निर्भर करती है। देखने, सूँघने, चलने, खाने आदि की क्रिया मन करता है तो सभी स्थूल शरीर देखता, सूँघता चलता अथवा खाता है। यदि मन ऐसा न करे तो शरीर की क्या मजाल कि वह कुछ भी कर सके। शारीरिक क्रियाओं की गतिविधियों का संचालन केन्द्र मन में स्थित है। यदि मन एकाग्र है तो यह क्रियायें व्यवस्थित रूप से चलती हैं। उपासना क्षेत्र में मन को एकाग्र करने के परिणाम असाधारण रूप से देखे गये हैं। अपने इष्टदेव के सफल ध्यान से तेज और ओज की वृद्धि होती है। शक्ति केन्द्रों का जागरण होता है, अनन्त मानसिक शान्ति प्राप्त होती है, आत्मदर्शन और ब्रह्म साक्षात्कार होता है। शारीरिक व्यायाम में पूर्ण सफलता, प्राप्त करने के लिये मन की बिखरी वृतियाँ को एक स्थान पर केन्द्रित करने की आवश्यकता रहती है ताकि जिस उद्देश्य के लिये यह कार्य कर रहे हैं, उसके आशाजनक परिणाम उपस्थित हो सकें। सूर्य नमस्कार केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है। इसमें मानसिक बल बुद्धि की भी योजना निहित है। अतः एकाग्रता के अभाव में इस लक्ष्य तक पहुँचना असम्भव है।

मन्त्रशक्ति का सहयोग

सूर्य नमस्कार में मन्त्रों के उच्चारण का भी विधान है। मन्त्र ध्वनियों अथवा शब्द के समूह होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि ध्वनि तरंगों में अपार शक्ति होती है और उनका उपयोग किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने परीक्षण करके देखा है कि चिकित्सा क्षेत्र की ऊँची फ्रीक्वेन्सी वाली ध्वनि का प्रयोग मांसपेशियों की पीड़ा के उपचार में बहुत उपयोगी पाया गया है। घड़े पर थाली रखकर बजाने से बिच्छू आदि के काटे रोगी स्वस्थ किये जाते हैं। संगीत की लहरी का प्रभाव केवल मानव देह पर ही नहीं वनस्पतियों पर भी अनुकूल पड़ता है और उसका भी मन इससे प्रफुल्लित होता है और वे अधिक फल देते हैं। मन्त्रों द्वारा रोगोंपचार की प्रणाली तो भारत में प्राचीन काल से प्रचलित है। शब्द और ध्वनियाँ सूक्ष्म होती हैं। अतः वह स्थूल शरीर से अधिक शक्ति और सामर्थ्य रखती हैं। इसलिये स्थूल शरीर की क्रियाओं पर नियन्त्रण रखने की स्थिति में रहती हैं। इसमें वह परिवर्तन करने की क्षमता रखती हैं। वैज्ञानिकों के अपने अनुभव के आधार पर घोषणा की है कि ॐ के विधि पूर्वक उच्च उच्चारण से एक बड़ी दीवार गिराई जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि शब्दों की शक्ति से स्थूल जगत को प्रभावित किया जा सकता है। अतः मन्त्रों के विधिवत उच्चारण से स्थूल शरीर में हलचल और क्रियाशीलता उत्पन्न होती है, रक्त व्यवस्थित गति से प्रवाहित होने लगता है, अन्य यन्त्रों की क्रियाऐं भी स्वभाविक हो जाती हैं। सूर्य नमस्कार में मन्त्र विधान को सम्मिलित करने में शारीरिक व मानसिक [illegible] का रहस्य छिपा है।

आवश्यक नियम

सूर्य नमस्कार सूर्य की धूप से लाभ प्राप्त करने की ही विशेष व्यायाम पद्धति है। इसलिए ये सूर्योदय के समय ही करनी चाहिए और ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि व्यायाम करते समय सारे शरीर पर सूर्य की किरणें लगातार पड़ती रहें। सूर्योदय से लेकर तीन घंटे तक सूर्य की किरणों का स्वास्थ्यदायक प्रभाव रहता हे। अतः इसी समय से यह व्यायाम कर लेना चाहिए। इसके बाद नहीं। चूँकि सूर्य की शक्ति से लाभ उठाना है इसलिये अपना मुख पूर्व की ओर होना चाहिए। अपने सामने इष्टदेव का चित्र टांग लेना चाहिए और उसका ध्यान करना चाहिये। मन को इधर-उधर भटकने न देना चाहिए। जब मन गतिशील होने का प्रयत्न करे, उसे दीवार पर टाँगे चित्र में केन्द्रित करना चाहिए। अपने सामने एक बड़ा शीशा रखा जा सके तो उत्तम है क्योंकि उसमें शरीर की गतिविधियाँ देखी जा सकेंगी और भावना जाग्रत होगी कि जो अंग गतिशील हो रहे हैं, वह सुदृढ़ बलवान होते जा रहे हैं। जिस तरह से आटोसजैशन में क्रिया संचालित हो जाएगी। इच्छा शक्ति बढ़ेगी। इससे व्यायाम में आशा से अधिक लाभ होंगा। व्यायाम करते हुए मुँह से सांस नहीं लेनी चाहिए। शरीर पर कम से कम वस्त्र होने चाहिए, पेट खाली रहना चाहिए, स्थान साफ-सुथरा और हवादार हो। सूर्य नमस्कारों की संख्या को क्रम से ही बढ़ाना चाहिए। प्रारम्भ से ही अधिक देर तक करना ठीक नहीं है। क्रमिक विकास में ही लाभ होता है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य की नाल-तौल अवश्य कर लेनी

चाहिए। उसी के अनुसार यह क्रम जारी रहे। नियमितता के मूल मन्त्र को नहीं छोड़ना चाहिए। कभी-कभी कर लेने से पूर्ण लाभ होगा। आठ वर्ष से कम के बच्चों को यह नहीं करना चाहिये। विशेषज्ञों का मत है कि ८ से १२ वर्ष की आयु वालों को २५ से ५० तक सूर्य नमस्कार करने चाहिए। १२ से १६ वर्ष तक की आयु वालों को ५० से १०० तक और इससे अधिक की आयु वालों को अपनी शारीरिक शक्ति की सामर्थ्य के अनुसार धीरे-धीरे बढ़ाते हुए ३०० तक किये जा सकते हैं। आहार-बिहार का भी उसमें विशेष ध्यान रखना पड़ता है। चाय सिगरेट, शराब आदि तामसिक पदार्थों का सेवन कदापि न करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य को क्षति पहुँचती है। खान-पान और स्वास्थ्य के साधारण नियमों का पालन करना भी आवश्यक है। स्त्रियाँ भी यह व्यायाम कर सकती हैं। केवल मासिक धर्म आने से छः दिन तक और चार मास का गर्भ हो जाने पर इसे न करना चाहिये। प्रसव के चार मास बाद ही इसे आरम्भ किया जा सकता है।

मन्त्र विधान :

मन्त्रों को गठन का एक स्वतन्त्र विज्ञान है जो शब्द शक्ति पर निर्भर करता है। शब्द को हमारे शास्त्रों में ब्रह्मा कहा गया है। शब्दों की सूक्ष्म ध्वनि, तरङ्गों में अपार शक्ति होती है। उनके व्यवस्थित प्रयोग से इच्छित लाभ होते हैं। प्राचीन काल में यह विज्ञान इतना विकसित था कि शारीरिक, मानसिक व आत्मिक उन्नति के साथ साथ भयंकर अस्त्र-शस्त्रों में भी इनका प्रयोग किया जाता था। आधुनिक विज्ञान ने भी रोग निवारण के लिए ध्वनि तरंगों के सफल परीक्षण किये हैं। परिणामस्वरूप शारीरिक

ोगों में ही नहीं वरन् मानसिक रोगों में भी लाभ प्राप्त हो रहा है। भारतीयों के लिए मन्त्रों का प्रयोग एक साधारण-सी बात हो रही है। हर भारतीय इसमें पारंगत होता था। जीवन के हर क्षेत्र में इस विद्या का लाभ उठाया जाता था। सूर्य नमस्कार में आसनों के व्यायाम के साथ मन्त्रों के उच्चारण का यह उद्देश्य है कि शरीर के अंग-प्रत्यंग में शक्ति का विकास और आरोग्यता की प्राप्ति हो।

प्रणव और बीज मन्त्रों का शरीर के विभिन्न अंगों पर कैसा प्रभाव पड़ता ह, इसका प्रयोग करके आस्ट्रिया के वैज्ञानिक श्री ावर लेजारियों ने लिखा है कि 'प्रणव' के उच्चारण से हृदय मस्तिष्क, पेट और सभी सूक्ष्म इन्द्रियों पर प्रभाव पड़ता है। 'ह्री' से पाचन यन्त्रों फेफड़ों, गले और हृदय पर प्रभाव पड़ता है।' 'ह्रू' से पेट, जिगर तिल्ली आँतों और गर्भाशय को शक्ति मिलती है। 'ह्रैं' से मूल मार्ग निरोग होता है। 'ह्रौं' से उदर विकार दूर होते हैं, पक्वाशय और आमाशय सशक्त होते हैं, मूत्राशय शुद्ध होता है, कब्ज दूर होता है। 'ह्र' से अन्न नली को और फेफड़ों को बल मिलता है।

इससे सिद्ध होता है कि मन्त्रों के उच्चारण का शारीरिक स्वास्थ्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसको भारतीयों ने लाखों वर्ष पूर्व अनुभव कर लिया था और इनसे लाभ उठाने के विधि-विधान बनाये थे। सूर्य नमस्कार भी उनमें से एक है। इसमें निम्न मन्त्रों का उच्चारण प्रत्येक सूर्य नमस्कार के प्रथम आसन से पहले करना चाहिये।

(१) ॐ ह्रां मित्राय नमः। (२) ॐ ह्रीं रवये नमः। (३) ॐ ह्रूं

सूर्याय नमः। (४) ॐ हैं मानवे नमः। (५) ॐ ह्रौं खगाय नमः (६) ॐ ह्र पूष्णे नमः। (७) ॐ ह्राँ हिरण्यगर्भाय नमः। (८) ॐ ह्रीं मरीचये नमः। (६) ॐ हूँ आदित्याय नमः। (१०) ॐ हैं सवित्रे नमः। (११) ॐ ह्रौं अर्काय नमः (१२) ॐ ह्र भास्कराय नमः। (१३) ॐ ह्राँ ह्री मित्ररविभ्याम्। (१४) ॐ हू हें सूर्याभानुभ्याम नमः। (१५) ॐ ह्रौं ह्र खगपूषभ्याम् नमः। (१६) ॐ हें ह्रीं हिरण्यगर्भमरीचियाम् नमः। (१७) ॐ हू आदित्यसवितृभ्याम्ः। (१८) ॐ ह्रौं ह्र अर्कभास्कराभ्याम् नमः। (१६) ॐ ह्राँ ह्रां हूँ हैं मित्ररवि सूर्यभानुभ्यो नमः। (२०) ॐ ह्रों ह्र ह्रां ह्रौं खगपूषहिरिण्यगर्भ मरीचिभ्यो नमः (२१) ॐ हूहें ह्रौं ह्र आदित्यसवित्रर्कफारकरेभ्यो नमः। (२२–२३–२४) ॐ ह्राँ ह्रों हं है ह्रौं ह्रः, ॐ ह्राँ ह्रीं हू हैं ह्रीं ह्रः मित्र रविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यग भमरीच्यादिन्यासवित्रक भास्करुभ्यो नमः (२५) ॐ श्री सवित्रेन सूर्यनारायण नमः।

आसन-

सूर्य नमस्कार में १० आसनों की व्यवस्था है जो इस प्रकार है-

पहला आसन–सीधे खड़े होकर सारे शरीर, पीठ, गर्दन और सिर को एक रेखा में कर लेना चाहिए। दोनों पैर साथ जुड़े रहे। दोनों हाथों को जोड़कर छाती से सटाकर नमस्कार की स्थिति में रखना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो, पेट को पीठ की ओर खींचना चाहिए और छाती को फुलाना चाहिये। फेफड़ों में वायु भरने को योग की भाषा में पूरक कहते हैं। पूरक के बाद में कुम्भक आता है जिसमें खिंची हुई वायु अन्दर रोकी जाती है। वायु को अन्दर रोककर ही दूसरा आसन आरम्भ

रना चाहिये।

दूसरा आसन—शरीर को सामने की ओर झुकाकर हाथों की हथेलियों के पंजों की भूमि पर लगाना चाहिए। हथेलियों के जे पैर की एड़ियों की सम रेखा में हों। नासिका के अग्रभाग या मस्तक को घुटनों से लगाना चाहिए। यह क्रिया करते समय टने सीधे रहें, टेढ़े न हो जावें। यह आसन करते हुए अन्दर की हुई वायु को बाहर निकाल देना चाहिये। इस क्रिया को चक कहते हैं। इन दो आसनों में पूरक, कुम्भक और रेचक रने से प्राणायाम भी पूरा हो गया। नये अभ्यासी या स्थूल रीर वालों को इसमं कुछ कठिनाई हो सकती है। इससे निराश हीं हो जाना चाहिये। धीरे-धीरे यह आसन ठीक होने लगेगा।

तीसरा आसन—फेफड़ों में पुनः वायु भरकर हाथ की हथेलियों र बायें पैर को यथा-स्थान रखकर दायें पैर को पीछे ले जाना हिए। पीछे झुकी हुई, सदा आकाश की ओर और बाँयी टाँग नों भुजाओं के बीच में हो। दाँये पैर को बदलकर फिर बाँया पीछे कर लेना चाहिए। इस बीच में अन्दर खिंची हुई वायु की रहनी चाहिये।

चौथा आसन—तीसरे आसन में एक पैर पीछे की ओर एक आगे भुजाओं के बीच में या इसमें दोनों पैरों को पीछे कर ना चाहिये और एड़ियों के पंजों पर उन्हें स्थित रखना हिये। यह ऐसी स्थिति है जैसे दण्ड करने के लिए आगे कने की तैयारी में हों। इसमें सिर का पिछला भाग, पीठ और एक सीध में होने चाहिये।

पाँचवा आसन—अभी तक अन्दर खिंची हुई वायु रुकी हुई

है। हाथ और एड़ियों के पंजे अपने स्थान पर ही रहेंगे। दण्ड करने की तरह शरीर को आगे इस तरह झुकाना चाहिये कि घुटने, छाती के नीचे वाला भाग और मस्तक को भूमि से स्पर्श करना चाहिये और अन्दर रुकी हुई वायु को बाहर निकाल देना चाहिये।

छठा आसन–फेफड़ों में साँस भरते हुये छाती और मस्तक को ऊपर उठाना चाहिये। मस्तक को यथा सम्भव पीछे की ओर ले जाना चाहिये और दृष्टि आकाश की ओर हो। वायु को भरे रहना चाहिये।

सातवां आसन–अब नितम्बों और पीठ को ऊपर की ओर ले जाकर छाती और सिर को ऐसे झुकाना चाहिये कि सिर दोनों भुजाओं के बीच में हो और दोनों टांगे नितम्बों की सीध में हों। ठोढ़ी को छाती से छूने का प्रयत्न करना चाहिये और पेट को यथा सम्भव अन्दर खींचना चाहिये। यह क्रिया करते हुए साँस को बाहर निकाल देना चाहिये। यह एक और प्राणायाम पूरा हो गया।

आठवाँ आसन–पुनः फेफड़ों में वायु भरकर तीसरे आसन की स्थिति में आ जाना चाहिए और सांस को अन्दर रोके रहना चाहिये। अब पीछे से पैर आगे भुजाओं के बीच में आ जायेगा और सिर आकाश की ओर रहेगा।

नवां आसन–अब दूसरे आसन की स्थिति में आ जाना चाहिये और हाथों की हथेलियों को पैरों की एड़ियों के सामने भूमि पर रखना चाहिये और टाँगों को सीधे रखते हुए मस्तक को घुटनों से छूना चाहिये और रुकी हुई वायु बाहर निकाल

देनी चाहिये।

दसवाँ आसन–फेफड़ों में वायु भरकर सीधे खड़े हो जायें और पहले आसन की स्थिति में आ जायें। पैर के पंजे, दोनों घुटनों और हाथ मिले हुए हों, पेट अन्दर की ओर खिंचा हुआ हो। यह एक सूर्य नमस्कार हुआ।

भावना की प्रधानता :

सूर्य यहाँ दिखलाई दे रही हर वस्तु का मूल है। उसकी आकर्षण शक्ति से ग्रह-उपग्रह निश्चित गति से घूम रहे हैं। उसकी किरणों में स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने, कीटाणुओं को नाश करने और रोगों को दूर करने की अपार सामर्थ्य है। उसके दिव्य गुणों के कारण उसे हिन्दू धर्म में देवता की संज्ञा दी गई और उसकी विभिन्न विधि-विधानों से पूजा अर्चना की जाने लगी। उपकारों के प्रति कृतज्ञता की भावना व्यक्त करना भारतीय संस्कृति की महान विशेषता है। सूर्य के प्रति भी हम ऐसा करके अपने मानवीय गुणों की सुरक्षा करते हैं। सूर्य की शक्ति दायीं किरणों से आह्वान के साथ आराधना का भाव रहता है। उसमें श्रद्धा ओत-प्रोत रहती है। जहाँ श्रद्धा और भावना रहते हैं। वहाँ शक्ति का अवतरण होता है। यह शक्ति केवल शारीरिक क्षेत्र में ही नहीं बढ़ती वरन् मानसिक व आत्मिक क्षेत्रों में इसका उत्तरोत्तर विकास होता है क्योंकि आसनों के साथ मन्त्र पाठ, प्राणायाम और मन की एकाग्रता का विधान भी जुड़ा हुआ है इसलिए सूर्य नमस्कार के साथ एकाग्रता का विधान भी जुड़ा हुआ है इसलिए सूर्य नमस्कार के

साथ दैवी गुण भी विकसित होते हैं। यह इस व्यायाम की विशेषता है।

सूर्य नमस्कार में भावना शक्ति का प्रयोग इसके लाभों में वृद्धि करता है। इसके प्रत्येक आसन में शरीर के जिस भाग पर दवाब पड़ रहा हो, उसके सम्बन्ध में यह भावना करनी चाहिये कि उसमें रक्त तीव्र गति से प्रवाहित हो रहा है। इसकी नसों और नाड़ियों में शक्ति स्फूर्ति और क्रियाशीलता आ रही है। निर्बलता और रोग दूर होकर शक्ति और आरोग्यता बढ़ रहे हैं। वह अंग सजीव व प्राणवान् बन रहे हैं। प्रत्येक आसन के साथ इस तरह की भावना करने से सारे शरीर में शक्ति का विद्युत जैसा प्रवाह दौड़ने लगता है, क्योंकि भावना और इच्छा शक्ति स्वयं ही सूक्ष्म विद्युत को क्रियाशील करने वाले शक्तिशाली मन्त्र हैं। यह भावना जितनी दृढ़ होगी, उतना ही आशाजनक लाभ होगा।

शारीरिक लाभ :

पहले आसन से पेट, पीठ, छाती, पैर और भुजाओं पर, दूसरे से हथेलियों, भुजाओं, गर्दन, पीठ पेट, आतों, नितम्ब, पिण्डलियों, घुटनों और पैरों पर, तीसरे में पैरों व हाथों के पंजों, छाती, पीठ और गर्दन पर, चौथे में हाथ, पैरों के पंजों और गर्दन पर, पाँचवें में भुजाओं और घुटनों पर छठे में भुजाओं, गर्दन, पेट पीठ के स्नायुओं पर, सातवें में हाथों, पैरों के पंजों, नितम्बों भुजाओं और पिण्डलियों व कमर पर, आठवें में हथेलियों, हाथों, गर्दन, पीठ, पेट, आँतों, नितम्ब, पिण्डलियों,

घुटनों और पैरों पर, नवें में हाथों के पंजों, भुजाओं, घुटनों गर्दन व पीठ पर और दसवें में पीठ छाती और भुजाओं पर दबाव पड़ता है, वहाँ के स्नायु-मण्डल में खिंचाव होता है परिणाम स्वरूप वह अंग शक्तिशाली बनते जाते हैं।

सूर्य नमस्कार व प्राणायाम की सम्मिलित क्रिया से ही उपरोक्त वर्णित लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

ओंकार युक्त प्राणायाम साधना

ऋषियों की अनुभूतियाँ :

प्राणायाम उत्तम योग साधना है, ओंकार को श्रेष्ठतम मन्त्र व जप माना जाता है। विधि पूर्वक की गई साधनाओं प्रणालियों को एक सम्मिलित साधना के रूप में मिला दिया जाये तो निश्चय ही उनका प्रभाव अधिक शक्तिशाली होना चाहिये। जिन ऋषियों ने इस साधना को व्यवहारिक रूप दिया, उन्होंने अपनी अनुभूतियों का वर्णन उपनिषद् प्रवचनों में किया है। क्षुरकोपनिषद् (२४) में कहा गया है–

प्राणायामसुदीक्ष्णेन मात्राधारेण रोगवित्।
वैराग्यीयधृष्टेन छित्वा तन्तुं न बध्यते।।

प्राणायाम द्वारा अत्यन्त तीक्ष्ण बनाई, ओंकार रूप धार वाली और वैराग्य पत्थर पर घिसी हुई (मन रूपी) छुरी से संसार रूपी सूत्र को काटकर योगवेत्ता मनुष्य फिर उसके द्वारा नहीं बाँधा जाता।'

जाबाल दर्शनोपनिषद् में ओंकार युक्त प्राणायाम की विधि

का वर्णन करने के बाद इस साधना से लाभों का दिग्दर्शन इस प्रकार किया गया है—

एव समयसेन्नित्यं प्राणायाम मुनीश्वर।
एवमभ्यासतो त्यं पाष्मासाद्यत्वनान्भवेत्।।
वत्सराद्ब्रह्मविद्वान्स्तस्मान्नियं समभ्यसेत्।
योगाभ्यासरतो नित्य स्वधर्मनिरतश्च यः।।

'हे मुने ! इस प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन करे। छः महीने तक ऐसा करे तो ज्ञानहीन पुरुष भी ज्ञानवान हो जाय। एक वर्ष तक इस प्रकार प्राणायाम करने वाले साधक पुरुष को ब्रह्म साक्षात्कार होता है। इसीलिये प्राणायाम के नित्य अभ्यास करने का निर्देश है। योगाभ्यास में रहने वाला तथा धर्म पालन में तत्पर मनुष्य प्राणायाम द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करता हुआ इस जगत के बन्धन से मुक्त होता है।'

परिभाषा :

शाण्डिल्योपनिषद् में ओंकार और प्राणायाम के पारस्परिक सम्बन्ध पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

शाण्डिल्य ने योग के आचार्य से प्रश्न किया—हे मुनिवर ! कृपया प्राणायाम और ओंकार के विषय में उपयोगी ज्ञान देकर मुझे अनुग्रहीत करें। इस पर ब्रह्मचर्चा में परम रस लेने वाले मुनिराज ने ये वचन कहे।

'प्राणापन-समयोगः प्राणायामो भवति। रेचक-पूरक-कुम्भक भेदेन स त्रिविधिः। वर्णात्मकाः **तस्मात् प्रणव एव प्राणायामः।**

प्राण और अपान को इकट्ठा कर देना ही प्राणायाम है। रेचक पूरक और कुम्भक भेद से यह तीन प्रकार का है। वह वर्ण रूप है, इसलिये प्रणव ही प्राणायाम है।

जावाल दर्शनोपनिषद् (३।१,२) में इन्हीं भावों को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है–

प्राणायाम इति प्राक्तो रेचपूरक कुम्भकः।।१
वर्णत्रायात्माकाः प्रोक्ता रेचपूरक कुम्भक।।
स एस प्रणवः प्रोक्त प्राणायामस्तु तन्मयः।।२

'पूरक कुम्भक, रेचक क्रियाओं द्वारा प्राण संयत किया है, वही प्राणायाम है। ओंकार में आकार, उकार और मकार यह तीन वर्ण हैं। वे क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचक से सम्बन्धित हैं। इन तीन वर्णों का एकत्र होना ही प्रणव है। इसलिए प्राणायाम भी प्रणवमय माना गया है।

महत्ता :

लोक प्रसिद्ध है कि प्राणायाम मानसिक विकारों को दूर करने का एक यौगिक व्यायाम है। इससे मनोविकार ही नष्ट नहीं होते, अन्तः करण की शुद्धि नहीं होती, अपितु शारीरिक व्याधियाँ भी विनष्ट होती हैं। मन बुद्धि और जीवन में उमङ्ग, उत्साह, स्फूर्ति, उल्लास, पुलक और मस्ती आती है। काम करने में खूब मन लगता है मनोभूमि के परिष्कार और विकास के साथ ही साथ इसके द्वारा ब्रह्मा का साक्षात्कार भी प्राप्त होता है। समाधि का तो यह एकान्तरिक उपाय ही है। फिर प्रश्न उठता है कि इस मनो-शारीरिक व्यायाम से ओंकार का

क्या सम्बन्ध है? क्यों महर्षि अथवा ने प्रणव को ही प्राणायाम कहा है?

ऋषिवर के उपयुक्त कथन का अभिप्राय यही है कि प्राणायाम की साधना के साथ ओ३म् का जप अथवा भावपूर्ण चिन्तन ध्यान किया जाता है। श्वास प्रश्वास के नियम की शुष्क क्रिया इसी से रसवती बनती है। ओ३म् के जप, भावपूर्ण चिन्तन और ध्यान के द्वारा ही रेचक पूरक और कुम्भक की क्रियायें प्राणवान् बनती हैं और उनके द्वारा जो अमित लाभ या अभीष्ट पूर्ति होती है, वह ॐ को पराशक्ति के कारण ही है। ओ३म् रहित प्राणायाम सामान्य व्यायाम भर ही है, उसका प्रभाव भी सामान्य कोटि का होता है। किन्तु जब उसके साथ ओंकार को जोड़ दिया जाता है, तो उसकी आत्म-शोधन और पोषण क्रिया बहुगुणित हो जाती है।

प्राणायाम जब तालयुक्त ध्वनि के साथ किया जाता है, जब उसके अनाहत ध्वनि श्रवण का समायोग किया जाता है, तो निश्चय ही वह कोरा शारीरिक व्यायाम भर न रहकर उच्च-स्तरीय प्रणव साधना बन जाती है। इसी तथ्य को लक्ष्य करके ऋषियों ने प्राणायाम को ही प्रणव कहा है। प्राणायाम से प्रणव का अभिन्न सम्बन्ध है। प्रणव के साथ ही प्राणायाम करना यही भारतीय अध्यात्म की अविछन्न परम्परा है। इसी परम्परागत समन्वय का प्रतिपादन 'तस्मात् प्रणव एवं प्राणायामः कहकर महामुनि अथर्वा ने किया है।

उपनिषदों का साधना विधान :

इड़या ब्राह्मद्वायुम पूय षोडषमात्राभिरकर चिन्तयन् पूरिति वागुं चतु षष्टि-मात्राभिः कुम्भयित्वोंकारं ध्यानम् पूरितिपिंगलया द्वाविशन्यमात्रया मकार मूर्तिध्य नेनैव क्रमेण पुनः कुर्यात्।

-शाण्डिल्योपनिषद्-षष्ट खण्डः

पद्मासन आदि किसी भी सुख-आसन पर बैठकर साधक को नासाग्र पर ध्यान करते हुए प्राणायाम करना चाहिये। उसके लिये बड़ा नाड़ी के द्वारा बाहर वायु को १६ मात्रा (१६ बार ओ३म्-ओ३म्) कहते हुए अन्दर खींचना चाहिये। वायु आपूरण के समय ओ३म् के 'ओंकार का चिन्तन करना उचित है। फिर इस वायु की चौंसठ मात्रा में (६४ बार ओ३म्-ओ३म् कहते हुए) कुम्भक करना चाहिये। उस समय उकार याध्यान करना यथेष्ट है। तदनन्तर पिंगला नाड़ी द्वारा उस बत्तीस बाधाओं में भरे हुये वायु को बाहर निकालना चाहिये। इस रेचक क्रिया के समय मकार का ध्यान करना उचित है। इसी क्रम में बारम्बार प्राणायाम करना चाहिये। यही प्रणव प्राणायाम है।

इसे योग ग्रन्थों में मध्यम सहित कुम्भक कहते हैं। कनिष्ट सहित कुम्भक में पूरक ८ बार में ओंकार जप से, कुम्भक ३२ से और रेचक १६ बार से करनी होती है। शेष विधि वही है। उत्तम सहित कुम्भक में पूरक ३२ करके ओंकार जप से कुम्भक १२८ बार और रेचक ६४ बार के जप से किया जाता है। शेष विधि पूर्ववत है।

सहित कुम्भक की सिद्धि लम्बे समय में होती है। सिद्धि होने पर प्राणों पर विजय प्राप्त हो जाती है ओंकार का साक्षात्कार होता है, मानव इन्द्रियाँ संयमित हो जाती हैं, भूख-प्यास पर नियन्त्रण हो जाता है। मुख मण्डल पर एक अनोखी चमक आने लगती है, शरीर में अद्‌भुत शक्ति व स्फूर्ति आती दिखाई देती है।

योग चूड़ामणि उपनिषद् (१०१–१०५) में प्रणवमय प्राणायाम की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है–

रेचक, पूरक, और कुम्भक ये प्रणव स्वरूप हैं, इस प्रकार का प्राणायाम द्वादश मात्रा में करना। यह द्वादश मात्रा संयुक्त सूर्य और चन्द्र का प्राणायाम समस्त दोषों का नाश करने वाला है। बारह मात्रा का पूरक करके सोलह मात्रा का कुम्भक करना चाहिये, तब फिर दस मात्रा का रेचक करना–यह ओंकार प्राणायाम कहा जाता है। द्वादश मात्रा का प्राणायाम हल्का है, इससे दुगुनी मात्रा मध्यम है और तिगुनी मात्रा वाला उत्तम कहा जाता है। हलके प्राणायाम से पसीना आता है, मध्यम से कम्पन उत्पन्न होता है, उत्तम में आसन से उठता जान पड़ता है, इस प्रकार वायु का निरोध करना चाहिये।

अमृतनादोपनिषद् (१६–२०) में साधना का स्थान, आसन, दिशा और प्राणायाम की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है–"स्वच्छ एवं दोष-रहित भू-भाग में पद्‌मासनी स्वस्तिकासन, भद्रासन में से किसी एक योगासन को लगाकर उत्तराभिमुख बैठें और मानसिक रक्षा करते हुए जप करें। फिर एक अँगुली से नाक के छिद्र को बन्द कर वायु को रोकें और एकाक्षर ब्रह्म

का तेजोमय शब्द प्रणव का चिन्तन करें और इसी का चिन्तन करते हुए धीरे-धीरे वायु को निकाल दें इस प्रकार प्रणव रूप दिव्य मन्त्र के अनेकों बार प्रयोग द्वारा चित्त का मल दूर कर देना चाहिए। इस प्रकार प्रणव का चिन्तन करें। इसी उपनिषद् के २३ वें श्लोक में फल की सूचना देते हुए बताया गया है कि—इस योग का अभ्यास नियत योजना के अनुसार करना चाहिये। यह ताल वृक्ष के समान कुछ समय में ही लाभदायक है।'

कृष्ण उद्धव सम्वाद और प्रणव युक्तप्राणायाम

भागवत पुराण में प्राणायाम के सम्बन्ध में एक मनोहर कथा आती है। भगवान श्रीकृष्ण के उद्धव जी परम सखा थे। आध्यात्मिक विषयों पर विचार विनिमय चलता रहता था। एक बार प्रणव की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए योगीराज भगवान श्रीकृष्ण्र ने उद्धव जी से कहा—

सम-आसन-आसीनः समकायो यथासुखम्।
हस्तावुत्संग आधाय, स्वनासाग्रकृतेक्षणः।।
प्राणस्य शोधयेन्मार्ग, पूरक-कुम्भक-रेचकैः।
विषयंयेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः।।
हृदयविच्छिन्नमोंकार घन्टानाद विशोर्णवत्।
प्राणेनोदीयं तत्राथ, पुनः संवेशयेत्वेरम्।।

हे ऊधव ! प्रणव की सरल, सुख-साध्य उपासना की सर्वोत्तम विधि मैं तुम्हें बताता हूँ। सिद्धासन, पद्मासन प्रभृति किसी भी आसन पर सुखपूर्वक यथाविधि बैठकर दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रक्खें। दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर

करके सर्वप्रथम बार-बार रेचक और पूरक करके नाड़ी शुद्ध कर लेना चाहिए। नाड़ीगत आलस्य, तन्द्रा शैथिल्य, अवसाद आदि को इस प्रकार दूर करके नस-नस में नव स्फूर्ति और चैतन्यता का संचार करके प्रणव के साथ रेचक पूरक और कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए। प्राण के रोध से जब मन शान्त हो जाय तब हृदय कमल में निहित ओंकार का ध्यान करके घन्टादि नादों की लय में अनाहात ध्वनि ओंकार का श्रवण करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन ओ३म् जप के साथ रेचक, पूरक, कुम्भक रूप प्राणायाम का अभ्यास करने से प्राण का निरोध होने लगता है। मन को वश में करने का इससे सरल उपाय और कोई नहीं है।

ओ३म् का प्राणायाम से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसका उल्लेख करते हुए महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में प्राणायाम की स्वानुभूति विधि का वर्णन इन शब्दों में करते हैं–

"जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्नजल बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण को बाहर फेंककर, बाहर ही यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकालना चाहें, तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें, जब तक कि प्राण बाहर रहता है। इस प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे-धीरे वायु को भीतर लेके फिर भी वैसे ही करते जायें। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि, तीव्र और सूक्ष्म रूप हो जाती है और बहुत कठिन तथा सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य बुद्धि को प्राप्त होता है। बल,

पराक्रम, जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी तरह योगाभ्यास करें।

भ्रामरी प्राणायाम और ओंकार-

प्राणायाम के अनेक भेद हैं। सभी के साथ ओ३म् का जप स्मरण करने का विधान है। जितना भी अधिक जप किया है, उतनी ही अधिक कुम्भक की मात्रा बढ़ती जाती है। इस तरह प्राणायाम से जप और तप से प्राणायाम क़ी उपयोगिता बढ़ती है।

अब हम नीचे एक अत्यन्त लाभकारी प्राणायाम की विधि लिखते हैं, जिसको आसानी से स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सभी कर सकते हैं–

(१) पहले अपने अभ्यस्त आसन पर सुखपूर्वक बैठ जाइये। मेरुदण्ड को सीधा कीजिये।

(२) फिर बाँये हाथ के अँगूठे से बाँये नथुने को दबाकर पूरक कीजिये। पूरक करते समय अधिक से अधिक वायु भरने की कोशिश करें साथ ही साथ भावना करें कि पूर्यमणि वायु मूलाधार तक भर गई है। वह मूलाधार को स्पर्श करती हुई उसकी सुप्त शक्तियों को चैतन्य कर रही है।

(३) वायु के मृदु स्पर्श को मूलाधार प्रवेश में भावना करते हुए कुछ देर तक कुम्भक कीजिए।

(४) इसके बाद कण्ठ में भौंरे जैसी मधुर गुञ्जार (ध्वनि) करते हुए दाहिने नासा छिद्र से धीरे-धीरे रेचक करते रहें। यथाशक्ति रेचक को लम्बा करने की निरायाम चेष्टा करें।

(५) जब दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने नथुने को दबाकर पूरक कीजिये। अधिक से अधिक वायु भरिये। ऐसी मन ही मन भावना कीजिये कि भरी हुई वायु मूलाधार को स्पर्श कर रही है। सुप्त शक्तियों को अपने शीतल स्पर्श से जाग्रत कर रही है।

(६) जितनी देर तक संभव हो उपयुक्त भावना के साथ कुम्भक कीजिए।

(७) इसके बाद कण्ठ से भौंरे जैसी गुञ्जार करते हुए बांये नासा छिद्र से धीरे-धीरे रेचक करते रहें। वायु के बाहर निकालने की यह क्रिया मंदगति से होनी चाहिये। जल्दबाजी यथा शीघ्र न करें।

वाम नासिक पुट से पूरक करके कुछ देर तक कुम्भक करने के बाद दाहिने नासापुट से उसी तरह रेचक करना तथा फिर यही क्रिया दक्षिण नासापुट से क्रमशः पूरक, कुम्भक, करके बाँये नासाछिद्र से रेचक करना एक प्राणायाम हुआ। साधारण गृहस्थ इस प्राणायाम को तीस बार कर सकता है। इस प्राणायाम के करने से वीर्य ऊर्ध्वगामी बनता है। रस, रक्त आदि धातुओं की वृद्धि होकर दीर्घायु प्राप्त होती है। मूलाधार की सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत होकर आलसी और कमजोर व्यक्तियों को भी अद्भुत पराक्रम, स्फूर्ति तथा नवजीवन प्राप्त होता है। वह बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी के लिए समान लाभकारी एवं निरापद है।

प्राणायाम से दूसरों के रोगों को दूर करने की विधि

प्राणायाम के द्वारा दूसरों के रोगों को उसी प्रकार दूर किया जा सकता है जिस प्रकार औषधि सेवन से। तेज और विषघ्न (एन्टी वायटिक्स) औषधि से कहने को तो रोग के ऊपर लक्षणों का तो शमन होता है, किन्तु उससे जीवनी शक्ति की बड़ी क्षति होती है याद रहे, वही रोग निवारक उपचार सही कहा जा सकेगा जिससे रोग लक्षणों की शक्ति के साथ ही हमारी प्राकृतिक जीवन शक्ति भी बदलती हो, क्योंकि रोग आक्रमण तभी होता है, जब वह निर्बल पड़ जाती है। प्रायः औषधि बल पूर्वक दोष निरर्हण, दोष क्षरण या दोष जरण की प्राकृतिक क्रिया को रोक देता है। ऐसा करने से तत्कालिक लाभ तो होता है, किन्तु कालान्तर में बड़ी हानि होती है। अन्तःबल या प्राण शक्ति के क्षीण होने से कुछ ही समय बाद दूसरे विकार उठ खड़े होते हैं। तेज, विषयुक्त सल्फाड्रग लेने वाले हर समय किसी न किसी शारीरिक मानसिक रोग से पीड़ित रहते हैं कब्ज, आलस्य, घबराहट हौलदिली, चक्कर, दुःस्वप्न, सिरदर्द, जुकाम आदि विकारों से वे हरदम संत्रस्त रहते हैं। वे शरीर में कभी हल्कापन अनुभव नहीं करते। इससे यही सिद्ध होता है कि तीव्र औषधि प्राणशक्ति का तीव्रता से ह्रास करती है।

इसके विपरीत प्राणायाम प्रत्यक्ष हो प्राणशक्ति के संग्रह की

सरल सी प्रक्रिया है। इसके द्वारा रोग का उपशमन करने से रोग के वाह्य-लक्षण ही शान्त नहीं होते, रोग के मूल कारण रूप आन्तरिक-लक्षण भी दूर हो जाते हैं। प्राणशक्ति बढ़ने से रोग नाश के साथ ही साथ रोगी को उमङ्ग, उत्साह, स्फूर्ति, शक्ति-बोध और मृदुता का आपसे आप अनुभव होता है। उनकी चैतन्यता और कर्म-प्रणवता बढ़ जाती है। जिगर, गुर्दा, हृदय, फेफड़े, और आँते, बिगुल प्राण के प्रभाव से अपना कार्य यथाविधि अधिक फुर्ती के साथ करने लगते हैं। नलिकाविहीन ग्रंथियों का रस श्रवण स्वस्थ और लाभकारी होने लगता है, जिससे मन प्रसाद (आन्तरिक प्रसन्नता) सद्भाव उदारता जैसी साहित्यक भावनायें हृदयतल पर उमड़ने लगती है। अतः प्राणायाम के द्वारा किया हुआ रोग-शमन ही स्थायी है। वह आयु को बढ़ाने वाला और अन्तर अवयवों को शक्ति देने वाला है।

प्राणायाम की सहायता से दूसरों की सभी शारीरिक व मानसिक विकार दूर किये जा सकते हैं। असाध्य कहे जाने वाले उन रोगों की भी सफल चिकित्सा इससे की जा सकती है, जिनके विषय में डाक्टर और वैद्यों ने निराश होकर कहा था कि अब दवा की जरूरत नहीं है, दुआ (ईश्वर प्रार्थना) की जरूरत है। इसके द्वारा हाथ का दर्द, पीठ का दर्द, पेट का दर्द, संधिवांत, टाँग का दर्द, दाढ़ का दर्द, यकृत के रोग, आधाशीशी, सिर का दर्द, मम्दाग्नि, मूत्राशय की पीड़ा पक्षाघात (लकवा) गर्भपात, दमा शय्यामूत्र, मृगी, हिस्टीरिया आदि का सफल इलाज अपने ही देश में कई वर्षों तक डा० नागर ने किया था। अतः इस चिकित्सा पद्धति को झुँठलाया नहीं जा

सकता है। स्वयं प्रयोग (एक्सपेरीमेन्ट) करके परीक्षा कीजिए। धैर्यपूर्वक दीर्घकालिक अभ्यास की आवश्यकता है। जिस प्रकार वैज्ञानिक शोधः कार्य में दत्तचित्त होकर विश्वासपूर्वक लगा रहता है, नये प्रयोक्ता को उसी प्रकार श्रद्धा (सद्भावना) और विश्वास के साथ अपने प्राण को बलदान् बनाने का सर्वप्रथम कुछ सप्ताहों तक अभ्यास ही होगा।

रोगों के उपचार की तैयारी-

दूसरों के उपचार के लिए अपने को निरोग और प्राणवान बनाना आवश्यक है। धैर्य के साथ-साथ दृढ़-संकल्प होना भी जरूरी है। प्रयोक्ता को पूरी तरह से आत्म-विश्वासी होना चाहिए। अपने व्यवहार, अपनी बातचीत से उसे रोगी के हृदय में, रोगी के उपचारकों के हृदय में चिकित्सा के प्रति विश्वास भरना होगा। यदि रोगी संशयात्मक है तो भी घबड़ाने की बात नहीं है। अपने किसी हाव-भाव से उसके संशय को बल न मिले इसका ध्यान रहे। अपनी उक्तियाँ तो उत्साहवर्धक, आशा का संचार करने वाली ही होनी चाहिए।

स्वच्छता और पवित्रता-

रोगी का जब उपचार करें, तब उसको स्वच्छ वस्त्र पहिना देने चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो तो, साफ बिस्तर पर उसे लिटा देना चाहिए। स्वच्छता, सफाई, पवित्रता का ध्यान और सुगन्ध युक्त वातावरण बनाने के सम्भव प्रयास किये जाने चाहिये। सुगन्ध दीप आदि की हो। रोगी को आराम कुर्सी या साधारण कुर्सी पर बैठाया जा सकता है।

रोगी को निर्देश-

उपचार के समय रोगी की आँखें बन्द करवा देनी चाहिए। उससे कहना चाहिये कि वह अपने आराध्य की रश्मिल कृपाधारा का ध्यान करे। ऐसा अनुभव करे कि बाथ शाव (स्नानागार में लगे हुए फब्बारा जैसी धारा झरने वाले नल) की तरह उसके आराध्य के ज्योति उसके अङ्ग-अङ्ग को अभिसिक्त कर रही है। उसका अङ्ग-अङ्ग उससे स्वच्छ और सबल हो रहा है। उससे यह भी कहें कि वह ऐसा सोचते समय मन ही मन पुलक की, आनन्द की भावना करे। बार-बार गुदा संकोचन करके पुलक की भावना को सजीव बनाया जा सकता है।

कम व हल्का परिधान-

ध्यान रहे, रोगी कम से कम वस्त्र पहिने हो। रुग्ण स्थान बिल्कुल खुला रहे, तो और भी अच्छा रहे। रेशमी या ऊनी वस्त्र प्रयोग के समय शरीर पर कदापि न रहने चाहिये। उन्हें रखने से प्राणोपचार की प्रक्रिया में बाधा आती है। स्त्रियों के पवित्र अङ्गों को वस्त्र रहित नहीं किया जा सकता। बहुत निर्बल रोगियों को खराब मौसम में नङ्गा करना भी उचित नहीं है। ऐसी दशा में एक हल्के वस्त्र या चादर से शरीर को ढक देना चाहिए किन्तु बटन या घुण्डी न लगी रहे। पेट या धोती में गाँठ भी न लगी रहे। इसका ध्यान उपचारक को रखना चाहिए।

मार्जन सम्बन्धी सावधानी-

रुग्ण स्थान या रोगी के सम्पूर्ण शरीर पर पाँच मिनट से लेकर आधे घण्टे तक मार्जन (पासेज) करना चाहिए। यह

क्रिया आगे लिखे ताल युक्त प्राणायाम को स्वयं करके करना है। मार्जनों में विद्युत प्रवाह के निकलने के मुख्य मार्ग उँगलियों के छोर हैं। यदि नाखून बड़े होंगे तो वह प्रवाह रुकेगा और रोगी पर पूरा असर न होगा। हर एक मार्जन करने के पश्चात रोगी के शरीर में से दूषित आकाश तत्व निकल कर अपनी उँगलियों के छोर से चिपक जाया करता है। इसे पूरी तरह झटके देकर आकाश में छिड़क देना चाहिए। यदि चिकित्सक की उँगलियों में वह लगा रह जावेगा, तो वह उसे भी रोगी वाली बीमारी लग सकती है। याद रहे, मार्जन करते समय हाथ की उँगलियों को अन्दर की ओर इस ढङ्ग से मोड़ लेना होता है, मानो आप उनके द्वारा कोई वस्तु घसीटते हुए खींच रहे हैं। मार्जन करते समय अपनी भावना भी वैसी ही होनी चाहिये।

समय निश्चित न करे-

रोगी के रोग निवारण का समय मत बाँधो। कई रोगियों में दो तीन बार के मार्जन से ही आश्चर्यजनक लाभ दिखाई पड़ने लगता है। किन्तु दूसरों में उनका सुप्रभाव दूसरे तीसरे दिन से दृष्टिगोचर हुआ करता है। बीमार यदि पूछे कि कितने दिन में अच्छा हो जाऊँगा तो उसे स्पष्ट दिन संख्या न बताकर विश्वास भरे दृढ़ में बताना चाहिए कि तुम्हारा रोग शीघ्र दूर हो जावेगा। कोई समय निश्चित कर देना ठीक नहीं, डाक्टर वैद्य भी ऐसा नहीं करते। कोई समय निश्चित करने से यदि उतने दिन में लाभ न हुआ, तो रोगी के मन में अश्रद्धा और निराशा आ जावेगी जो ठीक नहीं।

सहानुभूति पूर्ण व्यवहार :

रोगी से बातचीत करते समय अपनी वाणी मधुर, धीमी किन्तु दृढ़ रक्खें। सहानुभूति के साथ उससे बात करें। बीमार को जो कठिनाइयाँ होती हैं, उनके बारे में थोड़ा प्रकाश डाल दें। जिससे रोगी को यह विश्वास हो जावे कि आप अनुभवी चिकित्सक हैं। परन्तु खबरदार उसकी बीमारी को बढ़ा-चढ़ा कर मत कहो। बीमारी संगीन है, रोग पुराना है, बड़े दिन लगेंगे। आँतों में जख्म हो गए हैं, जिगर में सूजन आ गयी है, जैसे भयावह वाणी न बोलें। यदि कोई रिश्तेदार रोग का वर्णन अत्युक्ति के साथ कर रहा हो तो उसे भी वैसा करने से होशियारी से रोक दें।

रोगी को अपना कष्ट स्वयं कहने की पूरी छूट देनी चाहिए। ध्यान रहे, आपको उसकी बात का खण्डन नहीं करना है। उसे आश्वासन दे, ढाँढस दें वह कोई अनुचित वस्तु खाने-पीने को माँग रहा हो, तो बड़े प्रेम के साथ उस वस्तु को तुच्छ और उतेक्षणीय बताते हुए वर्तमान समय की लाचारी प्रकट कर दें। उसके धैर्य तथा समझ (बुद्धि) की प्रशंसा करते हुये कुछ समय तक और इस छोटे से अभाव को बर्दाश्त करने की प्रेरणा दें।

रोगी को और अपने पास बैठने वालों को कुछ ऐसे उदाहरण सुनाएं जिनमें आपने उस तरह के रोगियों को अच्छा किया है। ध्यान रहे, इन बातों को ऐसी चतुराई के साथ करें जिससे सुनने वालों के मन पर अनुकूल प्रभाव पड़े। वे उसे

कोरी गप्प या देखी भरी बात न मान बैठे। कोई दूसरा व्यक्ति यह कार्य करे, तो और भी अच्छा हो। आपकी अनुपस्थिति में भी कोई दूसरा व्यक्ति यदि इन उदाहरणों की चर्चा करे, तो उसका रोगी के मन पर प्रभाव पड़ता है। अतः तदनुकूल सही सम्भव व्यवस्था इस होशियारी से करनी चाहिये कि रोगी के रिश्तेदारों के मन में भी संशय या अश्रद्धा न होने पावे।

रोगी का आहार-विहार :

प्रायः प्राण-चिकित्सक रोगी के भोजन और रहन-सहन के बारे में कुछ भी ध्यान नहीं देते। चिकित्सकों का मूल मन्त्र है—१. निदान (परिवर्जन) और २. पथ्य सेवन। निदान (परिवर्जन) का अर्थ है आहार-बिहार सम्बन्धी उन कारणों को दूर करना जिनसे अमुक रोग होता हैं। इसी प्रकार पथ्य सेवन से वही खान-पान रोगी को दिया जाता है, जिससे रोग-बल घटने के साथ ही साथ प्राण-बल बढ़े। उपवास, फलरस, दुग्ध वाली वाटर आदि की यथोचित योजना होनी चाहिये। पुल्टिश, मालिश, सेक आदि बाह्य उपचारों में भी प्रमाद करना उचित नहीं। चिकित्सक को आहार-शास्त्र का गहन अध्ययन करके यह जानना चाहिये कि किस रोग के रोगी को कैसा आहार उचित है। किस रोग में कौन-कौन सी वस्तु हानि पहुँचाती हैं।

प्रायः बीमारियाँ पेट की खराबी से होती हैं। इसलिए बीमार का सर्वप्रथम उपाय, जो चिकित्सक को करना है—वह पेट को सुधारना। यदि पेट में पुराना मल जमा हो तो एनिमा की सहायता से गुदा में साबुन की बत्ती लगाकर या अन्य किसी

सीधे-सीधे उपचार से एक दो दस्त कराकर पेट की सफाई करनी आवश्यक है यदि पेट थक गया हो, आराम चाहता हो तो उपवास करना चाहिये। उपवास काल में जल का विशेष प्रयोग करावें। पर्याप्त मात्रा पानी पिलाते रहने से कुछ हानि नहीं होती वरन् अपार लाभ होता है। पेशाब और पसीने के रास्ते प्राणशक्ति के मल-निहर्रण कार्य में अतुल सहायता मिलती है। पर पानी धीरे-धीरे और चूस-चूसकर दिया जाय। रोगी को जो कुछ भी दूध, फल, रस, दलिया, शाक-रस साबूदाना भी आप खाने को दें, उसे चूस-चूसकर खूब चबा-चबाकर खाने का आदेश देना न भूलें। ऐसा करने से पर्याप्त मात्रा में मिल जाती है, जिसमें प्राण-विद्युत सक्रिय रूप से विद्यमान रहती है।

रोगी से भी सहयोग प्राप्त करें :

उपचार करते समय अपनी दृष्टि रोगी के चेहरे पर रक्खें। उसकी आँखों से आँख मिलायें। जरूरत समझें तो उसके ललाट पर हाथ फिरायें अथवा मृदु-मृदु थपकी दें। इससे उसके ऊपर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है हर एक उपचार के बाद रोगी का मुँह बन्द कराकर नाक से श्वास खींचकर मुँह से पाँच सात बार निकलवाना चाहिए।

प्राण-चिकित्सा का कर्त्तव्य है कि वह रोगी के मन पर यह बात अच्छी तरह से बिठा दें कि शरीर में रहने वाली प्रकृति दत्त जीवनी-शक्ति ही सम्पूर्ण रोगों को दूर करती है। प्राण अति सूक्ष्म और सर्व प्रवेश्य आकाश तत्व (ईथरिक मैटर) है, जिसकी तरंगे चुम्बक पत्थर की तरह अदृश्य और विद्युत लहरों के समान सशक्त होती है। मैं अपने प्रबल प्राण को आपकी जीवनी

शक्ति की सहायता के लिए भेज रहा हूँ। आप उसे ग्रहण करने के लिए लम्बी-लम्बी साँस लें अथवा मन ही मन ऐसी भावना करें कि ब्लाटिंग-पेपर (स्याही सोख्ता) के समान अंग-अंग भेद कर प्रवाहित प्राण को सोख रहा है। अंग-अंग प्रबल प्राण से परिप्लाबित हो रहा है।

उपचार की त्रिपदी प्रक्रिया

१—प्राण प्रपूरण—उपचार प्रारम्भ करने से पहले आप मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए नाड़ी की धड़कन ६ बार गिनते हुए धीरे-धीरे सांस को भीतर खींचिये। तीन धड़कनों तक साँस भीतर रोके रखिये। छः धड़कनों में धीरे-धीरे साँस को बाहर निकालिए। फिर तीन धड़कनों तक बिना सांस के रहिए। इसी क्रम से क्रिया तीन से पाँच मिनट तक करके अपने अन्दर प्राण भरिए। यह क्रिया करते समय मन ही मन यह भावना कीजिए कि आप अपने चारों वायु के समान फैले हुए नित्य गतिशील प्राण प्रवाह से शुद्ध और सबल प्राण साँस के साथ भर रहे हैं और निःश्वास के साथ नाभि समीपवर्ती प्राण के भंडार (गोदाम) को चैतन्य बना रहे हैं।

२—प्राणप्रपूरक—इसके बाद लम्बी साँस लेकर रोगी के संपूर्ण शरीर या रुग्ण स्थान का अन्दर की ओर उँगलियों को मोड़कर मार्जन कीजिए और यह भावना भी कीजिए कि मैं अपने प्रबल प्राण को वेगपूर्वक लहराती हुई सरिता के समान खुशी-खुशी भेज रहा हूँ। अब साँस को जब तक रोक सकें रोकिए। इस समय मन में ऐसा चिन्तन करते रहिए कि मेरे

प्राण ने रोगी की जीविनी शक्ति को प्रबल कर दिया है। रुग्ण स्थान के विचार तेजी के साथ उड़ते जा रहे हैं और निकल-निकल कर मेरी अँगुलियों की पोरों से चिपक रहे हैं। मैं उनको झटक झटककर दूर फेंकता जा रहा हूँ। अंग-अंग स्वस्थ हो गया है। सबल हो गया हूँ यह भावना करते समय हाथ को झटकते भी चलिये। अब साँस को निकालिए और मन ही मन अपने प्राण तत्व को निर्देश दीजिए कि तुम रुग्ण स्थान को सुपुष्ट करो। जब तक श्वास को बाहर रोक सकें, उसे रोकिए और पीड़ित स्थान पर प्रबल रुधिर संचार के साथ अनवरत चलने वाली प्राण विद्युत क्रियाशीलता का ध्यान करें।

यह क्रिया रोग के अनुसार पाँच मिनट से आधे घण्टे तक करनी चाहिए। साँस लेने, साँस को अन्दर रोकने, साँस को छोड़ने और साँस को बाहर निकालते समय मार्जन और हाथ झटकने की क्रिया चित्रमयी भावना के साथ करनी चाहिए। मार्जन के स्थान पर सम्पूर्ण शरीर या पीड़ित अंग पर मृदु स्पर्श भी किया जा सकता है। अथवा थपकी दी जा सकती है। प्राणायाम की चारों क्रियायें में यथाक्रम अवधि की हों और पुष्ट सूचनाओं से (सजेशन) युक्त हों, यह आवश्यक है। आप चाहे तो चीनी मिट्टी के प्याले या गिलास में थोड़ा सा जल लेकर उसे इसी क्रम से भावना-भक्ति प्राणायाम द्वारा अभिमन्त्रित करके दिन में तीन चार बार पीने को भी दे सकते हैं। ध्यान रहे, जल अभिमन्त्रित करते समय अँगुलियां जल के अति निकट तो रहे, किन्तु उसे स्पर्श न करें।

३—आत्म शोधन—जब उपचार समाप्त कर चुके तो फेफड़े

की सफाई करने वाली अवसाद-पाशिनी यह क्रिया कीजिये—पूरी साँस (लम्बी साँस) लीजिये। हवा को कुछ देर तक अन्दर ही रोकिये। अब सीटी बजाने के समान होठों को समेट लीजिये, ध्यान रहे मल न फूलने पावें। होठों के छेद से थोड़ी सी हवा अन्दर ही रोके रखिए। फिर थोड़ी-थोड़ी करके अनेक बार में कुल हवा बाहर निकालिये। इस क्रिया को इसी ढंग से ५ से १० बार तक कीजिए। ऐसा करने से आपकी थकान दूर होगी। उपचार करने में जितनी शक्ति खर्च हो गयी है, उसकी पूर्ति होगी। शरीर में ताजगी आयेगी।

उपचारक का कर्तव्य

दूसरों के रोग निवारण की यह त्रिपदी प्रक्रिया दिन में कम से कम दो बार करनी ही चाहिए। तीन बार यदि करना अभीष्ट हों तो छः घण्टे के अन्तर से करनी चाहिए। उपचार तब तक बराबर चलना चाहिये कि जब तक पूर्ण स्वस्थ न हो जावें।

पर्याप्त या पूर्ण लाभ होने पर रोगी को भी यह त्रिपदी उपचार प्रक्रिया सिखा देनी चाहिए। अब तक उसका विश्वास भी जम चुका होगा। ऐसी प्रेरणा करनी चाहिए कि वह नियमित रूप से इसे करे। ऐसा करने से वह शारीरिक दृष्टि से ही निरोग नहीं रहेगा, आत्मिक दृष्टि से भी प्राणवान बनेगा। अच्छी आदतों के निर्माण और आध्यात्मिक विकास में यह क्रिया बड़ी सहायक है।

इस त्रिपदी उपचार पद्धति में रोगी के सभी विकार दूर किए जा सकते हैं। रोग को नाम से जानना उतना जरूरी नहीं

है, जितना उपचार करते समय अपने मानसिक संकेतों, सूचनाओं आज्ञाओं और चित्रमय चिन्तनों के द्वारा रोगों की प्राण शक्ति संचेचित करना आवश्यक है। रोगी की प्राण-शक्ति यदि बलवती बन जाय तो फिर कोई भी रोग क्यों न हो, वह उसे सहज ही दूर कर देगी। इसके लिए अपने को भी प्राणवान बनाना जरूरी है। कुछ महीनों तक प्राण प्रपूरण क्रिया के द्वारा अपने में प्राण को जितना अधिक आप स्टोर (जमा) कर सकेंगे, उतना ही आपका इलाज सफल होगा।

उपचारक को ईश्वर-विश्वासी और निर्लोभी भी होना चाहिए। उसे प्रतिदिन ध्यान, अर्चना, विचारोत्तेजक सत्साहित्य का अध्ययन और आत्म संयम (काम, क्रोधादि वेगों का निग्रह) करना चाहिए। उसे दूसरों का उपचार मुफ्त या निःशुल्क करना चाहिए। किसी से कुछ न लेना चाहिए। अन्यथा उसके प्राण में निर्बलता और विकृति आ जाएगी।

दूरस्थ रोगी का उपचार:

इस त्रिपथी-उपचार प्रक्रिया के द्वारा दूरस्थ व्यक्तिका उपचार भी सफलता पूर्वक किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति विशेष से पूर्व परिचय अथवा उसका छाया चित्र (फोटो) अपने पास होना आवश्यक है। व्यक्ति को उपचार की जानकारी होना भी आवश्यक नहीं है। यदि जानकारी देकर उसका सहयोग भी प्राप्त किया जा सके तो रोग निवारण में त्वरिता आ जाती है।

आप जानते हैं कि प्राण सर्वव्यापी तत्व है। अपनी सूचनाओं के अनुसार उसे आकाश-तत्व के माध्यम से कहीं भी किसी समय भेज़ा जा सकता है। रात्रि में और ब्रह्म-मुहूर्त में उनको

विशेष प्रवेगों में भेजना अपेक्षाकृत सरल होता है। अतः जिसका उपचार करना है, उसका प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में और रात्रि काल में ध्यान करते हुए भावना भरे हृदय से आकाश में ही इस प्रकार हाथ घुमाना चाहिए, मानों वह आपके सामने हो। ऐसा करने से रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

दूसरों के दोषों को दूर करने की प्राणायाम साधना

यदि कोई व्यक्ति आकर यह कहे कि मुझे शराब की बुरी आदत पड़ गई है, मुझे गुस्सा आता है, मुझे रात को ठीक तरह नींद नहीं आती, हर समय भय या चिन्ता सवार रहती है, मेरी स्मरणशक्ति काम नहीं देती, मैं पढ़ना चाहता हूँ किन्तु पढ़ नहीं पाता तो इन या इन जैसे दोषों दुर्गुणों को भी आप प्राणायाम की दोष निर्मूलिनी प्रक्रिया द्वारा सुगमता पूर्वक दूर कर सकते हैं। दूसरे के स्वभाव की उग्रता, उच्छृंखता, कर्कशता, कलह-प्रियता कृपणता और दैन्यता को भी आप संकल्पयुक्त अपने प्राण प्रवाह से सहज में बदल सकते हैं। यदि इन परिवर्तनों के लिए मनुष्य स्वयं इच्छुक हो, तब तो कहना ही क्या? प्राणवान् उपचारक उसकी अनेच्छा या अज्ञानता में भी उसके स्वभाव को अभीष्ट दिशा में परिवर्तित कर सकता है।

प्राणशक्ति का सुदपयोग ही करें :

स्मरण रहे शुद्ध प्राण ऊर्ध्वगामी होते हैं। अतः उसके द्वारा स्वभाव उदात्त परिवर्तन ही किये जा सकते हैं। पतित को

उठाने, उन्हें सदाशयी और सद्गुणी बनाने में ही उनका उपयोग करना उचित है। यदि कोई व्यक्ति अपने प्रबल प्राण के बल से किसी मनुष्य का अनिष्ट करने का दुस्साहस करता है, तो अन्ततः इससे उसकी ही बड़ी क्षति होगी। अपना प्राण तो दूषित और निर्बल होगा ही। दूसरे का प्रत्यावर्तित कालुष्य और अपने दुर्भावनापूर्ण पाप का प्रतिफल उसके लिए विषम रोगों की नई-नई उलझनों संकटों, अभावों और समस्याओं की भीषण सृष्टि करके उसका और उसके परिवार का जीवन नारकीय बना देगा। अतः मारण, उच्चाटन जैसे हीन कार्यों में अपनी प्राण शक्ति का अपव्यय भूलकर भी नहीं करना चाहिए। प्राण सतोमय है। परम पवित्र संवेदनामय और सात्विक है। सात्विक कार्यों में उसका विनियोग होने से वह प्रसन्न होता है। और प्रयोक्ता का हर प्रकार से हित साधन करता है। विपरीत दिशा में उसके सहयोग से उसका प्रसन्न होना और असन्तुष्ट होना स्वभाविक ही है। अतएव परम चैतन्य महाप्राण की प्रसादता पाने के लिए भी उसका प्रयोग उत्कृष्ट दिशा में दूसरों की भलाई में करना चाहिए। यही प्राण सिद्धि का उद्देश्य है।

यदि आपका बालक अति चंचल है, अथवा आपके पास अपने पुत्र की उच्छृंखलता से परेशान होकर कोई मनुष्य आता है, तो उसे और अपने को भी आत्म विश्वास भरे शब्दों से आश्वस्त करें। यही कार्य उस व्यक्ति के प्रति करना है, जो अपने किसी दुर्व्यसन से संतप्त है, उसे छोड़ना चाहता है, किन्तु अपना बल न्यून होने के कारण वैसा कर नहीं पा रहा है। अपने पति के दुर्व्यवहारों से दुःखी नारी के हृदय में भी

श्रद्धा (सद्भावना) और आशा उत्साह का संचार करना आवश्यक है।

साधना में धैर्य की आवश्यकता :

प्राणायाम के द्वारा आत्म-चिकित्सा के इच्छुकों को पवित्र भावना के साथ चिकित्सा पद्धति सिखाना चाहिए और अपने तथा दूसरे के दोषों-दुर्गुणों के निवारण के लिए तीन से छः महीने तक निश्चित समय पर यथाविधि प्राणोपचार करने का संकल्प करा लेना चाहिये। स्वभाव परिवर्तन का कार्य एक दिन का नहीं है। जन्म ज़न्मान्तर के संस्कारों से स्वभाव बनता है। उसका पूर्णतः संशोधन करने के लिये उसी प्रकार समय की अपेक्षा है जिस प्रकार गेहूँ वपन या आम्र-रोपण क्रिया से गेहूँ या आम प्राप्त करने के लिये महीनों की आवश्यकता है। स्वभाव से अणु-अणु का शोधन समय, लगन, धैर्य और दृढ़ निश्चय (व्रत) के बिना सम्भव नहीं है।

एक स्त्री के पति यद्यपि, वेश्यागामी और दुराचारी थे। डा० नागर ने उस स्त्री को छः महीने तक प्राण उपचार करने का संकल्प कराकर विधि-विधान समझाया। उस स्त्री ने बड़े विश्वास के साथ वैसा ही किया। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे त्यों-त्यों उसकी विवशता बढ़ती जाती थी। येन केन प्रकारेण मन से, कभी आधे मन से उसने अपना अनुष्ठान पूरा किया। छठा महीना पूरा होते ही वह डा० साहब के पास आई और अनुष्ठान पूरा होने की सूचना देते हुए उसकी विफलता का रोना रोया। डा० नागर यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुये कि उस महिमा ने छः

महीने तक उपचार प्रक्रिया बिना अनध्याय (लंघन किये) निबाही। आमतौर से सन्तप्त व्यक्तियों में इतना धैर्य नहीं होता है। वे बीच में ही क्रिया छोड़ दिया करते हैं। अतः डा० नागर ने उनसे कहा—

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।।

डाक्टर साहब का कथन सही निकला। अभी अनुष्ठान समाप्त हुए कुछ ही सप्ताह बीते थे अचानक एक दिन वेश्या के हाथों से शराब का गिलास ज्यों ही उसके पति ने लिया उसके सारे शरीर में बिजली से दौड़ गई। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी पत्नी गिलास में झांकती हुई उससे यह कह रही है—"आप तो बड़े भद्र पुरुष हैं। स्वभाव से श्रेष्ठ हैं। सदाशयी हैं। दुस्संग में पड़कर आप यह क्या करने लगे? आपको यह शोभा नहीं देता। आपको अपनी उत्कृष्टता को ही प्रखर बनाना है। दुस्संग का दुष्प्रभाव आप पर नहीं रह सकता, वर्षा ऋतु के बादल सूर्य को सदा के लिए आच्छादित नहीं कर सकते। सूर्य चमकेगा, अवश्य चमकेगा। आपकी उत्कृष्टता जागेगी और अवश्य जागेगी।' 'लो' ऐसा भान होते ही उसने उसी क्षण वह शराब भरा गिलास फर्श पर डाल दिया और भागता हुआ अपनी पत्नी के पास पहुँचा। उसके पैरों में गिर गया। रो-रोकर उसने क्षमा मांगी। उस दिन से उस पुरुष का ही जीवन कल्प नहीं हो गया, उनकी गृहस्थी भी सुख शांति और समृद्धि की दिशा में अग्रसर हुई। दोनों की प्राण चिकित्सा पर अटूट श्रद्धा हो गई। दोनों प्राणाकर्षण प्राणायाम की साधना करने लगे। अपने

क्षेत्र में उसका प्रचार-प्रसार भी उन्होंने किया।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि जहाँ आप मुक्त भोगियों के द्वारा प्राण चिकित्सा स्वयं करने को कहें, वहां उनसे भी व्रत ले लें कि वे कम से कम छः महीने तक 'स्वभाव-परिवर्तन का उपचार' धैर्य और श्रद्धा के साथ अवश्य करेंगे। यही नहीं, यदि आप अपने पुत्र या अन्य किसी के स्वभाव में परिवर्तन के लिए स्वयं उपचार करते हैं, तो भी यह क्रिया तीन महीने से छः महीने तक करनी होगी।

किशोरों की उद्दण्डता का शमन

एक बार एक सिक्ख दम्पत्ति मेरे पास अपने पुत्र को लेकर आये। उनके साथ उनकी पुत्री भी थी! बालक की उम्र लगभग बारह वर्ष और कन्या की आयु सात वर्ष की थी। दम्पति को यह शिकायत थी कि उनका पुत्र बड़ा उद्दण्ड है। वह अपनी माता को मारता है। मौहल्ले के बालकों को भी छेड़ता है। रोज शिकायतें आती हैं। बिल्कुल नहीं पढ़ता लिखता। स्कूल से भाग आता है। दूसरों की पुस्तकें चुरा लाता है। मेरी जेब से पैसे निकाल लेता है। उनसे सिगरेट पीता है। आप जानते हैं, हम सिक्खों के यहाँ धूम्रपान को कितना बुरा समझा जाता है। हम सब उससे बड़े परेशान हैं, कोई उपाय कीजिये।'

मैंने अलग-अलग दोनों बच्चों से और स्त्री-पुरुष से बातचीत की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे–१.स्त्री-पुरुष के परस्पर मधुर संबंध नहीं।वे आपस में प्रायः लड़ते झगड़ते रहते हैं। कभी-कभी हाथापाई भी हो जाती है। २. स्त्री-पुरुष हँसी-मजाक और कामाचार के शिष्ट नियमों का पालन नहीं करते। वे बच्चों के

सामने ही भद्दी मजाक कर बैठते हैं। ३. स्त्री अपने छोटी मुन्नी को अधिक प्यार करती है। उसका बालिका और बालक के प्रति समान व्यवहार नहीं है। ४. गृहस्थ जीवन में उत्कृष्टता, पवित्रता और सोद्देश्यता के प्रति दोनों के हृदयों में कोई स्पष्ट कल्पना नहीं है। गृहस्थी के दायित्वों की ओर से भी वे उदासीन हैं। जीवन के उज्ज्वल पक्ष और महान लक्ष्य को वे समझते नहीं हैं। ५. सिक्ख महोदय अपने व्यवसाय में बड़े व्यस्त रहते हैं। उनके पास फुर्सत नहीं है कि वह अपने बच्चों के लिए भी कुछ समय दें। वे बच्चों की योग्य निगरानी भी नहीं करते। उन्होंने बच्चों में अच्छी आदत डालने का सजगता और दृढ़ता के साथ प्रयास नहीं किया है। ६. सिक्ख महोदय रिश्वत प्रेमीं हैं। वे दूसरों की अटकी का भरपूर लाभ उठाने के लिए उत्सुक रहते हैं। ७. माता जब तब पुत्र की शिकायत किया करती है और पिता उसे निर्दयता पूर्वक पीटा करते हैं।

मानसिक तैयारी

इन निष्कर्षों के आधार पर मैंने माता, पिता और पुत्र को अलग-अलग सम्बोधन दिये। मैंने उनको बताया कि वे प्रेम और सौहार्द का व्यवहार किया करें। बालकों के सामने परस्पर लड़ाई झगड़ा या कुत्सित हँसी मजाक न किया करें। विवाह के मूल्यांक समझें। अपनी गृहस्थी को आदर्श बनाने के लिये नित्य पूजा पाठ तो किया ही करें। श्री ग्रन्थ साहब का परायण तो करें ही विचारोत्तेजक सत्साहित्य का स्वाध्याय भी नियम बनाकर नित्य ही करें। बच्चे में अच्छी आदत डालें—सुबह उठते-उठते ही माता-पिता को प्रणाम करने, समय पर पढ़ने बैठने, समय

पर विद्यालय जाने जैसी आदतों के निर्माण के लिए पूरी चौकसी रक्खें। मैंने उन्हें यह भी बता दिया कि केवल कहने या शिक्षा देने से आदत भर का निर्माण नहीं हो जाता। प्रारम्भ में तो माता-पिता को लघु पौध की चौकीदारी के समान बालक की एक-एक नई आदत की चौकीदारी या देखभाल करना आवश्यक है। आवश्यक आग्रह के साथ पदे पदे बालक का उत्साह बढ़ाना है अपनी इस जिम्मेदारी का निर्वाह समय निकालकर शान्ति और धैर्य के साथ किये बिना काम न चलेगा। बच्चों की देखरेख और सुध-बुध के लिए समय देना ही होगा। उसके संगी-साथियों पर दृष्टि रखनी होगी।

मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया, जब तक आप काले धन का, घूस और रिश्वत का मोह नहीं छोड़ेंगे, तब तक घर में सुमति-सुबद्धि का यथोचित विकास नहीं हो सकेगा। काला धन दुर्भाव पैदा करता है, इस प्रकार वह पारिवारिक जीवन को कलहपूर्ण और सन्तप्त बनाये रखता है। अतः उसे छोड़ने में ही कल्याण है। मनुष्य जीवन की सार्थकता है। बुरी चीज बुरी है। वह बुराई ही लावेगी, अच्छाई नहीं नीम के कड़वे रस से शक्कर नहीं बन सकती। शक्कर तो गन्ने के मीठे रस से ही बनेगी। परिश्रम युक्त अच्छी कमाई से ही सुख, शान्ति, सुबुद्धि, प्रेम, आरोग्य, यश और सफलता की प्राप्ति होती है।

निदान परिवर्तन (कारण मिटाओ) और पथ्य सेवन की दृष्टि से मैंने उन्हें यह भी समझाया कि बच्चे के प्रति उदार दृष्टिकोण रक्खें। उसकी छोटी-छोटी भूलों के लिए उतप्त न हुआ करें। मारा पीटा न करें। आप भी तो अनेक भूलें रोज

करते [illegible] चाहते हुए आप उन्हें दूर नहीं कर पाते। उनके लिये आप [illegible] को क्या दण्ड देते हैं। अल्पायु और अल्प शक्ति वाले बालक की त्रुटियों को इसी दृष्टिकोण से देखना चाहिये। उनके प्रति कोगलता या गृदुता का व्यवहार अधिकाधिक करें। यदा कदा भर्त्सना की जा सकती है। किन्तु उसे नियम बना लेना [illegible] अनुचित है। खुला अत्याचार है। दोनों बच्चों के प्रति समानता का व्यवहार करें। बड़ा बालक उनके प्यार का भूखा है। वह अनुभद करता है कि घर में उसका कोई स्थान नहीं है, उसे कोई इज्जत नहीं देता। उसे कोई नहीं चाहता। सब उसके दुश्मन से हो रहे हैं। बाल-बुद्धि ही तो ठहरी जो दिमाग में बैठ गई, बैठ गई। उसे अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से ही मिटाया जा सकता है।

मेरे विश्लेषण से दोनों बड़े प्रभावित हुए। मैंने बच्चे से सिर्फ इतना ही कहा—तुग रोज पूजा किया करो और तत्पश्चात माता-पिता को प्रणाम किया करो। उसने वैसा करने का वचन दिया। बहिन को कभी न मारने का निश्चय किया।

इतनी मानसिक तैयारी कराने के बाद मैंने सिक्ख महिला को उपचार की पद्धति समझाई। उससे छः महीने तक नित्य रात्रि को दालक के सो जाने पर उस पर प्राणोपचार करने का संकल्प कराया। मैंने उन्हें यह भी समझा दिया कि इस उपचार से सभी कुटेब तो दूर किये जा सकते हैं, शय्या, मूत्र अतिसार आदि शारीरिक विकार और डरने, भय-खाने, रात को नींद में बड़बड़ाने और मण्द-स्मृति शरीर के मानसिक विकार भी नष्ट किये जा सकते हैं।

प्राणोपचार का क्रम

बालक रात्रि को जब सो जावे कमरे की बिजली बुझाकर आप प्यार से उसकी चारपाई पर जावें। सिरहाने की ओर बैठकर अथवा खड़े होकर, लंबी साँस लेकर अपना मृदु हाथ उसके माथे पर रक्खें। साँस को अन्दर जब तक रोक सकें, रोके रहें। साथ ही साथ मन में यह भावना करें तू मेरा प्यारा बेटा है। मैं तुझे खूब प्यार करती हूँ। तू स्वभाव का बड़ा अच्छा है, तू अपनी बहिन को खूब प्यार करता है। तेरी बुद्धि बड़ी तीव्र है। तू जिस बात को याद कर लेता है, उसे कभी नहीं भूलता, तू खूब पढ़ेगा। कक्षा में सबसे आगे निकलेगा। मास्टर साहब तेरी प्रशंसा करेंगे। तेरा चारों ओर नाम होगा निश्चय ही तू उत्तम प्रकृति का है। तू अच्छे-अच्छे काम करेगा। तू कुल का दीपक है। कुल को उजागर करेगा, तू खूब उन्नति करेगा।'

जब श्वाँस निकालें तो एक ही भावना करें कि मेरा पुत्र निर्मल हो गया है। दुस्संग के बुरे परमाणु जो उसके मस्तिष्क पर छा गये थे, आँधी की नाई तेजी से उड़े जा रहे हैं। उसके स्वभाव में शांति और पवित्रता का संचार हो गया है। अच्छे संस्कार जाग गए हैं। अब मेरा नन्हा मुन्ना नेक बनेगा, महान बनेगा। सब उसके मृदु व्यवहार पर मोहित होंगे। उसकी बुद्धि की, उसकी सुशीलता की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी है। मैं ऐसे होनहार बालक को पाकर धन्य हो गई हूँ। हाँ, धन्य हो गई हूँ।

फिर यही भावना करते हुए चार पाँच सेकण्ड तक हवा को बाहर ही रोके रहें।

लम्बी साँस लेना, कुछ समय तक साँस को रोकना, फिर

साँस को छोड़ना और चार-पाँच सेकण्ड तक साँस न लेना, वायु को बाहर ही रोके रखना। इन चार क्रमों में प्राणायाम करते हुए विधि-परक (पाजिटिव) चिन्तन (निर्देशन) करना ही दुर्व्यसन नाशक प्राणोपचार है। हर बार ऐसा करके माथे से हाथ उठाकर आकाश में झटके के साथ झिड़कना चाहिए जिससे वे दूषित परमाणु, जिन्हें आपकी प्राण शक्ति के चुम्बक ने बालक के मस्तिष्क से खींचा है, वायु के बहते प्रवाह में बह जायें और बालक सुप्त तेज जाग उठे। उसकी प्राणीन चेतना सक्रिय हो उठे।

मैंने उस महिला को बताया कि वह इस क्रिया को पन्द्रह मिनट तक नित्य रात्रि को किया करे। इस बीच में बालक यदि करवट ले ले, तो घबड़ाये नहीं। आत्म-विश्वास के साथ इस क्रिया को करते ही रहें। मानसिक सूचनाओं के साथ इस क्रिया के करने में बालक के जगने की आशंका हो, तो मस्तक पर मृदु स्पर्श के स्थान पर मार्जन किया जा सकता है।

आप आश्चर्य करेंगे, तीन महीने में ही उस दम्पत्ति ने यह अनुभव किया कि उसका वह उद्दण्ड बालक बड़ा सौम्य, शिष्ट आज्ञाकारी, उपासना, प्रिय, अध्यवसायी और अध्ययन प्रेमी हो गया है। उसकी सारी उच्छृंखलता जाती रही है। मारपीट और चोरी करने की आदत छूट गयी है। और तो और घर में अपूर्व शान्ति उत्फुल्लता और आपसी सौहार्द की लहर दौड़ गई है। मेरे कहने पर छः महीने तक उस क्रिया को चालू रक्खा। आज भी बह बालक है, वे ही माता पिता हैं। अब उन्हें उससे कोई शिकायत नही। सभी आनन्दमय हैं।

किशोरावस्था की अल्हण स्वेच्छाचारिता, अनुशासनहीनता अवज्ञा, प्रवृति, कुरुचि, कुत्सा, दुरभ्यास (बुरी आदत) और अवगुणों के दूरीकरण के लिए ऊपर बताए हुए पथ्य परहेज के साथ उसका प्राणायाम करने के अपरिमित लाभ हैं। इसके द्वारा बालक को सद्‌गुणी और सुशील ही नहीं बनाया जा सकता, उसे कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मृति वाला भी बनाया जा सकता है। इसकी उपादेयता की जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही है। साँच को आंच क्या? प्रत्यक्ष करके देखिये।

दुराचारी पति कर्कशा पत्नी का सुधार

पति की दुराचारिता अथवा पत्नी की दुश्शीलता से दुःखी लोगों को उनके सुधार के लिए अनुभव पूर्ण सुपरीक्षित प्रयोग नीचे दे रहा हूँ। सद्‌भावना और विवशता के साथ कम से कम छः महीने तक नियम के साथ जहाँ तक सम्भव हो एक ही स्थान पर बैठकर किया जाना चाहिए। उपचार पन्द्रह मिनट से आधा घण्टे तक प्रतिदिन करना होगा। छः महीने का समय इसलिए बताया गया है कि सामान्यतः प्रयोक्ता का प्राण प्रबल नहीं होता। कुछ दिनों तक तो वे एक बार प्राणायान भी नहीं कर पाते। उनके प्राणायाम में तालबद्धता नहीं आने पाती। प्राणों के प्रबल होने और तालबद्ध प्राणायाम साधने पर यथेष्ठ प्रभाव अपेक्षाकृत कम समय में ही हो जाता है। फिर स्थाई लाभ के लिए यह उपचार प्रथम छः महीने तक तो चलना ही चाहिए।

एकतालता का अभ्यास

शान्त एकान्त स्थान पर बैठकर सर्व प्रथम प्रयोक्ता को किसी षडक्षरी मन्त्र (जैसे हरि ओ३म् तत्सत्, ओ३म् भूर्भूवः स्वः, ओ३म् नमः शिवाय आदि) का ३ बार मन ही मन वांचन करते हुए बाँये नथुने से सांस भरना चाहिए। अन्दर ही साँस रोककर फिर छः बार यही मन्त्र पढ़ना चाहिए। तदनन्तर सीधे नथुने से तीन मन्त्र पढ़ते हुए सांस को बाहर निकालना चाहिए। अब सांस को बाहर ही रोक कर पुनः तीन बार मन्त्र पढ़ें। फिर दाहिने नथुने से तीन बार मन्त्र पढ़ते हुए सांस लेना चाहिये। इस समय बाँया नथुना हाथ की अँगुली से बन्द किया जा सकता है। सांस अन्दर रोकिये, छः बार मन्त्र पढ़िये। तीन बार मन्त्र पढ़ने तक रोके रखिये। इसी क्रम से यह क्रिया पाँच बार कीजिये।

मन्त्र स्मरण के स्थान पर यह क्रिया प्राणायाम के ध्यान के साथ भी की जा सकती हे। सांस खींचते समय यह ध्यान करना चाहिये कि मेरे चारों ओर वायु के समान प्राण विद्युत का महासागर लहलहा रहा है। श्वसन क्रिया द्वारा मैं उसे अपने सूर्य चक्र में (जो नाभि के कुछ ऊपर है जहाँ पसलियाँ और पेट मिलते हैं) एकत्र कर रहा हूँ। जब मैं निःश्वसन करता हूँ "साँस को छोड़ता हूँ, तो अन्दर दबाव पड़ने से प्राणधारा रुधिर के साथ तेजी से दौड़ती हुई मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग को प्राण विद्युत से भर देती है। प्राण प्रवाह का यह ध्यान तेज टार्च के प्रवाहमान ज्योति प्रवेग के रूप में करना चाहिए।

यह क्रिया पाँच से दस बार तक करनी चाहिए। ध्यान करे,

पहले साँस बायें नथुनें से भरना है, कुछ देर रोककर दाहिने नथुने से निकालना है। फिर हवा को कुछ समय तक बाहर ही रोके रहना है अर्थात साँस नहीं लेना है। तत्पश्चात् सीधे नथुने से सांस लेकर, कुछ देर अन्दर रोककर बाँये नथुने से बाहर निकलना चाहिए और कुछ देर बाहर ही रोके रखना है। निकालने और भरने में समान समय लगाना चाहिये। अन्दर साँस उतनी ही देर रोकनी चाहिए, जितने समय तक आसानी से बिना कष्ट रोका जा सके।

ध्यान और सम्बोधन

यह क्रिया करने के बाद सम्बन्धित स्त्री या पुरुष की आकृति का, फोटो, की सहायता से या वैसे ही मन में ध्यान करना चाहिए और लम्बी साँस भरते हुए तथा साध्य अन्दर ही उसे सम्बोधित करते हुए कहना चाहिये–'तुम तो स्वभाव से बड़े अच्छे हो। प्रेम सहिष्णुता, सद्भाव और उदारता तुम्हारे स्वभाव के मुख्य अंग हैं। परिस्थितियों के दबाब से वह दब सा गया है। मैं अपने तेजस्वी प्राण की तेजधार उस पर छोड़ रहा हूँ। गन्दे पानी की नाली स्वच्छ जल की तेज धार जिस प्रकार स्वच्छ जल वाहिनी बन जाती है, उसी प्रकार मेरे प्राण के विपुल-विपुल निर्मल प्रवेग (बौछार) तुम्हारे उज्वल स्वभाव पर छाये हुए मलावरण को तीव्रता से बहा रहे हैं। तुम्हारा प्रेम भाव उजागर हो रहा है। तुम्हारी सज्जनता मुखरित हो रही है। धर्म भावना प्रबल हो रही है। धर्म कर्म की ओर दायित्वों के निर्वाह की ओर तुम्हारा ध्यान उन्मुख हो गया है। तुम में प्रफुल्ल माधुर्य, साधुता, सौम्यता, मैत्री भाव, हितैषित तूफानी

बेग के साथ उमड़ पड़ी है। जगती के आकर्षक अब तुम्हारे पास नहीं आ सकते। महाप्राण के दिव्य परिवेश के चारों ओर से तुम्हें ढक लिया है। तुम महान हो, महानता की ओर पैराशूट के समान निरन्तर बढ़ते जा रहे हो। हमारी तुम्हारी स्निग्धता विशाल और विशालतर होती जा रही है। परिणामतः हमारा पारिवारिक जीवन उत्कृष्ट और अत्यन्त आनन्दमय हो गया है।''

इसके बाद श्वांस बाहर निकालिये और कुछ समय तक उसे बाहर ही रोके रखिए। इस अवधि में मन में प्रेम पुलक भरते हुए अपने पतिदेव या गृहलक्ष्मी को बार-बार सादर प्रणाम करें और मन ही मन उनसे यहीं कहें कि मेरे मन में आपके प्रति असीम प्रेम है। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ सकता हूँ मैं हरदम तुम्हारा हित चाहता हूँ। विश्वास करो, मैं तुमसे खूब प्रेम करता हूँ और सदैव करता रहूँगा। मेरे व्यवहार में नम्रता, श्रद्धा, उच्चता और मधुरता ही मधुरता है। मैं तुममे भी इन्हीं गुणों को पल्लवित पुष्पित होते देख रहा हूँ। हमारा तुम्हारा प्रेम सम्बन्ध दैवी मिलन है, दिव्य संयोग है। वह अटूट है। सदा अटूट रहेगा।

इस क्रिया को पन्द्रह मिनट से आधे घण्टे तक फोटो का ध्यान करते हुए करना चाहिए। कोशिश करनी चाहिए कि आपके मनः चक्षु के समक्ष उनका छाया पुरुष स्पष्ट उपस्थित है और तुम उससे प्रत्यक्ष सम्भाषण कर रहे हो। आपके वचन में सत्यता है, ईमानदारी है, हार्दिकता है, कोई छल कपट या दुराव नहीं है। ऐसा वह छाया पुरुष भी अनुभव करने लगा है।

उसकी मुख-मुद्रा, उसके हाव-भाव इस तथ्य को व्यंजित कर रहे हैं। हमारी सूचनाओं को सुन-सुन कर वह प्रेम प्रफुल्लित हो रहा है। उसके स्वभाव से यथेष्ट मृदुता, कोमलता, गुण ग्राहकता और भद्रता का उन्मेष हो रहा है।

स्मरण रहे, यह क्रिया करते समय सांस लम्बी लें। सुविधानुसार उसे अन्दर रोकें। भावनापूर्वक धीरे-धीरे बाहर निकालें। सम्बन्धित पति-पत्नी का ध्यान ज्यों-ज्यों स्पष्ट होता जावेगा, त्यों-त्यों स्वभाव संशोधन की प्राण-प्रक्रिया प्रखर होती जायेगी। प्रारम्भ में यदि स्पष्ट ध्यान न हो सके, तो भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अपनी मानसिक सूचनाओं में दृढ़ता बनी रहे, बस यही मुख्य वस्तु है। अतः आत्म कथन में ढिलाई नहीं आने पावे। इसी पर उक्त प्राणायाम के साथ बल देना है। ध्यान चाहे बँधे या न बँधे।

यह क्रिया रात के समय करनी उत्तम है। प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त में भी की जा सकती है। शांत एकान्त में ही इसे ठीक ढङ्ग से सफलता के साथ किया जा सकता है। कमरे में या छत पर जहाँ उचित हो, इसे कर सकते हैं। कमरे में यदि यह क्रिया करें, तो वहाँ तेज रोशनी नहीं होनी चाहिए। दीपक या जीरो बाट तक का प्रकाश रखा जा सकता है। सात्विक वातावरण में देशी घी का दीपक सर्वोत्तम है बिल्कुल अन्धेरा रहे तो भी कोई हानि नहीं तेज प्रकाश में प्राण के प्रवाह में तो कोई बाधा नहीं आती किन्तु उच्च संकेतों या विचारों का कहना है। स्वभाव परिवर्तन के लिए 'प्राण और विचार' दोनों के तीव्र प्रवहण में एकरूपता या समानता चाहिए।

पथ्य का सेवन : कुपथ्य का त्याग

जिस प्रकार औषधि सेवन के साथ पथ्य की योजना करना आवश्यक होता है उसी प्रकार इस उपचार के साथ ही साथ अपने व्यवहार में आवश्यक परिवर्तन भी करना चाहिए। सहनशीलता और सेवा-भाव ही इस प्रक्रिया रूप औषधि के पथ्य हैं। आपके व्यवहार में जहाँ शिष्टता आनी चाहिए, वहाँ सहयोग और प्रशंसा के अवसर खोज कर तदनुकूल आचरण करना चाहिए। अपने जीवन संगी या जीवन संगिनी के दुःख कष्ट को अपना दुःख दर्द समझना चाहिए। उनके प्रति सच्ची सहानुभूति रखनी चाहिए। पदे पदे उनके कार्य में मदद करनी चाहिए। दिन में दो चार बार उनकी किसी न किसी माध्यम से तारीफ अवश्य करें। दूसरों के सामने उनका मान बढ़ाने से उनका हृदय जीतने में बडी मदद मिलेगी। याद रहे, अनुष्ठान के कार्यकाल में अपने साथी पर क्रोध न करें। उनकी भूल या त्रुटि की उपेक्षा करें। विशाल हृदय बनें। क्योंकि उनकी गलती या दुष्प्रवृत्ति का मुख्य कारण उनसे प्रबल-प्राण की कमी है। जब तक उसकी यथेष्ट पूर्ति नहीं होगी तब तक जाने-अनजाने प्रशस्त पथ से उनका स्खलित हो जाना स्वाभाविक है। जो निर्बल होता है, वही ठीक तरह से बैठ नहीं पाता। वही नन्हीं-नन्हीं टांगों पर अपने को साथ नहीं पाता। फलतः बार-बार गिरता है। यही स्थिति अपने जीवन-साथी को समझकर आपको उससे सहिष्णुता का व्यवहार ही करना चाहिये। इस आत्म-साधना युक्त प्राण साधना (उपचार) से अपना आध्यात्मिक विकास द्रुत गति से होगा। प्राणशक्ति बलवती होगी। उसकी प्रेषणीयता और

प्रभविष्णुता बढ़ेगी। पारिवारिक जीवन में भी सौमनस्यता आवेगी। लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के लाभ इस आत्म-साधना (संयमपूर्ण शिष्ट व्यवहार) से अनायास प्राप्त होते हैं।

वैमनस्य निवारण

आपका कोई सम्बन्धी या मित्र आपसे शत्रुता रखता है अथवा आपके किसी अधिकारी का व्यवहार आपके प्रति दुर्भावपूर्ण है, तो उसके स्वभाव में यथेष्ट परिवर्तन भी आप इसी प्राणायाम की प्रक्रिया के द्वारा कर सकते हैं। परस्पर प्रेम सम्बन्ध और सौहार्द्र के समुचित विकास में यह योग (प्राण प्रक्रिया) बड़ी सहायक है।

यदि कोई दुस्सङ्ग में पड़ गया हो, उसकी इच्छा शक्ति निर्बल है, तो इसी उपाय से उसका मनोबल बढ़ाया जा सकता है। प्राणायाम गर्भित विचार बल से किसी के व्यवसन दूर करना बहुत ही सरल और सुगम उपाय है। प्रयोग की सबलता मन की एकाग्रता और मानसिक चित्र कल्पना की दृढ़ता पर निर्भर है। ऐसा करके जिसमें सद्‌गुण या सदभ्यास (अच्छी आदत) आप विकसित करना चाहते हैं उसे आसानी से कर सकते हैं। संकेत हमेशा विधि परक ही दिये जाने चाहिए उपचार काल में दोष-चिन्तन कदापि नहीं करना चाहिए। जो गुण आप उसमें पैदा करना चाहते हैं, उसमें भूषित किसी आदर्श व्यक्ति के सजीव कल्पना आपको उसमें करनी चाहिये। उसके सूक्ष्म शरीर में यथाभिलाषित गुण सूक्ष्म संस्कार बीज रूप से विद्यमान है। आपको उन सुप्त पड़े बीजों को अपने

प्राण-प्रकर्ष में चैतन्य भर करना है अथवा उनके पल्लवन में त्वरिता लाना है।

यदि सम्भव हो, तो सन्बन्धित व्यक्ति का सहयोग इस दिशा में अवश्य लें। यदि सम्बन्धित व्यक्ति प्रयोग काल में आपके सामने एकान्त शान्त बैठकर अपने शरीर को शिथिल कर, मन को सर्वथा शून्य कर आपके प्राणायाम विचारों को ग्रहण करे, तो बहुत शीघ्र (एक दो सप्ताह में ही) दुर्व्यसन का नाश और सद्भाव की परिपुष्टि करना सम्भव है।

प्राणायाम द्वारा निर्मित 'आत्म रक्षा' कवच

अनेक बार जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जब ऐसे लोगों के साथ रहना पड़ता हैं, जिसके आचार-विचार आपको बड़े ही निम्न स्तर के, बड़े ही पतित, निकृष्ट और ऊल जलूल लगते हैं। दुराचारी, दुर्व्यसनी अहङ्कारी, लालची और लम्पटों की सङ्गति प्रायः अल्प मनोबल वाले सदाचारी को विषय मार्गी बना देती है। सङ्गति का प्रभाव अज्ञात रूप में अनायास ही हमारे मनस्तल पर शनैः शनैः पड़ता रहता है। कालान्तर में वही एक दिन हमारे व्यवहार में किसी रोग के आक्रमण के समान हो उठता है।

विचारों को मूर्ति रूप देना सरल नहीं है

जन्म से कोई व्यक्ति दुराचारी या पापी नहीं होता। आस-पास का वातावरण और सङ्गति ही उसके स्वभाव को, मान्यताओं ौर

विचारों को, उसके रहन-सहन और आचरण को अपने अनुकूल परिवर्तित किया करते हैं। आपने देखा होगा, जब लोग किसी महात्मा का सार गर्भित, विचारोत्तेजक, तर्क-सङ्गत प्रवचन सुनते हैं अथवा किसी श्रेष्ठ पुष्तक का अध्ययन करते हैं, तो सहसा उनके मन में उच्च सङ्कल्प उठते हैं। वे निश्चित करते हैं कि कल से हम प्रातः पूजन अवश्य करेंगे। जब तक उपासना नहीं कर लेंगे, तब तक कुछ नहीं खाया करेंगे। इसी प्रकार के और भी संकल्प—शराब न पीने, मासभक्षण का त्याग करने, सिगरेट-बीड़ी छोड़ने जैसे श्रेष्ठ सङ्कल्प सत्सङ्ग के प्रभाव में आकर लोग किया करते हैं, किन्तु वे अपने इस संकल्प पर कुछ दिन या कुछ सप्ताह से अधिक दृढ़ नहीं रह पाते। आखिर क्यों?

दूषित वातावरण का कुप्रभाव

उत्तर स्पष्ट है, घर का वातावरण, इष्ट मित्रों की रहन-सहन प्रेरणादायक न होकर 'भावना' का अवसाद न करने वाली है। उत्साहवर्धक न होकर निरुत्साह, निराशा, मानसिक तनाव, अवसाद और विषाद को देने वाली है। हेय कार्यों को करने के लिए फुसलाने वाली है। आज तो हमारे चारों ओर का वातावरण भी बड़ा ही कुत्सित हो गया है। जिधर देखो कुत्सित विज्ञापन, अश्लील गीत, नङ्गा साहित्य, हीन कोटि का हास परिहास और कुण्ठ पैदा करने वाली विभिन्न परिस्थितियों के प्रवेग आंधी तूफान की तरह हमारे मानसिक संस्थान की तनु तन्त्रिकाओं को झकझोरा करते हैं। मस्तिष्क कोष हर समय कुत्स प्रेरकों

के द्वारा संवेदनशील बने रहने से अति शिथिल हो जाते हैं। बात संस्थान की शिथिलता संकल्प में जब अवतरित होती है, तो हम जाने अनजाने उसके प्रति उदासीन (लापरवाह) हो जाते हैं। फलतः हम दोष-दुर्व्यसन के शिकार हो जाते हैं। इसी गम्भीर तथ्य की ओर लक्ष्य करके किसी कवि ने कहा है–

'काजर की कोठरी में कैसी हू सयानी जाय,
नेक लीख़ काजल की लागि है पै लागि है।'

आसुरी प्रवृत्तियों से बचना आवश्यक है

अतः आवश्यकता है अपने आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक वातावरण के दुष्प्रभावों से अपने को मुक्त करना। शास्त्रों में इन दुष्प्रभावों को 'सूक्ष्म असुर' की संज्ञा दी है। इनकी कुचालों को आसुरी प्रवृत्ति कहा गया है। मनोविज्ञान की भाषा में ये 'कुत्स प्रेरक' (बैड मोटिव फोर्स) कहलाते हैं। इनसे जब तक व्यक्ति आत्मरक्षा नहीं करता, तब तक आज के दूषित परिवेश से सदभ्यास (अच्छी आदतों) सदाचार, शील, संकल्प और सदविचार के साधारण में पदे-पदे स्खलन होना सहज सम्भाव्य है। अन्तरिक्ष व्यापी इन्हीं आसुरों से साधना की रक्षा करने के लिए 'समर्थ गुरु' खोजे जाते हैं जो शक्तिपात या प्राणपोषण के द्वारा अपने शिष्य को उनके प्रहरों से त्राण दिलाते हैं। शिष्य की साधना के दृश्य-अदृश्य विघ्नों को अपने आत्म-बल से क्षीण करते हैं।

आत्माबलम्बन चाहिये

प्राणायाम के द्वारा अर्जित की हुई शक्ति को यदि इस ओर

लगाया जाय, तो सहज ही सूक्ष्म-असुरों से दुष्प्रभावों या दुःसंस्कारों से बचाया जा सकता है। योग्य गुरु का मिलना या हर जगह सहायक रूप में उपलब्ध होना आसान नहीं है। फिर पराश्रय ही है दूसरा अपनी अमूल्य सम्पत्ति हमें कब तक देगा? अपनी गाँठ का पैसा ही समय पर अपने काम आता है। गुरु के शक्तिगन के द्वारा जिनको कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत की थी,, उन साधकों में से आगे चलकर कितने ही लाग पथभ्रष्ट हुए। कारण ! कारण स्पष्ट है, अपने द्वारा कमाये धन का उपयोग अर्जन-कर्त्ता (कमाने वाला) सावधानी के साथ करता है। बिना श्रम दूसरों से मिलने वाला धन तो उड़ाया ही जाता है। उसकी साज सम्भाल, उसके द्वारा अर्थ-वृद्धि के उपाय तो विरले ही करते हैं। यही बात प्राण शक्ति के विषय में भी है।

समर्थ गुरु के द्वारा मिलने वाली शक्ति की भी सीमा होती है। उसकी अपनी अवधि (पीरिअड) होती है। सीमित अवधि वाली सीमित शक्तिपात के द्वारा गुरुदेव इसी दृष्टि से देते हैं कि मेरा शिष्य इसी पूँजी के द्वारा साधना रूपी व्यापार करके विपुल शक्ति संचय करें। स्वावलम्बी बने।

रक्षा कवच की महत्ता

प्राणायाम, शक्ति-अर्जन का स्वावलम्बन का साधन है। इसके द्वारा योग्य गुरु के अभाव में भी व्यक्ति आसुरी शक्ति से अपनी रक्षा अपने आप कर सकता है। नीचे हम 'रक्षा-कवच' कर सरल प्रयोग दे रहे हैं। इस कवच को अपनी आवश्यकतानुसार हर जगह और हम समय धारण कर सकते

हैं। जहाँ आप देखें, दुष्टजनों की दुष्ट प्रवृत्तियाँ आप पर हावी होने का प्रयत्न कर रही हैं, मन में उथल-पुथल मच गयी है। नाना प्रकार के भय प्रलोभन अपना ताँडव नृत्य करने लगे हैं आप अन्तर्द्वन्द्व से सन्त्रस्त हैं। आप इसे धारण कीजिए और अपने पुनीत संकल्प की इन 'सूक्ष्म असुरों' ने अपने पुर्वार्जित दुस्संस्कारों से रक्षा कीजिए। अच्छा हो, प्रातः सायं अपने दैनिक पूजन से पूर्व या पश्चात् इसको धारण कर लिया करें। ऐसा करने से आपके क्षणिक आह्वान (स्मरण) पर ही उसकी तेजस्विता मुखरित हो उठेगी और आपके देखते ही देखते दुर्भाव काफूर हो जावेंगे। अपनी प्राणशक्ति की सक्रियता को देखकर आपको प्रमोद-पुलक तो होगा ही, मनःतोष और मनःशन्ति के साथ ही आपका आत्मबल बढ़ेगा।

कवच रचना की विधि

सिद्धासन या पद्मासन पर बैठिये। मेरुदण्ड को सीधा रखिये। दोनों हाथ नाभि से कुछ ऊपर सूर्यचक्र पर रखकर सांस लीजिये और मन ही मन यह भावना कीजिए 'मेरे चारों ओर महाप्राण का इन्द्रधनुषी घेरा सुदर्शन चक्र के समान घूम रहा है, वह ऊपर नीचे, बायें-दायें सब ओर है। वह अपने दिव्य तेज से मेरी रक्षा कर रहा है। स्वर्णिम प्रकाश घना होता जा रहा है। दुर्भाव रूपी अन्धकार विलीन हो गया है। सब ओर सात्विक प्रकाश ही प्रकाश है। इन्द्र धनुषी प्रकाश का लहरदार यह घेरा मेरे पुण्य संकल्प की रक्षा करने के लिए प्रतिपल सक्रिय है। यह रश्मिल घेरा उड़न तश्तरी जैसा है। मैं इसकी

कोड़ में बैठा हुआ हूँ। यह मुझे विकास के उच्च स्तरों की ओर लिए जा रहा है। मेरा जीवन प्राण के उत्कर्षणों से भावित हो गया है। अब मैं पूर्णतया निश्चिन्त हूँ प्रभु कृपा से मैं आगे-आगे बढ़ता जा रहा हूँ। महाप्राण के मनोमुग्धकारी चक्र में बैठा हुआ मैं ऊपर ही ऊपर उड़ता जा रहा हूं। मैं खूब सुरक्षित हूँ।

साँस आसानी से जितनी देर तक अन्दर ही रोक सकें, रोकें, और मन ही मन मानसिक चित्र बनाते हुए उपर्युक्त संकेतों को दोहरायें। फिर धीरे-धीरे साँस बाहर निकालते हुए कल्पना करें सभी विकार सभी विजातीय तत्व निःश्वास के साथ बाहर निकाल गये हैं। मेरा मस्तिष्क मेरा मन और मेरी बुद्धि स्वच्छ और शुद्ध ही है।

रक्षा कवच की सिद्धि

इस प्रकार फिर-फिर साँस लेते हुए १०–१५ मिनट तक ऐसी ही भावनाओं के ताने-वाने से अपने चारों ओर इन्द्र-धनुष की आभा वाले प्राणायाम सुरक्षा चक्र को प्रतिष्ठित करना चाहिए। उपासना के समय नित्य प्रति इस प्राणायाम को करने से यह चक्र-कवच धनीभूत होकर सुदृढ़ हो जाता है इसी को कवच का 'सिद्ध' होना कहते हैं। तब आह्वान-स्मरण मात्र से ही अपनी आवश्यकता पर इनका प्रभूत उपयोग किया जा सकता है। दुष्प्रभावों के अदृश्य परमाणु के विसर्जन के लिये यह अचूक है। फौलाद रूप है।

लोहे को लोहा काटता है। विचारों को विचार ही काटते हैं। उत्कृष्ट विचारों को यह प्राणवान अण्डाकार घेरा आपका

आज्ञाकारी "मानस पुत्र' है। विचार और प्राणों के परमाणुओं से निर्मित यह मानस पुत्र, यह तेजो मण्डल सजीव है, स्वतः चैतन्य है, क्योंकि इसमें प्राण की विद्युतीय ऊर्जा भरी हुई है। यह आपका अपना है। आपका आज्ञानुवर्ती प्रहरी है। इस पर श्रद्धा कीजिए, विश्वास कीजिए। यह आपका सजातीय है। आपको कभी धोखा नहीं देगा।

प्राणायाम द्वारा भूत–प्रेत बाधा निवारण

भूत-प्रेत होते हैं या नहीं–यह एक विवादास्पद विषय है। पक्ष और विपक्ष दोनों में युक्ति संङ्गत तर्क ओर प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं। प्राणबल, बौद्धिक-विकास और संस्कार और भिन्नता के कारण घटना-विशेष या आकृति-विशेष किसी को भूत-प्रेत चालित दीखती है, तो किसी को अध्यास (इलूजन), भ्रान्ति (हालूसीनेशन) मनोह्रास (प्राईकाक्स) स्थिरभ्रम (पैरानोइया), भीतग्रह (फोविया) या कल्पनाग्रह (आबसेशन) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मानसचिकित्सा (साबकोपैथी) के अनुभवी डाक्टर हिस्टीरिया, मृगी, टिटनेस और बालग्रह (जिसमें बालक अचानक बेसुध हो जाता है, आँखों की पुतलियाँ फेरने लगता है, ऐंठन और कम्पन के साथ ही भयावह श्वास प्रश्वास लेता है) को भी हीन मनोबल जन्य ही बताते हैं। सत्य की परीक्षा और शोध दिशा में निरन्तर होने की आवश्यता है।

यह ढोंग नहीं सत्य प्रतीति है

जिनके शरीर में भूत-प्रेतों का संचार या आवेश होता है, वे ढोंग नहीं करते। उनमें से अधिकांश को वैसी ही अनिष्टकारी प्रतीति हुआ करती है। वास्तव में उन्हें उस प्रतीति से बड़ा कष्ट होता है। धार्मिक पीड़ा होती है। उनके शरीर का दिन-दिन क्षीण होते जाना, घर वालों और पास पड़ोसियों की उलझनों, परेशानियों और सन्त्रासों से प्रेरित होकर पश्चिमी देशों में इस पर कुछ शोध कार्य हुआ है। उन्होंने क्रिस्टल गेजिंग, प्लानचेट-लेखन, टेबिल-टिल्टिंग, ओटोमेटिक राइटिंग सम्मोहन क्रिया (हिप्नोसिस) और माइकोग्राफी के द्वारा आवेशों की समीक्षा अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार की है और तदनुसार अपने-अपने निष्कर्ष निकाले हैं। अतः उनके आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता।

परकाया प्रवेश और पुनर्जन्म की अलौकिक सत्य घटनायें तथा समाधिस्थ योगियों के सर्वेक्षण से यह सिद्ध होता है कि कीट पतंग व अदृश्य जीवाणुओं के समान ही एक वायवी प्रेतयोनि भी है। उनकी अनेक जातियाँ हैं। स्वभाव के अनुसार उन्हें दो श्रेणी में रख सकते हैं। साधु स्वभावी और असाधु स्वभावी। जिनकी भावनायें मरणकाल में अतृप्त रहती हैं और तृप्ति विशेष की ललक प्रबल होती है, वे ही प्रायः प्रेत-योनि में जाते हैं। 'अन्त मति सोरति' यह आर्ष ग्रन्थों का सुनिर्णीत उद्घोष है। उसी के अनुसार जो धर्म-कर्म परायण होते हैं, वे साधु-स्वभावी प्रेत या यक्षिणी कहलाते हैं। इसके विपरीत जिनमें

प्रतिशोध लेने की भावना उत्कृष्ट होती है, अथवा जो उद्दण्ड स्वभाव के होते हैं वे पिशाच, चुड़ैल या डाइन नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। साधु-स्वभावी प्रेत किसी की कोई हानि नहीं करते। उनका दर्शन शुभ होता है। उनसे एक सीमा तक अदृश्य सहायता या मार्ग दर्शन मिल सकता है। इसके विपरीत दृष्ट स्वभाव वाले पिशाच या चुड़ेल प्रतिशोध प्रवृत्ति की प्रबलता के कारण बड़े त्रासदायक होते हैं। वे प्रायः तब तक पिण्ड नहीं छोड़ते, निर्बल मन वाले को प्रपीड़ित करते रहते हैं। जब तक उनकी अतृप्त भावना तृप्त नहीं हो जाती।

प्रेतात्मा भावनात्मक है

वस्तुतः प्रेत और कुछ नहीं है, 'उद्दाम वासना' का ही दूसरा नाम भूत, प्रेत, जिन्न, पिशाच, ब्रह्म राक्षस, डाकिनी, शाकिनी, यक्षिणी चुड़ैल या डायन है। भावना बड़ी प्रबल होती है। उसमें असीम शक्ति है जिस प्रकार ईश्वर के माध्यम से शब्द तरंगे, रूप तरंगे रूप तरंगे आकाश में सर्वत्र संचरण करती हैं, जिन्हें रेड़ियों टेलीविजन आदि यन्त्रों की सहायता से सुना-देखा जाता है, इसी प्रकार प्रखर भावनायें भी हमारे ऊपर, नीचे दाँयें, बाँयें चारों ओर हरदम मँडराती रहती हैं और दुर्बल मन वाले प्राणी को अपने से भावित कर लेती हैं। भावावेश की इसी स्थिति को भूत चुड़ेल का चढ़ना कहते हैं। यही त्रिकालदर्शी ऋषियों की मान्यता रही है।

भावना की भयंकरता का सत्य प्रमाण

भावना की भयंकरता की एक सच्ची घटना निवेदित करता

हूँ। मेरे पास चिकित्सार्थ महिला आई। वह मेरी निकट की रिश्तेदार थी उसे अपने चारों ओर मांस के ढेर दिखाई देते थे। जब वह गर्भवती थी, तो उसे धरती पर सबं ओर साँप ही साँप रेंगते प्रतीत होते थे। वह चारपाई से नीचे उतरते डरती थी। वह इतनी त्रस्त थी कि महीनों तक उसके पिता ने, जो स्वयं भी सरकारी अस्पताल के रिटायर्ड डाक्टर थे, विवश होकर आँख पर पट्टी बँधवाई थी। उसकी माता ने चुपके-चुपके न जाने कितने नौतो सयानों (भूत झाड़ने वालों) पर पानी की तरह रुपया बहाया था किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। सर्प दीखते रहे। इसी त्रासदायनी-कष्टदायनी अतिकष्टकर पीड़ा से प्रसव हुआ। प्रसव बरेली के डिस्ट्रिक्ट अस्पताल में योग्य महिला डाक्टर की देख-रेख में कराया गया। सर्व प्रथम एक कन्या पैदा हुई। उसके १०–१५ मिनट बाद उस महिला ने लगभग ढाई फीट लम्बे साँप को जन्म दिया। यह साँप जमीन पर गिरते ही रेंगने लगा। सभी डाक्टर और लेड़ी कम्पाउण्डर डर गये। वे घबड़ाकर भागने लगे। १५–२० मिनट बाद वह साँप आपसे आप मर गया। सभी का कहना था, भावना में बड़ी शक्ति है। भावना की उग्रता ने ही नारी के गर्भाशय से सर्प का रूप धारण किया था।

भावनाग्रह या भावावेष

प्रखर भावना के द्वारा दूसरे को संमोहित किया जा सकता है। उसे प्रगाढ़ निद्रा में लाया जा सकता है। उसकी सहायता से उनके अचेतन मन को, अतृप्त इच्छाओं को, अवदमित वासनाओं को जाना जा सकता है। भावना के द्वारा दूसरे की

रुचि प्रकृति को बदला जा सकता है। इसको कुछ का कुछ प्रतीत कराया जा सकता है। भावना प्रवेक से वस्तुओं का स्थानान्तरण करना सहज सम्भव है। निद्रविचरण या सोम्नावुलिज्म नामक रोग से पीड़ित व्यक्ति सोते-सोते आँखे बन्द किये उठने, बैठने, चलने फिरने और लिखने तक के कार्य करता है। ये सब उदाहरण भावनाओं की उग्रता को ही प्रभावित करते हैं। कौटुम्बिक संस्कार के कारण जहाँ रात दिन भूत चुडैलों की चर्चा होती रहती है। जिस घर में बात-बात पर नौतों और सयानों को पूजा जाता है, उस घर को अल्प प्राण वाले युवक-युवतियों के अन्तर्मन में अपने वातावरण के अनुसार यदि भूत-प्रेत के विचार घर कर जायें, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। हमारी और आपकी दृष्टि में वह भले ही मानसिक विचार हों भावना ग्रह या भावावेश ही, किंतु जो निर्बलात्मा इसमें संत्रस्त है, उसके लिये तो वही सत्य है। जो जिस भावलोक में विचरण करता है, जिसकी दृष्टि पर जिस रङ्ग का चश्मा लगा है, उसकी कल्पना, उसका दृश्य दर्शन तदनुकूल होना चाहिए। इस सत्य को कैसे झुठलाया जा सकता है।

रोगी की भावना को संतप्त न किया जाय

वाद्य धारणा और अनुभूति की तीव्रता में घनिश्ट सम्बन्ध है। जैसी कल्पना-जैसा अनुभव सर्वमान्य सिद्धान्त है। किसी दिवा स्वप्नी (डे ड्रीमर) की संवेदनायें यद्यपि कल्पनाजन्य ही है फिर भी उसमें उसे बड़ा रस आता है। बादलों में जिन्न भूतों की आकृति देखने वालों को उतना ही भय होता है, उनकी नाड़ियों और नलिका विहीन ग्रंथियों में वैसा ही हृदयावसादक

संकोच होता है जैसा वास्तविक भय की स्थिति में अनुभव किया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि भूत-प्रेत की भ्रामक भावना से संतप्त रोगी से यह कह देने पर से काम नहीं चलेगा कि भूत-प्रेत कुछ नहीं हैं। मिथ्या शंका और बहम है। रोगी अल्पप्राण वाला है। उसका मनोबल क्षीण हो चुका है। उसकी मानसिक वेदना उसके लिए असह्य हो रही है। वह घबड़ाया हुआ है। अपने दुःख से मरा जा रहा है।उसे भावना-पुराण सुनाना कुछ लाभदायक न होगा। उसके लिए उसकी मान्यताओं को स्वीकार करते हुए धैर्य बँधाने की आवश्यकता है। उसको या मूढ़मभावी घर वालों को उपदेश देने का यह अवसर नहीं। पहले प्राणोपचार करके उनमें प्राण का संचार कीजिये। फिर शनैः शनैः भ्रान्तियों के निर्मूलन का उपाय करने पर यथेष्ट सफलता प्राप्त की जा सकती है। रोगी को स्वस्थ करने के बाद कृतज्ञ भाव से द्रवित होने पर जो विवेक, जो निर्देश देंगे, उसे वे बिना अनुनय किये सरलता पूर्वक ग्रहण कर लेंगे। अतः आपको भी भूत-प्रेत की तथाकथित बाधा के निवारण के काल में वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।

ढोंग से बचाया जाए

भूत-प्रेत झाड़ने के नाम पर भारत क्या सभी देशों में बड़ा ढोंग फैला हुआ। जादू-टोना, गंड़ा ताबीज, झूँठ फरेब और स्वार्थ साधना की भरमार है। अतः अपने चिकित्सा काल में रोगी के अभिभावक को इस बारे में सचेत कर देना चाहिए। उन्हें स्पष्ट समझा जाना चाहिए कि प्राणवान सावधान सम्पन्न

व्यक्ति के लिए हुए मन्त्र (ताबीज) ही इस स्थिति में व वांछित लाभ करते हैं। अपढ़, म्लेच्छ, दुर्व्यसनी, नशाखोर लोभी, लालची और लम्पटियों की आत्मा प्राणवान नहीं होती। अतः उनके चक्कर से निकाल कर इलाज करने का संकल्प लें।

आत्मीयतापूर्ण व्यवहार हो

अपनी बातों से, कतिपय उदाहरणों से रोगी और अभिभावकों के हृदय में विश्वास करना आवश्यक है। जितनी आत्मीयता अपने शिष्ट व्यवहार और आत्म-विश्वासपूर्ण सम्भाषण द्वारा पैदा कर सकते हो, करे। आत्मीयता, मधुरता और आपका आत्म-विश्वास रोगी की श्रद्धा को जगावेगा, निकटता लावेगा, जिससे प्राण विनियोग में बड़ी सुविधा होगी। आपको अपनी प्राण प्रक्रिया के लिए रोगी के सहयोग की बड़ी आवश्यकता है, जो रोगी में आपके प्रति श्रद्धा (आदर का भाव) जगे बिना सम्भव नहीं है। आप इसके लिए आवश्यक वातावरण निर्माण हेतु सम्भव प्रयत्न करें। प्रतिदिन नये-नये प्रसङ्गों द्वारा प्राण-चिकित्सा की महत्ता का प्रतिपादन करना, उसके प्रति भाव जगाने और विश्वास बढ़ाने (जमाने) के लिये बड़ा जरूरी है। जिस प्रकार मानसिक अवसाद दूर करने के लिये ध्यानोपासना से पूर्व जोर-जोर से कुछ समय तक नाम स्मरण या कीर्तन किया जाता है, उसी प्रकार रोगी के मन पर छाये हुए संशय-संक्षोभों के विनाश हेतु उपचार-प्रक्रिया के प्रारम्भ करने के पूर्व हँसते-मुस्कुराते हुए, रोगी का हाल-चाल पूछते हुए उस दिल को बढ़ाने में उत्साह दिखाना चाहिए।

अतीन्द्रियता में भी प्राण का अभाव

उदात्त भावना में मनुष्य के अन्दर उत्पन्न हुई अतीन्द्रिय शक्ति अपने व दूसरों को शुभस्कर होती है। मूढ़ भावना से जो अतीन्द्रिय शक्ति पैदा होती है, वह आत्म घातिनी और परत्रासिनी होती है शुभ कर अतीन्द्रिय शक्ति से दिव्य अनुभूतियाँ गुप्त रहस्य और अलौकिक विभूतियों के दर्शन होते है, उसी प्रकार मूढ़ भावना जन्य अतीन्द्रिय शक्ति से भयावह दृश्यों का दर्शन होता है, जो दूसरों को न दिखाई पड़ते हैं, न सुनाई देते है। वह भी उसी प्रमूढ़ अतीन्द्रिय शक्ति के बल पर कभी-कभी ऐसी सूचना या सन्देह भी दे सकता है जो निकट भविष्य में यथार्थ घटित हो जाएँ। यदि आपके रोगी के विषय में भी कुछ ऐसा ही है, तो उसकी सर्वथा उपेक्षा कीजिए। प्रखर भावना भाविन मस्तिष्क में बड़ी शक्ति है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह निकृष्ट कोटि की अतीन्द्रियता अपने में कुछ मूल्य रखती है उसमें स्वास्थ्य कर प्राण की नितांत कमी है। प्राण का तो स्वभाव है–शक्ति, स्फूति, स्वास्थ्य, उमंग उत्साह, विवेक सद्भाव सत्संकल्प और उल्लास की वृद्धि करना। जहाँ इन तत्वों की जिस मात्रा में कमी है, वहाँ उसी परिणाम में प्राण की न्यूनता समझी जानी चाहिए। यही बात आष अच्छी तरह से समझ लीजिए और रोगी से सम्बन्धित तथाकथित शिक्षितों के अन्धविश्वास का निवारण करना चाहिए।

जीवित व्यक्ति अतुल प्राण शक्ति का भण्डार होता है

इसी प्रकार इस सिद्धान्त को भी भली भाँति हृदयंगम कर लीजिये कि जीवित मनुष्य की इच्छा शक्ति (प्राण शक्ति) मरे हुए मनुष्यों की इच्छा शक्ति पर अधिकार कर सकती है। जीवित मनुष्य का प्राणबल मृतात्मा की वासना-बल से अधिक सामर्थ्यवान होता है। जिस प्रकार नित्य व्यायाम करने वाला, सुदृढ़ मांसपेशियों वाला पहलवान बढ़ी हुई चर्बी वाले तोंदुल लाला की अपेक्षा अधिक सुदृढ़, अधिक हृष्ट-पुष्ट होता है, ठीक उसी प्रकार नित्य प्राणायाम करने वाले, प्राण-साधना में रत रहने वाले मनस्वी का प्राण आवारा भटकने वाला मृतात्मा की हीन भावना से प्रबलतर होता है। अतः रोगी के विचित्र व्यवहार से भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है। धूर्त पाखण्डियों के वाग्जाल में फँसकर अपना पैसा पानी की तरह बहाने वाले रोगी के किंकर्तव्य-मूढ़ अभिभावकों को भी यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम करा देना चाहिए।

अपचर्चा न करें

अभिभावकों, परिवार वालों को अच्छी तरह से समझा दीजिए कि वे रोगी के सामने भूत-प्रेत की कोई चर्चा न किया करें। उन्हें यह भी सूचना दीजिये कि वे तथाकथित भूत-प्रेत झाड़ने वालों की उक्तियों को लेकर परस्पर प्रलाप करना बन्द कर दें। इनसे रोगी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्रकृति देवी की ऐसी अटूट व्यवस्था है कि जो मनुष्य जैसे विचार रखता है, जैसे विचारों का शोषण-पोषण रात-दिन करता रहता है, कालांतर में वह वैसे ही हो जाता है। परमात्मा ने

प्रत्येक मनुष्य में एक ऐसी अद्भुत शक्ति दी है कि यदि वह चाहे, तो दुष्ट से दुष्ट मनोविकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। उसे केवल उस शक्ति से परिचित होने पर उसका उपयोग करने की विधि जानने की आवश्यकता है। सूचनायें मनुष्य में अद्भुत सामर्थ्य पैदा कर देती हैं। प्राण प्रक्रिया के सम्बन्ध में ऐसा बोध रोगी सहित सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को प्यार सहित प्रारम्भ में ही दें। तभी वे अन्याय मार्गों में भटकने से बच सकेंगे। तभी वे एकाग्र मन से आपको पूरा-पूरा सहयोग देंगे।

पहला उपाय प्राणमयी प्रार्थना

आपको उचित है कि जब किसी दुष्ट प्रेत के हटाने का काम पड़े तो आप उसे डरावें, धमकायें नहीं। सौजन्य पूर्ण व्यवहार करें। प्रेम और स्नेह के साथ उससे बातचीत करें। मार-पीट, मिर्च आदि की धूनी कटु भाषण आदि तामसी व्यवहार किसी को न करने दें। प्रेतात्मा की इच्छा जानें। वासना का स्वरूप समझें। जो कुछ वह कहे उसे ध्यान से सुनें। उसकी कष्ट निवृत्ति का उपाय ढूंढें। उससे पूछें कि तुम क्या चाहते हो। इसके पास क्यों आते हो। तुम्हारी क्या इच्छा है। उसे शांति के साथ समझावें। ईश्वर की उदारता और कृपा-परायणता की बात करते हुए नेक राह पर चलने की उसे प्रेरणा दें। साथ में उससे कहें कि मैं ईश्वर से तुम्हारी मुक्ति के लिए प्रार्थना करूँगी। तुम भी ईश्वर की ओर ध्यान लगाओ। फिर सिंहासन पर बैठकर मन ही मन ईश्वर का ध्यान करते हुए लम्बी साँस लो और परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे सर्वशक्तिमान्। इस दुर्गति प्राप्त आत्मा पर दया कीजिए। इसकी विफलता को दूर

कीजिए। इसे सूझे दीजिये। सुबुद्धि दीजिए। इसमें सद्भाव भरिये। इसे सत्पथ दिखाइये।

जब-जब प्रेतात्मा से बातचीत करने का अवसर मिले, ऐसा ही कीजिए। प्राणायाम करते हुए ऐसी प्रार्थना करने से प्रेतात्मा को बड़ी शांति मिलतीहै। सांस लेकर, अन्दर ही रोककर बाहर निकाल कर और कुछ देर बाहर ही सांस रोके रहकर प्राणायाम किया जाता है। इस क्रिया के साथ भावपूर्ण प्रार्थना करने से प्रेतात्मा शुद्ध होती है, उसके भाव बन्धन कटते हैं, अतृप्ति बोध या प्रतिशोध भावना दूर होती है। जिससे रोगी का बड़ा उपकार होता है।

दूसरा उपाय प्राण–प्रेषण

प्राण का आधान करने की सरल सी विधि इस प्रकार है–

किसी शांत स्थान को लिपा-पुताकर अथवा स्वच्छ पानी से धुलवाकर रोगी को स्वच्छ पवित्र कपड़े पहिनाकर पूर्वाभिमुख बिठायें। उसके सामने स्वयं बैठें। उससे कहें, मैं प्राण शक्ति का संचार करने जा रहा हूँ। आप अपने भ्रू (भौंहों के पास स्थित त्रिपुटी) पर ध्यान करें। टार्च के द्वारा फेंकी हुई लाइट के सामने वर्तुलाकार प्राण ऊर्जा त्रिपुटी मार्ग से आप में प्रवेश करेगी। वह शक्ति बड़ी प्रबल है। उसको अन्दर आता देखकर प्रेतात्मा भाग जायेगी। वह उस तेज रोशनी को एक क्षण के लिए भी बरदाश्त नहीं कर सकती है।

ऐसा कहकर आप उससे कहें कि वह अर्ध-निमीलित दृष्टि से नासा के अग्रभाग को देखें अथवा आँखें बन्द करके उसी दिव्य ज्योति का ध्यान करे। नासाग्र पर दृष्टि जमाने से दिव्य

ज्योति की प्रतीति जल्दी होती है। किसी-किसी को आँखों को हल्का वन्द करने पर ध्यान सुविधा पूर्वक बँधता है। सो जैसा व्यक्ति-विशेष की प्रवृत्ति के अनुकूल हो, वैसा ही उसे कर दें।

इसके बाद स्वयं आँखें बन्द करके गहरी साँस लेते, रोकते और छोड़ते-रोकते हुए मन ही मन यह सूचनायें दोहरायें—मैं अपने प्रबल प्राणों का संचार अमुक (रोगी का नाम लीजिये) में कर रहा हूँ। मेरा प्राण दिव्य प्रकाश के रूप में त्रिपुटी के मार्ग से उसमें प्रवेश कर रहा है। उसकी चकाचौंध से प्रेतात्मा काँप उठा है। वह अब उसे छोड़कर भागी जा रही है। अमुक का मन-मन्दिर प्राण के महाप्रकाश से आलोकित हो गया है। प्राण ही परमात्मा है। जहाँ वह है, वहाँ अपवित्रात्मा दुबारा जाने का साहस नहीं कर सकती। सो, अब अमुक (नाम लीजिये) महोदय सर्वथा निर्भय हो गये हैं। उनके सभी कष्ट दूर हो गये हैं। यह स्वस्थ, प्रसन्न और ईश्वर परायण हो गये है।

दिन में यह क्रिया प्रातः सायं दो बार की जाय। कम से कम पन्द्रह मिनट तक या सौ बार दीर्घ श्वास-प्रश्वास के साथ यह प्राणप्रेषक क्रिया की जानी चाहिए। इस क्रिया की समाप्ति पर आत्म-शोधन क्रिया अवश्य करें। इसके लिये गहरी साँस लेकर हवा को कुछ सेकण्ड अन्दर ही रोकें रहें। फिर होठों को सीटी बजाने के समान सिकोड़ कर हवा से गालों को फूलने न देकर होठों के बीच के छिद्र से रुक कर कई बार में अन्दर भरी हुई हवा को वेग के साथ साथ फेकें। याद रक्खें, होठों के बीच के छिद्र में अन्दर की हवा निकालने में बहुत जोर लगाना होगा। ऐसा करने से दूषित परमाणु वायुमण्डल में छितर

जावेगे। यह क्रिया शांत भाव से पाँच सात वार करें। इससे आपका अन्त करण ही स्वच्छ नहीं होगा, आप में ताजगी और स्फूर्ति भी आयेगी, आपका प्राण उज्जवल और चैतन्य होगा।

तीसरा उपाय-शयनकालीन उपचार

जब रोगी सो रहा हो, शांत भाव से उसके कक्ष में प्रवेश करें। गहरी साँस भरकर उपयुक्त भावना करते हुए सिर से पाँव तक मार्जन करें। सांस को बाहर निकालें और अपने हाथों को छिटककर झाड़ दें। फिर श्वांस लें। कई बार ऐसा करने से वह व्यक्ति पूर्णतया संमोहित हो जावेगा प्रगाढ़ निद्रा में लीन हो जावेगा। उसकी अन्तरात्मा, आपके संकेतों के अधीन हो जावेगी। अपनी उदात्त सूचनाओं के द्वारा अब आप उसे उसके प्रेत (भावनाग्रह) से सहज मुक्त कर सकते हैं।

अब आप उसके माथे पर हाथ रक्खें। दाहिने हाथ को बाँये हाथ की तर्जनी से दबाकर लम्बी साँस भरें और भावना करें मैं महाप्राण का उसमें संचार कर रहा हूँ। जितनी क्षमता हो, आसानी से जितने समय तक सांस रोक सकते हो, रोके रहें। साथ ही मानव-चित्र बनाये। ''मेरे दाहिने हाथ के माध्यम से महाप्राण का शुद्ध प्रवाह त्रिपुटी मार्ग से भावनाग्रही के अन्तस्थल में तीव्रता के साथ प्रवेश कर रहा है। वह मस्तिष्क के पूरे भाग में, कारटेक्स में साहस्रार में स्टोर होता जा रहा है। उसके तेजस्वी प्रवेग से दूषित भावनायें आकाश में उड़ी जा रही हैं। मेरा बन्धु प्रेत मुक्त हो गया है। वह सर्वथा निर्भय हो गये हैं। उसका प्राण अपने स्वाभाविक चैतन्य को प्राप्त हो गया है। उसमें वीरभाव, साहस, विवेक, आशा उत्साह और उल्लास की

लहरें क्रम-क्रम से तरंगिनी होने लगी हैं। अब वह सर्वथा स्वस्थ हो गया है। उत्फुल्ल है। हृष्ट-पुष्ट है।"

फिर बाँये नथुने को बांयें हाथ के अँगूठे से दबाकर धीरे-धीरे साँस निकालें। कुछ देर तक साँस बाहर रोके रहें। तत्पश्चात् उपर्युक्त भावना के साथ दाहिने नथुने से साँस लें। साँस को कुछ देर अन्दर रोकें। रोगी को सूचनायें दें—अब आप बिलकुल स्वस्थ हो गये हैं। आप बड़े साहसी हैं, हिम्मत वाले हैं। आप बड़े समझदार हैं। ईश्वर विश्वासी हैं आप प्राणवान् हैं। दुष्ट आत्मायें अब आपके पास कभी नहीं आ सकती। आपके आत्म तेज से वे थरथरा उठी हैं। आपसे डरने लगी हैं। आपका संकल्प प्रखर हो गया है। परमात्मा ने आपके शुद्ध हृदय को अपना पावन मन्दिर बना लिया है वह वहाँ विराजमान हो गये हैं। वस्तुतः आप धन्य हैं।" जब दाहिने नथुने को दबाकर बाएँ नथुने से धीरे-धीरे साँस निकालें। यही क्रिया कई बार करें।

पन्द्रह से तीस बार तक यह प्राणायाम प्रतिदिन रोगी के सोने पर केवल एक बार करना उपयुक्त है। ध्यान रहे, इस प्राणायाम में पहले साँस बाँये नथुने से लेनी है, कुछ देर उपर्युक्त संकेतों के साथ अन्दर रोक कर उसे दाहिने नथुने से बाहर छोड़नी है। फिर सीधे (दाहिने) नासापुट से साँस लेकर, कुछ देर उसे अन्दर ही रोककर बांये नथुने से बाहर निकालनी है। यदि इस क्रम से प्राणायाम करने का पहले से अभ्यास है, तो उपचार काल उदात्त भावना और प्रबल निर्देश के साथ वैसा करना बड़ा सरल है।

इसके बाद अन्तःकरण की सफाई कर लें। मस्तक पर रक्खे दाहिने हाथ को दो तीन बार आकाश में झाड़ें। लम्बी साँस लेकर सीटी बजाने सदृश मुख मुद्रा करके वेग पूर्वक कई बार में रोककर उसे बाहर निकालें। पाँच सात बार ऐसा करने से रोगी के दूषित परमाणुओं से आत्मरक्षा होगी।

पाठ—पूजा व मंत्रजप भी साधना के अङ्ग रहे

आपका रोगी यदि पढ़ा लिखा हो, पढ़ लिख सकता हो, तो उसे प्रेरणादायक साहित्य पढ़ने के लिए उत्साहित करें। अथवा यथाशक्ति प्रणव जप, गायत्री जप या हनुमान चालीसा के प्रति दिन ग्यारह पाठ करने की प्रेरणा दें। रोगी यदि यह सब करने में असमर्थ है, तो उसकी पत्नी को, पति या पुत्र को उसके लिये संयम और पवित्रता के साथ कम से कम तीन सप्ताह तक हनुमान चालीसा, रामायण पाठ, गीता पाठ, इक्कीस माला ओंकार जप अथवा दस माला गायत्री या मृत्युञ्जय महामन्त्र का जप करने को कहें। ऐसा करने से घर का वातावरण शुद्ध होगा। रोगी के साथ-साथ अन्य परिजनों की आत्मा भी ईश्वरी प्राण के अवतरण से बलवान बनेगी।

आपका उद्देश्य भूत बाधा दूर करने तक सीमित नहीं होना चाहिए। आपको वह सब करना है जिससे रोगी की आत्मा रोगी के परिजनों की आत्मा अपने दिव्य स्वरूप में प्रतिष्ठित हो। सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों को दृष्टिकोण शुद्ध और परिमार्जित हो। प्राण चिकित्सा के प्रति आस्था बढ़े। वे इसे स्वयं सीखकर जनकल्याण में प्रवृत्त हों।

समाप्त

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम् धर्मग्रन्थ

१.	ऋग्वेद ४ खण्ड-सम्पूर्ण	(भा० टी०)	....
२.	अथर्ववेद २ खण्ड-सम्पूर्ण	(भा० टी०)	....
३.	यजुर्वेद-सम्पूर्ण	(भा० टी०)	....
४.	सामवेद-सम्पूर्ण	(भा० टी०)	....
	उपनिषद्		
५.	१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	(भा० टी०)	....
६.	बृहदारण्यकोपनिषद्	(भा० टी०)	....
७.	छान्दोग्योपनिषद्	(भा० टी०)	....
	गीता		
८.	ज्ञानेश्वरी भगवद् गीता	(भा० टी०)	....
९.	अष्टावक्र गीता	(भा० टी०)	....
	दर्शन		
१०.	वैशेषिक दर्शन	(भा० टी०)	....
११.	न्याय दर्शन	(भा० टी०)	....
१२.	सांख्य दर्शन	(भा० टी०)	....
१३.	योग दर्शन	(भा० टी०)	....
१४.	वेदान्त दर्शन	(भा० टी०)	....
१५.	मीमांसा दर्शन	(भा० टी०)	....
	पुराण		
१६.	शिव पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
१७.	विष्णु पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
१८.	मार्कण्डेय पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....

१६.	गुरूड़ पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
२०.	देवी भागवत पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
२१.	हरिवंश पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
२२.	पद्म पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
२३.	वामन पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
२४.	कालिका पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
२५.	वाराह पुराण २ खण्ड	(भा० टी०)	....
२६.	गणेश पुराण	(भाषा)	....
२७.	सूर्य पुराण	(भा० टी०)	....
२८.	आत्म पुराण	(भा० टी०)	....
२६.	कल्कि पुराण	(भा० टी०)	....
३०.	गायत्री पुराण	(भाषा)	....
३१.	देवी भागवत पुराण	(भाषा)	....

रामायण, कथा, इतिहास

३२.	आनन्द रामायण साइज २२'' ` २६''/८	(भा० टी०)	....
३३.	श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा	(भाषा)	....
३४.	महाभारत साइज १८'' × २२''/८	(भाषा)	....
३५.	महाभारत साहज २०'' × ३०''/१६	(भाषा)	....
३६.	पंचतन्त्र	(भा० टी०)	....
३७.	हितोपदेश	(भा० टी०)	....
३८.	दृष्टान्त सरित सागर	(भा० टी०)	....

धर्म शास्त्र

३६.	२० स्मृतियाँ २ खण्ड	(भा० टी०)	....
४०.	मनुस्मृति	(भा० टी०)	....

नीति शास्त्र

४१.	कौटिल्य अर्थशास्त्र	(भा० टी०)	....
४२.	विदुर नीति	(भा० टी०)	....

४३. चाणक्य नीति (भा० टी०) ....
४४. भर्तृहरिशतक त्रय (भा० टी०) ....

मन्त्र-साहित्य

४५. मन्त्र शक्ति से रोग निवारण ....
४६. मन्त्र शक्ति से विपत्ति निवारण ....
४७. मन्त्र शक्ति से कामना सिद्धि ....
४८. मन्त्र शक्ति के अद्‌भुत चमत्कार ....
४९. शिव सिद्धि ....
५०. भैरव सिद्धि ....
५१. दुर्गा सिद्धि ....
५२. शाबर मन्त्र सिद्धि ....
५३. गणेश सिद्धि ....
५४. हनुमत् सिद्धि ....
५५. बगलामुखी सिद्धि ....
५६. काली सिद्धि ....

तन्त्र साहित्य

५७ तन्त्र महाविज्ञान २ खण्ड ....
५८. तन्त्र विज्ञान ....
५९. तन्त्र रहस्य ....
६०. यन्त्र महासिद्धि ....
६१. लक्ष्मी सिद्धि ....
६२. दत्तात्रेय तन्त्र ....
६३. उड्डीश तन्त्र ....
६४. रूद्रयामल तन्त्र ....

गायत्री-साहित्य

६५. गायत्री रहस्य ....
६६. गायत्री सिद्धि ....
६७. महामन्त्र-गायत्री ....
६८. गायत्री साधना के चमत्कार ....

योग-साहित्य

६६.	ध्यान की सरल साधनायें	....	....
७०.	ध्यान के गहरे प्रयोग	....	....
७१.	त्राटक से मानसिक शान्ति	....	....
७२.	प्राणायाम के असाधारण प्रयोग	....	....
७३.	योगासन से रोग निवारण	....	....
७४.	हिप्नोटिज्म	....	....

वेदान्त

७५.	योगवाशिष्ठ २ खण्ड	(भा० टी०)	....
७६.	विचार सागर	(भा० टी०)	....
७७.	विचार चन्द्रोदय	(भा० टी०)	....
७८.	पंचीकरण	....	....

ज्योतिष और सामुद्रिक

७९.	ताजिक नीलकण्ठी	(भा० टी०)	....
८०.	कर्म विपाक संहिता	(भा० टी०)	....
८१.	मुहूर्त चिन्तामणि	(भा० टी०)	....
८२.	लग्न चन्द्रिका	(भा० टी०)	....
८३.	हस्त रेखा महाविज्ञान	....	....
८४.	प्रारम्भिक ज्चयोतिष विज्ञान	....	....
८५.	द्वादश ग्रह फलादेश विज्ञान	....	....
८६.	महादशा विज्ञान	....	....
८७.	ज्योतिष योग रत्नाकर	....	....
८८.	रत्न ज्योतिष विज्ञान	....	....

प्रकाशक :-

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली

(उ०प्र०)

प्राणायाम के असाधारण प्रयोग

संस्कृति संस्थान